आधुनिकता के धरातल का स्पर्श करती ''आधुनिक बाल कहानियाँ'' हिन्दी की श्रेष्ठतम बाल कहानियों का अब तक का प्रकाशित सबसे बड़ा संग्रह है।

प्रस्तुत संग्रह में आधुनिक परिवेश से जुड़ी रोचक, मनोरंजक व शिक्षाप्रद कहानियाँ संग्रहीत हैं। जिनको पढ़ते समय बच्चो को अपने आस-पास की दुनिया मिलेगी। जिसमें खोकर वे आनंदित तो होंगे, ही साथ ही बहुत सी जानकारियाँ भी प्राप्त करेंगे और नई-नई आश्चर्यजनक बातों को जानकर सोचने पर विवश भी होंगे।

आधुनिक
बाल कहानियाँ

(भाग – एक)

सम्पादक
रमाशंकर

□ प्रकाशक :

विभोर प्रकाशन

49B, हेस्टिंग रोड, इलाहाबाद

□ सम्पादक :

रमाशंकर

□ प्रथम संस्करण : 2000

□ मूल्य : 225 रुपये मात्र

□ लेजर कम्पोजिंग :

ग्राफिक एड्स

सुभाष मार्केट, जानसेनगंज, इलाहाबाद

□ मुद्रक :

सुलेख मुद्रणालय

इलाहाबाद

मात-पिता
के
श्रीचरणों
में!

अग्रलेख

आज का बच्चा वैज्ञानिक युग में पल बढ़ रहा है। वह विभिन्न माध्यमों के जरिये नई–नई बातों को सुन व देख रहा है। साथ ही साथ स्वयं को भी नये दौर से जोड़ने का प्रयत्न करता हुआ, वह परिवर्तन के पंख लगाकर उड़ना चाहता है। छूना चाहता है संसार की हर ऊँची चोटी को। पहुँचना चाहता है सबसे पहले गहों की अनजानी दुनिया में।

इस बदले हुए परिवेश में आज पहले से कहीं ज्यादा मात्रा में बच्चों की कहानियां लिखी जा रही हैं। लेकिन उनमें से बहुत कम ही कहानियाँ हैं, जो आज के बच्चों को ध्यान में रखकर लिखी जा रही हैं। यह देखने में अक्सर आता है कि अधिकतर पुराने पैर्टन पर आधारित कहानियों में ही थोड़ा बहुत फेरबदल कर फिर से गढ़ दी जाती हैं। उनमें वही सोच होती है, जो आज से ५०–६० साल पहले की रचनाओं में होती थीं।

एक ही स्वाद अधिक दिनों तक बच्चों को नहीं दिया जा सकता। उसमें कुछ न कुछ बदलाव लाना आवश्यक होता है। वर्ना ऐसी रचनाओं से आज का बच्चा मुंह फेर लेगा और अपनी नज़रें उस ओर मोड़ लेगा जिस ओर उसे अपने मनपसंद स्वाद मिलते दिखाई पड़ेंगे, जैसा कि आज हो भी रहा है। बच्चे साहित्य से अलग हटकर टी०वी० की कार्टून फिल्में, वीड़ियो गेम व कॉमिक्स की ओर मुड़ रहे हैं।

ऐसा क्यों है? मेरी समझ में यही आता है कि बच्चे को वह स्वाद हमारे लिखे साहित्य में नहीं मिल पा रहा है, जो वह अन्य माध्यमों से पा रहा है। सच कहें तो इसके दोषी हम स्वयं हैं। क्योंकि, हमने बदलते समय के अनुकूल खुद को नहीं बदला है। बच्चों को पुराने ढर्रे से हटकर

नवीन रचनायें उसके इच्छा अनुकूल नहीं दी हैं और उसके सम्मुख बासी रचनाएं ही परोसते चले आये हैं।

अतः आज भी अगर हम सचेत नहीं होते हैं और पुरानी चली आ रही लकीर से हटकर कुछ नया नहीं करते हैं तो वह दिन दूर नहीं होगा जब हम कहीं और होंगे और बच्चा हमसे बहुत दूर निकल चुका होगा।

इस बात को ध्यान में रखते हुए आज हमें जरूरत है ऐसे कथा साहित्य की, जो बदलते समय और आज के बच्चों के मनोभावों को ध्यान में रखकर लिखा जाये। जिसे पढ़ने के लिए बच्चा अन्य माध्यमों से हटकर हमारे साहित्य की ओर आकर्षित हो सके।

प्रस्तुत संग्रह में मैंने ऐसी ही रचनाओं को चुनने का प्रयास किया है। मेरे इस प्रयास को सफल बनाने में उन सभी कथाकारों का विशेष योगदान है, जिन्होंने अपनी–अपनी रचनाएं संग्रह हेतु दी हैं। मैं उन सबका बड़ा आभारी हूँ। साथ ही साथ पत्र–पत्रिकाओं का भी जिनसे हमें थोड़ा बहुत सहायता प्राप्त हुई है और डॉ० सुरेन्द्र विक्रम का जिनका सहयोग मिला है।

प्रस्तुत संग्रह में जहां ख्याति प्राप्त वरिष्ठ कथाकारों की रचनाएं हैं, वहीं नई पीढ़ी के सशक्त कथाकारों की रचनायें भी इसमें शामिल हैं। हालांकि कुछ सशक्त रचनाकार किन्हीं कारणों से इसमें सम्मिलित नहीं हो पाएं हैं, जिसका हमें खेद है।

आशा है प्रस्तुत संग्रह बच्चों को आज के परिवेश से जोड़ने, हंसने–हसाने, आश्चर्य में डालने और ज्ञानवर्द्धन करने में सफल होगा। इसके साथ ही साहित्य जगत में भी इसका स्वागत होगा, ऐसा विश्वास है।

रमाशंकर

४८, वालमीकि मार्ग,
लालबाग, लखनऊ–२२६ ००१
उत्तर प्रदेश

कथाक्रम (भाग–एक)

खिलौनों का अस्पताल

मनोहर वर्मा

एक दिन मुहल्ले में एक नई दुकान खुली। दुकान के बाहर लिखा था "खिलौनों का अस्पताल"। इसके नीचे लिखा था, हमारे यहां हर प्रकार के खिलौने सुधारे जाते हैं।

इस नई दुकान की बात जंगल में आग की तरह पूरे मुहल्ले में फैल गई।

रिंकी तुरंत अपना इंजन लेकर पहुंची। उसने धुंआ उगलना बंद कर दिया था। सारिका की गुड़िया के बाल उखड़ गए थे। वह भी अपनी गुड़िया लेकर पहुंच गई।

दोनों के खिलौनों को दुकानदार ने उलट–पलट कर देखा और बताया कि ठीक हो जाएगी। दोनों को यह भी बता दिया कि एक–एक रुपया लगेगा।

सारिका ने पूछा "कौन से रंग के बाल लगाओगे?"

"कोई से भी लगवाओ। काले, भूरे, मेमो जैसे सुनहरी, बुढ़िया जैसे सफेद.......। हमारा मेहनताना एक रुपया ही होगा", दुकानदार ने कहा।

"तो ठीक है, सुनहरी बाल लगा देना, मेमो जैसे।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?" टिंकी ने पूछा।

"मेरा अक्कड़, इसका मक्कड़।" दुकानदार ने बताया।

थोड़ी देर बाद पिंकी अपनी एक पहिए की कार लेकर पहुंच गई,

तो बबली अपना हवाई जहाज, प्रतीक की बंदूक ने फायर करना बंद कर दिया था, बबलू की पिस्तौल खराब हो गयी थी और नीतू की गुड़िया का हाथ टूट गया था।

नीतू अपनी गुड़िया अक्कड़ को देती हुई बोली "देखो भाई, मेरी गुड़िया का हाथ टूट गया है।"

"हाथ कहां है ?" अक्कड़ ने पूछा,

"पता नहीं, या तो चूहा अपने बिल में ले गया या कौआ ले उड़ा।" नीतू ने कहा "हाथ नया ही लगाना पड़ेगा।...... पर याद रखना, हाथ का रंग गुड़िया से मिलता-जुलता नहीं हुआ तो पैसे नहीं दूंगी।"

"नहीं-नहीं..... बिल्कुल ऐसा ही लगेगा।" अक्कड़ ने नीतू को विश्वास दिलाया।

"और मेरी गुड़िया तुमने खो दी तो पूरे बीस रुपए लूंगी। समझे. .. ।... और हां, पैसे कितने लोगे ?"

तभी किच्चू किसी गुड्डे की एक टांग लेकर पहुंच गया।

"यह क्या है?" मक्कड़ ने पूछा।

"यह मेले गुड्डे की तांग है, औल क्या ?" किच्चू ने कहा।

"इसका क्या करना है ?"

"बछ इछके दो हाथ, एत पांव, दो आंथें, एत नाक, मुंह, बाल छब लगा दो...?" किच्चू कमर पर हाथ रख कर खड़ा हो गया।

अक्कड़ मक्कड़ एक दूसरे की शक्ल देखने लगे। नीतू पास में खड़ी हंस रही थी।

"इसके बाकी हाथ-पांव, गर्दन कहां हैं? वे भी लाओ।" मक्कड़ ने कहा।

"अले, वे छब होते तो मैं तुमाले पाछ क्यों आता ? ममी छे ही थीक नहीं कला लेता ?" किच्चू ने कहा।

मक्कड़ ने किच्चू को यों ही टालने के लिए कह दिया "अच्छी बात है हो जाएगा।"

"कितने पैसे लोगे ?"

"सौ पैसे।" अक्कड़ ने कहा तो नीतू चौंकी।

"अरे वाह । मेरी गुड़िया के एक हाथ लगाने का भी एक रूपया और एक टांग के हाथ–पांव, नाक–कान, मुंह सब लगाने का भी एक रुपया ?"

"इछकी मलजी।" किच्चू बोला "क्यों न भाई, तुमाली मलजी की बात है न यह तो...?"

"तू चुप रह किच्चू। बोलो जी अक्कड़–मक्कड" नीतू आंखें तरेरते हुए बोली।

"अच्छा हम आप से सत्तर पैसे ले लेंगे, बस।" अक्कड़ ने नीतू को चुप कराना चाहा।

"सत्तर क्यों? एक टांग, दो हाथ, सिर, नाक, कान और आंख लगाने के सौ पैसे, तो मेरी गुड़िया के एक हाथ लगाने के ज्यादा से ज्यादा दस पैसे हुए।" नीतू ने हिसाब लगाकर बताया।

"ये तो बहुत कम हैं। इतने कम पैसों में तो मुश्किल है।" मक्कड़ ने कहा।

"तो ठीक है, मेरी गुड़िया वापस दे दो। मुझे ठीक नहीं करवानी। मैं अपनी ममी से खुद ठीक करना सीख लूंगी।" नीतू ने गुड़िया लेकर जाते हुए कहा, "मैं अभी सारिका से भी जाकर कहती हूं कि तेरी गुड़िया के सुनहरी बाल लगाने के सौ पैसे बहुत ज्यादा हैं। अक्कड़–मक्कड़ तुझे ठग रहे हैं।" नीतू मुहल्ले में दौड़ गई।

अक्कड़ बोला, "मक्कड़, इस लड़के को वह टांग लौटा दो नहीं तो इसके पीछे हमारा सारा धंधा चौपट हो जाएगा।"

मक्कड़ ने किच्चू को वह टांग लौटाते हुए कहा, "यह कल ले आना बच्चे। हम ठीक कर देंगे। मुफ्त में ही...।"

तभी अक्कड़ चीखा, "अरे! वह लड़की तो ढ़ेर सारे बच्चों के साथ इधर ही चली आ रही है। जल्दी से खिलौनों की गांठ बांध लो, मक्कड़

भाई।"

सारिका और दूसरे बच्चे करीब आए इससे पहले ही अक्कड़ ने दुकान के दरवाजे बंद कर अंदर से कुण्डी लगा ली।

"अरे! ये तो दूकान बंद करके चले गये मालूम होता है।" बच्चों ने दुकान को बंद देखकर कहा। "चलो कल देख लेंगे। दुकान छोड़कर कहां जाएंगे।"

तभी किच्चू बोला, "अले छुनो... जाओ मत... वापछ आओ ....।" पर बच्चे अपनी-अपनी डींगे हांकते चले ही जा रहे थे। किच्चू दौड़कर उनके पास गया, बोला "तुम छब पागल हो। मेली छुनते ही नहीं। दुकान बाहल छे बंद देखकल वापछ क्यों जा रहे हो? वे दोनों अन्दल बैठे हैं। तुम्हाले छब के खिलौने कपले में बांधकल ले जा रहे हैं।"

"अच्छा! दीपू ने कहा, सुनों, एक बच्चा जाकर मुहल्ले में से और सब बच्चों को बुला लाओ।"

देखते ही देखते दस-बीस बच्चे आ जुड़े। बच्चों ने नारे लगाना शुरू कर दिया।

दीपू बोला, "अक्कड़-मक्कड़"

बच्चे बोले, "बाहर आओ।"

दीपू बोला, "नहीं चलेगा... नहीं चलेगा।"

एक बच्चा दौड़ कर गया और भोंपू ले आया। भोंपू में बोलकर अक्कड़-मक्कड़ को चेतावनी दी। "अक्कड़-मक्कड़ कान खोल कर सुन लो। मुहल्ले के सारे बच्चों ने तुम्हारी दुकान पर घेरा डाल रखा है। तुम हमारे खिलौने लेकर भागने की कोशिश मत करो....। .... मैं दस तक गिनती बोलता हूं तब तक दुकान का दरवाजा खोल देना, नहीं तो चारों ओर से पथराव शुरू हो जाएगा।"

दस तक गिनती गिनी गई। दुकान का दरवाजा नहीं खुला तो बच्चों ने चारों ओर से पथराव शुरू कर दिया। घबराकर अक्कड़-मक्कड़ ने दुकान के भीतर से थपथपाया। बाहर सब बच्चे शांत हो गए। भीतर

से अक्कड़—मक्कड़ ने कहा, "हम तुम्हारे सब खिलौने कल तक ठीक कर देंगे और सबसे पचास—पचास पैसे ही।"

"नहीं—नहीं... बच्चे चीख पड़े। हमें हमारे खिलौने लौटा दो। हम अपने खिलौने खुद ठीक करेंगे।"

फिर भी दुकान का दरवाजा नहीं खुला तो बच्चों ने चेतावनी दी और सबने हाथों में पत्थर उठा लिए। तभी बदलू मामा अपनी छोटी सी खोपड़ी पर से बार बार उड़ती गिरती टोपी को संभालते दौड़ते—हांफते वहां पहुंचे। उनके पूछने पर बच्चों ने सारा किस्सा बदलू मामा को बताया। बदलू मामा बोले, "देखो, यह घेराव और पथराव गलत चीज़ है।" अब बच्चों ने मामा को घेर लिया। सब अपनी—अपनी बात बदलू मामा को सुनाने लगे।

अपने मोटे शरीर से पसीना पोछते—हांफते बदलू मामा सब की बात सुन समझ रहे थे... सब को समझा रहे थे...। उधर उचित मौका देखकर अक्कड़—मक्कड़ ने धीरे से दरवाजा खोला और दुकान से बाहर हो गये।

किच्चू ने उनको भागते हुए देख लिया तो जोर—जोर से चिल्लाया— "अले छब छुनों... वो भाद लहे हें... अले छुनों....।" शोरगुल में किच्चू की बात पर बच्चों का ध्यान जाए उससे पहले ही अक्कड़—मक्कड़ सिर पर पांव रखकर नौ दो ग्यारह हो चुके थे। आगे आगे अक्कड़—मक्कड़। उनके पीछे बच्चे और बच्चों के पीछे अपनी टोपी और धोती संभालते बदलू मामा दौड़ पड़े। भागदौड़ में किसी ने यह नहीं देखा कि खिलौनों की पोटली वहां दुकान में ही पड़ी थी।

गोलू और गुलाब

ज़ाकिर अली 'रजनीश'

आंखें खोलते ही गोलू की नज़र सामने अलमारी पर रखे प्लास्टिक के फूलों पर जा पड़ी। उसका रसगुल्ले सा गोलमटोल गाल गुलाब की तरह लाल हो गया और वह बिस्तर से निकल कर सीधे क्यारी की तरफ भागा।

बरामदे के सामने बनी क्यारियों में ढ़ेर सारे पौधे लगे हुए थे। जिनमें धनिया, प्याज, टमाटर और लहसुन के पौधे शामिल थे। क्यारियों के बगल में दीवार के किनारे बहुत से गमले रखे थे, जिनमें बेला, गेंदा, रातरानी और गुलाब के पेड़ लगे हुए थे। उन सभी पेड़ों से अलग हटकर एक छोटा सा गमला रखा हुआ था। उस गमले में गुलाब के पेड़ पर एक नन्हां सा गुलाब का फूल मुस्करा रहा था। गोलू सीधे उसी के पास जा पहुंचा और गमले के पास बैठकर फूल को ध्यान से देखने लगा।

मूंगे के समान सुन्दर फूल की नन्हीं पंखुड़ियों पर पड़ी ओस की बूंदें, सूरज की रोशनी में मोती की तरह चमक रही थीं। जिसे देखकर गोलू की आँखें भी जगमगा उठीं। एक ओस की बुंद को उसने धीरे से छुआ और फिर मुस्करा पड़ा।

मन ही मन प्रसन्न होते हुए गोलू अपना मुंह फूल के पास ले गया और उसकी खुश्बू सूंघने लगा। चाकलेट और हलवे से कई गुना मीठी

व मनमोहक खुश्बू से उसका मन खिल उठा। धीरे से पेड़ की टहनी को हाथ से पकड़कर वह फूल को अपने करीब लाया और फिर उसे अपने गालों से स्पर्श कराया। उस कोमल स्पर्श से उसके चेहरे का रंग गुलाब के मुकाबले और सुर्ख हो गया। उसे एक हल्की सी गुदगुदी का एहसास हुआ और उसके दूध से दांत ट्यूब लाईट की तरह चमक उठे।

गोलू की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। आँखों में खुशियों का सागर ठाठें मारने लगा और गुलाब की पंखुड़ियों से कोमल उसके होठों पर मुस्कान रूपी नर्तकी नाच उठी। इतना खुश वह कभी न हुआ था। चाबी की ट्रेन, रबड़ के बबुए या टीवी की कार्टून फिल्में भी उसे इतना आनन्द नहीं देती थीं, जितना कि वह गुलाब का नन्हा सा फूल।

पर तभी न जाने कहां से उड़ते–उड़ते एक रंग–बिरंगी तितली वहां आ टपकी। पहले तो उसे देखकर गोलू बहुत खुश हुआ। पर जब उसने देखा कि वह भी फूल की ओर लपक रही है, तो गोलू सावधान हो गया। उसके न्यारे फूल की खुश्बू और कोई सूंघे, यह कैसे हो सकता है ? और फिर केवल खुश्बू की बात होती, तो वह शायद मान भी जाता। वह तो फूल को ही जूठा करना चाहती थी।

"छी, लालची कहीं की ! सवेरे – सवेरे मुंह तक धोया नहीं और चली आयी बासी मुंह मेरे फूल को जूठा करने।" कहते हुए गोलू तितली को वहां से भगाने लगा।

लेकिन तितली कहां भागने वाली, इधर से उधर और उधर से फिर इधर! तितली आगे–आगे, गोलू पीछे –पीछे ! जहां गोलू ने फूल जूठा न करने देने की ठान ली थी, वहीं तितली ने भी जैसे फूल की खुश्बू सूंघने की जिद पकड़ ली थी। तितली एक पेड़ से उड़कर दूसरे पर चली जाती और फिर गोलू के वहां जाने पर वह तीसरे या पहले पर आ जाती।

तितली के पीछे भागते – भागते गोलू तो एकदम थक गया। उसका नन्हा सा दिल जोरों से धक – धक करने लगा और सासें सूं –

सूं ! मेहनत करने के कारण उसके चेहरे पर पसीना भी आ गया। हार कर वह पेड़ के पास बैठ गया। ठन्ड़ी – ठन्ड़ी हवा का झोंका जब उसके बदन से लगा, तो उसे बहुत अच्छा लगा। एक अनोखे आत्मिक सुख की उसे अनुभूति हुयी।

यह सब उस मासूम तितली की वजह से हुआ था। अब उसका सारा गुस्सा जाता रहा। उसने बड़े प्यार से तितली की तरफ देखा। वह एक दूसरे पेड़ पर बैठी ललचाई नजरों से गुलाब के फूल को देख रही थी। गोलू का तितली के प्रति मन बदल गया। वह तितली को सम्बोधित करके बोला, "लगता है तुम मुझसे नाराज हो गयी हो।....... आ जाओ, अब तुम खुश्बू सूंघ सकती हो। मैं तुम्हें डाटूंगा नहीं।"

पर तितली चुपचाप अपनी जगह पर बैठी रही। हिली तक नहीं। हां, उसने अपने नन्हें पंख एक बार जरूर हिलाए। गोलू को लगा वह बहुत नाराज है। आखिर उसने उसे दौड़ाया भी तो बहुत है। बेचारी थक गयी होगी। सच मैं कितना शैतान हूं। हमेशा दूसरों को परेशान करता रहता हूं। अब तो मुझे इससे माफी भी मांगनी पड़ेगी।

इतना कहकर गोलू ने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए और बोला, "लो, मैं तुमसे माफी मांगता हूं। अब तो मान जाओ।....लगता है अब भी तुम्हारा गुस्सा कम नहीं हुआ। ठीक है अपने कान भी पकड़ लेता हूं।"

कहते हुए गोलू ने अपने दोनों कान पकड़ लिए। पर तितली अब भी अपनी जगह से न हिली। "स्टेचू" बनी बैठी रही। इस बार तो उसने अपने पंख भी नहीं हिलाए। गोलू सोच में पड़ गया। अब क्या हुआ ? मैंने माफी मांग ली, हाथ जोड़े, कान भी पकडे! पर ये मानती ही नहीं। अब... अब क्या करूं ?

अचानक उसे कुछ याद आया और वह मुस्करा पड़ा। फिर धीरे से बोला, "ओह, तो अब समझा, तुम शर्मा रही हो ?"

तितली ने इस बार दो दफे पंख हिलाए। जैसे कह रही हो "हाँ"! गोलू फिर बोला, "कोई बात नहीं, मैं आखें बंद कर लेता हूं।" और फिर

गोलू ने अपने नन्हें –नन्हें हाथें से आँखें बंद कर लीं। पर वह उंगलियों के बीच से बराबर झांकता रहा, ये देखने के लिए कि तितली क्या करती है। पर जब वह अपनी जगह से न उड़ी, तो उसने पुनः आँखें खोल दीं और बोला, "समझा, तुम्हें पता है मैं झांक रहा था। ठीक है, मैं ही यहां से चला जाता हूं, जिससे तुम मजे से इसकी खुश्बू ले सको।"

कहकर गोलू खड़ा हुआ और बरामदे की तरफ चल पड़ा। चार–पाँच कदम बढ़ाने के बाद उसने पलट कर देखा, तो तितली को गुलाब के फूल पर बैठा हुआ पाया। वह मजे से फूल का मकरंद चूस रही थी और प्रसन्नता पूर्वक अपने पंखों को हिला रही थी।

यह देखकर गोलू के चेहरे पर एक बार फिर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी और उसके रसगुल्ले से गाल गुलाब के फूल से भी ज्यादा लाल हो गये।
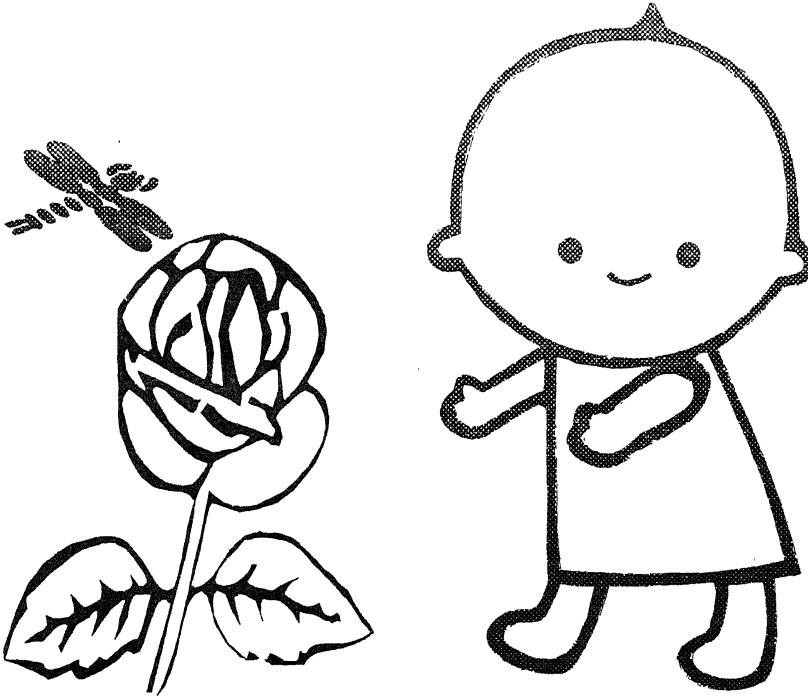
सबसे बड़ी चीज़

ऊषा रानी

लीषा आज बहुत व्यस्त है। वह अपना घर सजाने में लगी हुई है। कभी वह किसी सामान को इधर रखती है, तो कभी उधर। सच पूछो तो उसे उपने आप पर गुस्सा भी आ रहा है। क्यों भला उसने अपना सामान इधर–उधर बिखराया ? मम्मी तो रोज कहती हैं कि अपना सामान ठीक से रखा करो। पर उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया। कहीं गुड़िया चारपाई पर डाल दी, कहीं चाबी वाली कार को टीवी के पास लुढ़का दिया। इसी तरह उसके सारे खिलौने इधर–उधर पड़े रहते हैं। मम्मी उन्हें संभाल कर रखती हैं, लेकिन वह उन्हें फिर से बिखरा देती है।

लेकिन आज, आज तो वह खुद ही सारा सामान संजो कर रख रही है। गुड़िया को ठीक से अलमारी में सजा रही है, चाबी वाली गाड़ी को संभाल कर रख रही है,......। बहुत सारे काम हैं उसके पास। कहां तक गिनाएं ? उसकी मम्मी दरवाजे के पास खड़ी उसे देख रही हैं और मन ही मन हंस भी रही हैं। सच पूछो तो उन्हें हैरानी भी हो रही है। क्योंकि हमेशा सामान को इधर–उधर बिखराने वाली लीषा आज सामान को संजो रही है। ये तो वही बात हुई न कि बबूल के पेड़ में गुलाब उग आएं।

लीषा ऐसा कर रही है, तो उसके पीछे एक कारण है। और वह

कारण है स्वीटी। स्वीटी यानी उसकी सहेली। वह उसके साथ ही स्कूल में पढ़ती है। उसका घर भी लीषा के घर से थोड़ी दूरी पर है। लीषा को स्वीटी बहुत अच्छी लगती है और स्वीटी को लीषा पसंद है। बस इसीलिए दोनों में दोस्ती है। दोनों आपस में ढ़ेर सारी बातें करती हैं और पढ़ाई भी। साथ–साथ घूमना तो खैर होता ही है। और उसमें उन्हें खूब मज़ा भी आता है।

पिछले दिनों लीषा, स्वीटी के घर गयी थी। बाप रे, कितना बड़ा घर था उसका। चमचमाती हुयी दीवारें। एकदम जैसे कोई महल। लेकिन उस घर में स्वीटी एकदम अकेली थी। साथ में थे दो तीन नौकर और असका कुत्ता टॉमी। स्वीटी के मम्मी–पापा दोनों डॉक्टर हैं। वे सुबह अस्पताल चले जाते हैं और रात में देर से लौटते हैं। स्वीटी सारा दिन नौकरों के साथ बिताती है। वह या तो दिन में पढ़ाई करती है, या फिर टीवी पर कार्टून फिल्में देखती है। लेकिन जब लीषा उसके साथ घर गयी, तो वह बहुत खुश हुई। उसने लीषा को अपने ढ़ेर सारे खिलौने दिखाए, बढ़िया–बढ़िया पकवान खिलाए और वी.सी.आर पर पिक्चर भी दिखाई।

वही स्वीटी, आज लीषा के घर आ रही है। बस इसीलिए लीषा अपने घर को सजाने में व्यस्त है। लीषा के पापा कालेज में पढ़ाते हैं। वे कहानियां भी लिखते हैं बच्चों के लिए। सादगी भरा उनका जीवन है इसलिए उनके घर में दिखावटी चीजें बिलकुल नहीं हैं। छोटा सा उनका मकान है और थोड़ी बहुत चीजें। बस वो ही सब, जिनसे गुजारा हो जाए।

अपने सामान को ठीक करते–करते लीषा यही सब सोच रही है कि पता नहीं उसकी सहेली को उसका घर पसंद भी आए या नही ? उसके यहां तो ढ़ेर सारी कीमती चीजें हैं, खिलौनें हैं, सोफे हैं और भी न जाने क्या–क्या। पर उसके यहां तो....। वह बहुत अमीर लड़की है और लीषा..। पता नहीं स्वीटी उसके यहां आकर खुश भी हो या नहीं?

पता नहीं उसे यह घर अच्छा लगे भी....?

बस यही छोटी सी शंका है, जो उसके मन में उठ जाती है। लेकिन फिर अगले ही पल वह सोचती है, तो क्या हुआ? मेरे यहां तो मेरी मम्मी हैं। मेरी प्यारी–प्यारी मम्मी, जो मुझे ढ़ेर सारा प्यार करती हैं। मेरे चुम्मी लेती हैं......। और वह मुस्करा कर फिर से अपने काम में लग जाती है।

''पीं–पीं'' अचानक कार का हार्न सुनकर लीषा की तन्द्रा भंग हो गयी और वह तेजी से बाहर की ओर भागी।

बाहर स्वीटी ही थी। वह अपनी चमचमाती हुयी कार से उतर रही थी। लीषा उसे लेकर अंदर आई। सामने ही लीषा की मम्मी मिल गयीं। उन्होंने मुस्करा कर स्वीटी का स्वागत किया। स्वीटी का चेहरा खिल गया और वह इतनी खुश हुई कि नमस्ते करना भी भूल गयी।

स्वीटी को अंदर ले जाकर लीषा उसे अपने खिलौने दिखाने लगी। पर स्वीटी का ध्यान लीषा की मम्मी पर ही लगा हुआ था। कितनी अच्छी हैं ये। कितना प्यार करती हैं। किस तरह हंस कर बात करती हैं। मन करता है कि...।काश मेरी मम्मी भी.....।

तब तक लीषा की मम्मी प्लेट में कुछ खाने को ले आईं। वे प्लेट को मेज पर रखती हुई बोलीं, ''लो बेटी, इसे खाओ, गाजर का हलवा।''

''हलवा!'' स्वीटी जैसे नींद से जगी हो, ''पर मैं.....।''

स्वीटी को अपना घर याद आ गया। यही सब तो मिलता है उसे रोज खाने में। हलवा, मिठाई, व्यंजन..... न जाने क्या–क्या? उसे तो इन सब चीज़ों से घृणा सी हो गयी है। क्या बच्चों को सिर्फ यही सब चाहिए? क्या ये ही चीजें बस काफी हैं? क्या बस इतना ही...? वह बोली, ''आंटी, मुझे मिठाइयों से सख्त नफरत है।''

लीषा और उसकी मम्मी हैरान रह गयीं। लीषा ने उन्हें स्वीटी के बारे में सब कुछ बता दिया था। वे उसके मन का दर्द समझ गयीं। उन्होंने लीषा को अपनी गोद में बैठा लिया और प्यार से उसके सिर पर

हाथ फेरते हुए बोलीं, "बेटी, ऐसी बात नहीं कहते। मिठाइयां तो ...।"

उनकी बात अधूरी रह गयी। क्योंकि स्वीटी रोने लगी थी। उसके आँसू बह रहे थे। उसके गुलाब से गाल भीग चले थे। पर ये आँसू दुख के नहीं, प्रसन्नता के थे। उसे लीषा की मम्मी से इतना प्यार मिला था, कि वह उसे संभाल नहीं पाई थी और...।

"क्या बात है बेटी? तुम रो रही हो?" लीषा की मम्मी ने पूछा।

"कुछ नहीं आंटी!" स्वीटी ने अपने आँसू पोंछे, "बस, कभी इस तरह से किसी ने प्यार नहीं किया न, इसलिए...।"

"ओह!" लीषा की मम्मी बोलीं, "...अच्छा, मैं तुम्हारे लिए समोसे लेकर आती हूँ....।"

"...नहीं आंटी जी।" स्वीटी ने उनका हाथ पकड़ लिया, "मैं तो ये ही खाऊंगी।"

"... पर ....।" उन्होंने कुछ कहना चाहा।

"इस थोड़े समय में आपने इतना प्यार दिया है मुझे।" स्वीटी बोली, "अब अगर आप अपने हाथों से जहर...।"

लीषा की मम्मी हैरान रह गयीं। उन्होंने जल्दी से स्वीटी के मुंह पर हाथ रख दिया और उसे अपनी गोद में चिपटा लिया।

लीषा यह देख कर गर्व से फूली न समाई। उसकी सारी शंकाएं मिट्टी में मिल चुकी थीं। उसे इस बात का गर्व हो रहा था कि उसके पास भले ही कीमती खिलौने न सही, पर वह सबसे बड़ी चीज तो है, जिसे मां का प्यार कहते हैं।

ऐसे मना जन्मदिन

अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

बंटी की मम्मी सोकर उठीं तो रोज की तरह आज भी सबसे पहले बंटी को जगाने के लिए उसके कमरे में गईं। लेकिन यह क्या? बंटी का बिस्तर तो खाली था। मम्मी को बहुत आश्चर्य हुआ कि रोज सुबह चार बार जगाने, झिंझोड़ने वाला बंटी अपने आप इतने सबेरे कैसे जाग गया। वह बंटी को इधर–उधर ढूंढ़ने लगीं। उन्होंने देखा, आंगन में पिछवाड़े वाला दरवाजा खुला था। वह तेजी से लपक कर पिछवाड़े पहुंचीं। वहां बंटी एक खुरपी लिए जल्दी–जल्दी एक गड्ढ़ा खोदने में जुटा था। बंटी को वहां देखकर मम्मी की जान में जान आई।

"यह क्या बंटी? सुबह–सुबह यहां पिछवाड़े की गंदगी में तुम क्या कर रहे हो?" बंटी की मम्मी ने डांटा।

मम्मी के एकाएक आ जाने से बंटी ऐसे सकपका गया जैसे उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो। फिर भी खुद को संभालते हुए बोला, "कुछ नहीं मम्मी... बस यूं ही थोड़ी सफाई कर रहा था...।"

"चलो अंदर... सुबह–सुबह पढ़ना–लिखना नहीं है...? बड़े आए सफाई करने वाले..."

मम्मी की डांट सुनकर बंटी जल्दी से अन्दर आ गया। तब तक बंटी के पापा भी जाग गए थे। मम्मी उनसे बोलीं, "बड़ा अजीब लड़का है... पिछवाड़े की गंदगी में न जाने क्या करता रहता है... चार–पांच दिन

पहले भी सब्जी काटने वाली हंसिया लेकर पिछवाड़े की झाड़–झंखाड़ साफ कर रहा था। आज भी सवेरे–सवेरे खुरपी लिए न जाने क्या खोद रहा था.. पूछने पर कुछ बताता भी नहीं...।"

लगभग दो घंटे बाद जब बंटी स्कूल के लिए तैयार हो कर निकलने लगा तो मम्मी बोलीं "बंटी बेटे, याद है न आज तुम्हारा जन्म दिन है।"

"हां मम्मी, यह भी कोई भूलने की बात है?" बंटी ने कहा।

"बेटा, मैं तुम्हें इसलिए याद दिला रही हूं कि कहीं आज शाम भी तुम स्कूल में खेल में न लग जाओ। छुट्टी होते ही सीधे घर आना। शाम को तुम्हारे जन्मदिन की पार्टी की तैयारी करनी है। और हां, तुम चाहो तो अपने दोस्तों को भी शाम को बुला लेना।" "ठीक है मम्मी.." बंटी ने कहा और स्कूल के लिए निकल गया।

बंटी की छुट्टी शाम तीन बजे हो जाती है। मम्मी प्रतीक्षा कर रही थीं कि बंटी स्कूल से लौटे तो दुकान से कुछ सामान मंगाएं। धीरे–धीरे साढ़े चार बज गए लेकिन बंटी स्कूल से नहीं लौटा। मम्मी काफी देर से गेट के पास ही खड़ी थीं। तभी बंटी अपने चार–पांच दोस्तों के साथ आता दिखाई दिया। उसके हाथ में आम का एक छोटा सा पौधा था तथा उसके दोस्तों के हाथों में कंटीली झाड़ी की टहनियां। उसे देखते ही बंटी की मम्मी का पारा गरम हो गया लेकिन इससे पहले कि वह कुछ कहतीं बंटी बोल पड़ा "सॉरी मम्मी, मैं जानता हूं आप बहुत परेशान होंगी लेकिन मैं आपको एक सरप्राइज देना चाहता था।"

"यह क्या लिए हो हाथ में...?" मम्मी ने डांट कर पूछा। "मम्मी यह तो नन्हा सा, प्यारा सा आम का पौधा है...।"

"वह तो मैं भी देख रही हूं... लेकिन यह लाए किसलिए हो?" "आज मेरा जन्मदिन है न मम्मी.... अपने जन्मदिन पर मैं एक पौधा लगाऊंगा... इसी के लिए तो मैं कई दिनों से पिछवाड़े की तरफ जगह साफ करके गड्ढ़ा बना रहा था...।"

"लेकिन इससे क्या फायदा? तुम्हें हमेशा फालतू काम ही सूझता है..." मम्मी बोलीं। "फालतू नहीं मम्मी जी, यह तो बहुत जरूरी काम है. .. हम सभी दोस्तों ने यह तय किया है कि अपने-अपने जन्मदिन पर सभी लोग एक-एक फलदार पौधा लगाएंगे ताकि यह सूनी सी कालोनी हरियाली से भर उठे और फलों के मौसम में मीठे-मीठे फल भी खाने को मिलें।" बंटी ने कहा।

"अरे बुद्धू, देखता नहीं यह आम का पौधा है... पूरे पांच साल के बाद फल लगते हैं इसमें... तब तक तो हम लोग न जाने कहां होंगे... ट्रांसफर वाली नौकरी का क्या भरोसा कि कब कहां जाना पड़े... तुम इसका फल खाने के लिए पांच साल यहां बैठे रहोगे क्या...?" मम्मी बोलीं।

"अच्छा एक बात बताइए, मम्मी। हम लोग आम, अमरूद, सेब, संतरे जितने भी फल खाते हैं क्या उनके पौधे हम लोगों ने लगाए थे. ..। नहीं न... फिर जब दूसरों के लगाए पौधों के फल हम खा सकते हैं तो दूसरों के लिए पेड़ लगाना भी तो हमारा फर्ज है... फिर पर्यावरण की रक्षा भी तो जरूरी है... दरवाजे, खिड़की, फर्नीचर आदि के लिए रोज हजारों पेड़ काट दिए जाते हैं... अगर इसी तरह पेड़ कटते रहे और नये पेड़ न लगाए गए तो एक समय ऐसा भी आएगा जब इस धरती पर कोई पेड़ ही नहीं बचेगा... फिर फल, छाया और लकड़ी की बात तो दूर हमें सांस लेने के लिए शुद्ध हवा यानी ऑक्सीजन भी नहीं मिलेगी... इसलिए पेड़ लगाना बहुत ही जरूरी काम है मम्मी जी...।" बंटी ने जवाब दिया।

"चलो। मानती हूं तुम्हारी बात लेकिन यह भी कभी सोचा है तुमने कि कितनी सारी लावारिस गाय, भैंस सारे दिन इस कालोनी में घूमती रहती हैं... एक ही दिन में चट कर जाएंगी तुम्हारे पौधे को..."

"उसका प्रबंध हमने कर लिया है आंटी जी... पौधे के चारों तरफ हम ये झाड़ियां लगा देंगे... सभी पौधों की रक्षा हम सभी दोस्त मिलकर करेंगे...।" बंटी के दोस्त चुन्नू ने कहा। बातचीत में व्यस्त किसी ने देखा

ही नहीं कि कब बंटी के पापा ऑफिस से आकर पीछे चुपचाप खड़े हो गए और उन लोगों की बातें सुनने लगे।

अब पापा ने मम्मी से कहा "याद रखना, हम लोग भी अपनी शादी की वर्षगांठ पर पिछवाड़े की तरफ एक फलदार पौधा लगाएगे।"

"अच्छा–अच्छा, लगाना पौधा... लेकिन पहले तो बाजार जाओ... ढ़ेर सारा सामान लाना है...।" मम्मी ने कहा और घर के अन्दर चली गईं।

मम्मी–पापा को बात करते देख बंटी अपने दोस्तों के साथ पिछवाड़े की तरफ खिसक लिया और गड्ढ़े में पौधा रोपने लगा।
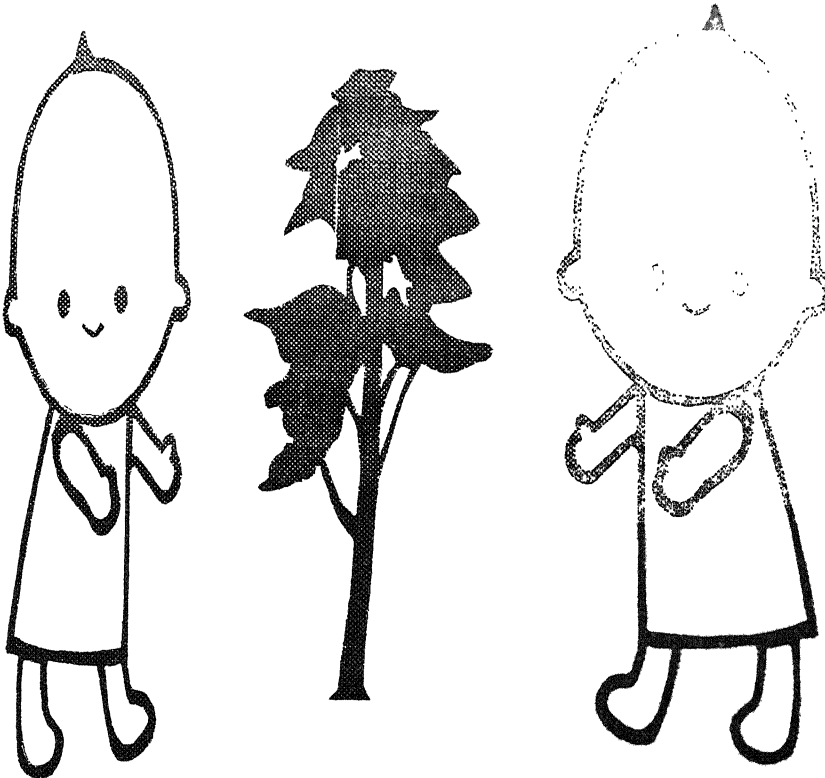
मेवे की खीर

उषा यादव

एक था बच्चा। नाम था उसका मोनू। छोटा–सा, प्यारा–प्यारा, लेकिन बड़ा खिलाड़ी। पढ़ने–लिखने में उसका मन ही नहीं लगता। मां रोज़ प्यार से समझाती, "बेटा, पढ़ोगे–लिखोगे नहीं तो बड़े अफसर कैसे बनोगे? तुम्हें चाट–पकौड़ी का ठेला लगाना पड़ेगा।"

मोनू हंसकर मां के गले में अपनी बाहें डाल देता। कहता, "ऐसा नहीं होगा, मां। तुम देखना, मैं खूब पढूंगा। पढ़–लिखकर पापा से भी बड़ा अफसर बनूंगा।"

"सिर्फ सोचने से अफसर नहीं बनते हैं बेटा। उसके लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है।" मां प्यार से समझाती।

लेकिन मोनू महाशय मां की बातों पर ध्यान न देते। जब जी चाहा, गेंद उठाई और खेलने निकल पड़े। जब मन किया, पतंग–चरखी उठाई और छत पर चढ़ गये। जब इच्छा हुई, जेब में मूंगफली भरी और पार्क में झूला झूलने चल दिये।

मां टोकती रह जाती, "बेटा, सुनो तो सही, तुमने पढ़ाई का जो टाइम टेबिल बनाया था, उसका क्या हुआ?"

"आज क्रिकेट का मैच है मां। मैं अपनी टीम का फास्ट बॉलर हूं। मैदान में नहीं पहुंचूंगा तो लड़के नाराज होंगे। टाइम टेबिल के अनुसार पढ़ाई कल से करूंगा।" मोनू जी बड़े मजे से मां को पट्टी पढ़ा देते।

मां झुंझलाती रह जाती, "यह लड़का है या मुसीबत। मेरी तो कभी सुनता ही नहीं है। आज आने दो इसके पापा को, शिकायत करूंगी।"

पर शिकायत की नौबत भी कहां आ पाती? दिन भर के थके–मांदे पापा रात को जब घर लौटते, मोनू बिस्तर पर सोया मिलता। पापा जब सुबह सोकर उठते, मोनू स्कूल जा चुका होता। बचता एक इतवार का दिन। उस रोज पापा के इतने मिलने–जुलने वाले आते कि डांट वाली बात मां भूल ही जाती। बस, मोनू बाबू की चांदी हो जाती।

दिन इसी तरह निकलते गये।

शुरू जुलाई में मोनू ने लाल–पीली स्याही से पढ़ाई का जो टाइम टेबिल बनाया था, वह मेज पर पड़ा–पड़ा धूल से गंदा हो गया। खिलाड़ी मोनू न अपने मन से कभी पढ़ने बैठता, न मां के टोकने का कभी उस पर कोई असर होता। मां परेशान! समझ नहीं पाती कि क्या करे?

और ऐसे ही छमाही इम्तहान नजदीक आ गये। लेकिन मोनू का खिलाड़ीपन कम न हुआ। रोज़ की तरह उस शाम भी जब वह घर से निकलने लगा, मां ने आवाज़ दी, "बेटे, जरा सुनो।"

"जी मां।" उछलता–कूदता मोनू ठहर गया।

"आज शनिवार है न।"

"जी हाँ।"

"टाइम टेबिल के हिसाब से आज तुम्हें कौन–सा विषय पढ़ना है?"

पढ़ाई की चर्चा मोनू को बहुत बुरी लगी। मुंह बनाते हुए बोला, "आज हमारा दूसरे मुहल्ले के लड़कों के साथ क्रिकेट का मैच है। टाइमटेबिल को कल से...।"

"हाँ–हाँ, ठीक है।" मां ने तुरन्त बात खत्म कर दी, "तुम जाओ बेटे, दोस्त इंतजार कर रहे होंगे। लेकिन लौटने में ज्यादा देर मत लगाना। आज तुम्हारी मन पसन्द मेवे की खीर बना रही हूँ।"

मां मुस्कराई तो मोनू की बांहें खिल गईं। "वाह खीर!" कहते हुए उसके मुंह में पानी भर आया। मां से "टा–टा" करके वह खेलने निकल गया।

फिर उस दिन ऐसा हुआ कि खिलाड़ी मोनू का मन खेल में कम, खीर में ज्यादा लगा रहा। थोड़ी–थोड़ी देर बाद वह चटखारे भरकर सोचता– "अहाजी! आज तो खाने में मजा आ जायेगा। मेवे की खीर मिलेगी। खूब गाढ़ा दूध, ढ़ेर सारे मेवे और चीनी की मिठास। भीमा हलवाई की रसमलाई को पछाड़ देने वाली मां की स्वादिष्ट खीर! कोई कुछ भी कहे, वह तो उंगलियां चाट–चाट कर खायेगा। खाने–पीने के मामले में भला शर्म कैसी?"

और खेल खत्म होते ही लंबे–लंबे डग भरता हुआ वह घर पहुंचा। रसोई के दरवाजे पर खड़ा होकर बोला, "खीर पकने में कितनी देर है, मां? मुझे भूख लगी है।"

"बस, दो मिनट!" मां मुस्कराई, "अभी खाना तैयार हुआ जाता है।"

मोनू कमरे में आकर टेलीविजन देखने बैठ गया, लेकिन उसकी आंखों के सामने मेवे की खीर घूमती रही। टेलीविजन देखने में उसका मन न लगा।

जैसे ही रसोई से मां की आवाज़ सुनाई दी, "मोनू, खाना खाने आओ।" झटपट हाथ धोकर वह खाना खाने पहुंच गया।

पर यह क्या? यहां तो थाली में लौकी की सब्जी और रोटियां रखी हुई थीं।

थाली देखते ही मोनू के मुंह का स्वाद बिगड़ गया। इस लौकी के नाम से ही वह चिढ़ता है, फिर भी पता नहीं क्यों मां इसे पकाकर रख देती हैं। सोचो जरा, खीर के साथ अगर आलू के पराठे या सूखे आलू और पूरियां होतीं तो कितना मजा आता! खैर, एक आध रोटी इस सड़ियल सब्जी से ही खा लेगा वह। उसके बाद मजेदार खीर मुंह का

स्वाद बदल देगी। मां की तो खाने का मज़ा किरकिरा करने की आदत है। अपना मूड़ क्यों बिगाड़े वह?

खुद को समझा–बुझा कर उसी बेस्वाद लौकी के साथ मोनू ने दो रोटियां खत्म कीं। फिर इधर–उधर देखते हुए बोला, "अब खीर दो मां।"

"ऐं, खीर? खीर तो नहीं है बेटा।" मां ने जैसे डरते–डरते कहा।

मोनू को मां की इस बात पर भरोसा नहीं हुआ। उसे लगा, मां हंसी कर रही है। मचलकर बोला, "तंग नहीं करो मां, जल्दी खीर परसो। वरना मैं सारी बटलोई चट कर जाऊँगा। तुम्हारे और पापा के लिए एक चम्मच खीर भी नहीं छोड़ूंगा।"

"खीर सचमुच नहीं है बेटे।" मां ने सिर झुकाये हुए कहा।

"तुमने खीर नहीं पकाई?" मोनू झुंझला गया।

मां एक मिनट चुप रही। फिर धीमी आवाज़ में बोली, "आज एक जरूरी काम से पड़ोस में जाना पड़ गया। खीर पकाने का वक्त ही नहीं रहा। कल जरूर बना दूंगी।"

"भाड़ में गया तुम्हारा कल!" मोनू का गुस्सा भड़क उठा, "क्यों झूठे बहाने बनाती हो मां। साफ कहो, आलस में पड़कर तुमने लौकी–रोटी बना ली। खीर पकाने में झंझट जो होता है।"

"इतनी नाराजी।" मां मुस्कराई, "छोड़ो, बात खत्म करो बेटे, कल जरूर खीर पका दूंगी।"

"कैसा कल? किसका कल?" मोनू जी ऐंठे, "कल भी इसी तरह टाल जाना। एक और कल के लिए कह देना। हो जायेगी खीर की छुट्टी।"

"तुम्हें तो कम से कम यह शिकायत नहीं करनी चाहिए बेटे। तुम भी तो रोज़ यहीं किया करते हो।" मां ने एकदम शांत आवाज़ में कहा।

"मैं?" मोनू चौंका।

"और क्या। रोज़ टाइम टेबिल के हिसाब से पढ़ाई शुरू करने की

बात। रोज़ एक–न–एक बहाना बनाकर उसे टाल जाने की आदत। यही काम एक दिन मां ने कर दिया तो इतना गुस्सा।''

मां की आंखें भर आईं।

मोनू का सिर शर्म से झुक गया। वह समझ गया कि मां ने उसे सीख देने के लिए ही खीर वाली बात कही थी। सचमुच खीर बनाने का आज उनका इरादा था ही नहीं।

उसके मुंह से आगे एक शब्द भी नहीं निकला। चुपचाप सिर झुकाये हुए उठा और कुल्ला करके अपने पढ़ाई के कमरे में जा पहुँचा।

महीनों पहले बनाये टाइम टेबिल की धूल झाड़ते हुए मोनू ने सोचा, ''आज नहीं अभी, इसी पल उसे अपनी पढ़ाई शुरू कर देनी है।

मेवे की खीर नहीं, सिर्फ अपना संकल्प अब उसके सामने था।
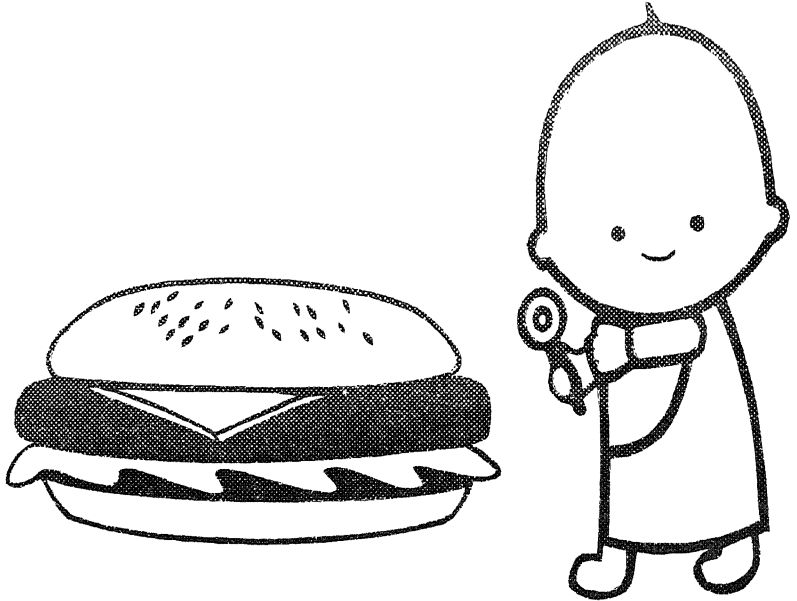
मुन्ना हुदहुद की जूती

के०पी० सक्सेना

अब पहले हम तुम्हें यह बताएं कि उन्हें मुन्ना हुदहुद क्यों कहा जाता था। मुन्ना उनका प्यार का नाम था। मां—बाप बहुत चाहते थे उसे बचपन में। वही नाम हमेशा के लिए पड़ गया। और यह हुदहुद? हुदहुद एक चिड़िया होती है, जो मियां मुन्ना को बचपन से ही बहुत पसन्द थी। पिंजड़े में कई हुदहुद पाल रखी थीं। बड़े होने पर भी हुदहुद की बोली खुद अपने मुंह से निकालते थे। कुल मिलाकर नाम पड़ गया मुन्ना हुदहुद।

अब मुन्ना हुदहुद बाल—बच्चेदार हैं। लगभग हमारी ही उम्र के हैं। हमसे पटती भी खूब है। जब—जब हम उनके घर गए, खूब खातिर की। एक दिन संध्या समय शतरंज खेलने हम उनके वहां पहुंचे। आज कुछ अलग ही दृश्य देखा।

मुन्ना हुदहुद नंगे बदन, तहमद पहने, पंखे के नीचे बैठे थे। पास में कई फीते, पटरियां और जामेट्री बाक्स रखा हुआ था। मुन्ना हुदहुद परकार और पेंसिल से निशान लगाकर अपना पैर नाप रहे थे। हमें देखकर बोले "आइए, आइए! हम जरा अपना पैर नाप रहे हैं।"

"मगर क्यों? क्या पैर के नाप का बक्सा बनवा रहे हैं? या अपना पैर भी हुदहुद की तरह पिंजड़े में पालेंगे?"

"भई आप तो निरे बेवकूफ हैं। इतना भी नहीं समझते कि हमें

अपने पैर का जूता बनवाना है। शहर में एक जूता बनाने वाला आया हुआ है। उसे अपने पैर का नाप देना है।"

"मगर आपका जूता तो बिल्कुल नया और चमचमाता हुआ है। फिर क्या जरूरत आ पड़ी?"

"आप इसे जूता कहते हैं? यह देखिए। इनका पूरब और पश्चिम अलग–अलग है।" इतना कहकर मुन्ना हुदहुद ने धीरे से खींचकर जूते का सोल और ऊपरी हिस्सा अलग–अलग कर दिया। नए जूते की यह हालत देखकर हमें भी हंसी आ गई। हुदहुद बोले, "यार, यह जूता एकदम बेकार है। हम दफ्तर पहुंच जाते हैं तब पता लगता है कि जूते का सोल सदर बाजार में ही पड़ा है। दोबारा वापस जाना पड़ता है। बड़े साहब के कमरे से फाइल पर दस्तखत कराकर लौटते हैं तो चपरासी जूते का सोल पीछे–पीछे प्लेट में लेकर आता है कि वहीं छूट गया था। आप इसे जूता कहते हैं?"

मुन्ना हुदहुद के इस दुख पर मुझे भी तरस आ गया। तभी वह लेटकर पेट के बल अपनी चारपाई के नीचे रेंग गए और एक पुरानी संदूकची घसीट लाए। उस पर से धूल–धक्कड़ झाड़कर बोले, "पहले इसे नमस्ते करो। यह हमारा खानदानी म्यूज़ियम (संग्रहालय) है। बड़ी मेहनत और लगन से जुटा पाए हैं।"

हमने सिर झुकाकर संदूकची को नमस्ते बोल दी। मगर जैसे ही हुदहुद ने संदूकची खोली, हमने अपना और हुदहुद का सिर एक साथ पीट लिया। संदूकची में पुराने और हर साइज के जूते भरे पड़े थे। हुदहुद ने बड़े प्यार से एक नन्ही–मुन्नी जूती निकाली और अपने कुर्ते से साफ करते हुए चूमकर बोले, "इस संदूकची में हमारी सब यादगार जूतियां हैं। यह वह जूती है जो हम छह महीने की उम्र में पहना करते थे। इसे पहनकर झूले में पड़े–पड़े अपनी जूती, मेरा मतलब अपना अंगूठा चूसते रहतें थे। फिर स्कूल गए और फिर कालेज। फिर क्रिकेट खेला और फिर शादी हुई। हर मौके, हर उम्र की एक एक जूती मौजूद

है। हर जूती के तल्ले पर उसके खरीदे जाने और फट जाने की तारीख लिखी है।''

हुदहुद ने बड़ी सावधानी से अपना 'जूती संग्रहालय' बन्द किया और दोबारा पेट के बल लेटकर चारपाई तले छिपा आए। बाहर निकलकर बोले, ''मेरे दोस्त! मुझे जीवनभर न खाने का शौक रहा, न पहनने का। सिर्फ जूतों का शौक रहा। पतलून भले ही बीमार और तार–तार रही मेरी, मगर जूती हमेशा चमचमाती रही। अब मुझे नया जूता बनवाना है।''

मैंने हुदहुद को समझा दिया कि शहर की एक बहुत बड़ी जूतों की दुकान में मेरी जान–पहचान है। मैं उन्हें बेहतरीन जूता दिला सकता हूं। इतना सुनना था कि हुदहुद ने उचककर पतलून–बुशर्ट पहनी और जूता पैर में डालकर मेरे साथ हो लिए। हम दोनों दुकान पर जा पहुंचे और हुदहुद के नाप का जूता निकाला जाने लगा। हुदहुद का पांव ही कुछ ऐसा कुदरती टेढ़ा–मेढ़ा था कि कोई जूता बड़ा निकलता और कोई पांव में कस जाता। एक जूता तो इतना कस गया कि दुकान के कई कर्मचारियों ने पूरी ताकत लगाकर उनके पैर से घसीटा। सब डर रहे थे कि कहीं हुदहुद की टांग न अलग हो जाए। हुदहुद के सामने जूतों का ढ़ेर लग गया था। तभी अचानक हुदहुद चीखे, मिल गया। यह साइज एकदम ठीक है।''

हम सब का हंसी के मारे बुरा हाल था। देखते क्या हैं कि हुदहुद जूते के डिब्बे में पांव डाले बैठे हैं। मुझे भी शरारत सूझी और कहा, ''इन्हें एक डिब्बा और दे दीजिए। कुछ दिन डिब्बा पहनकर ही काम चला लेंगे।''

तभी दुकान के मालिक ने हुदहुद से कहा कि अब कल आइएगा। साढ़े आठ बज चुके थे और नियमानुसार दुकान बन्द करनी थी। हुदहुद झुंझलाए हुए मेरे साथ बाहर निकल आए और दुकान का शटर गिर गया। थोड़ी दूर चलकर हुदहुद घबराकर बोले, ''अरे! मैंने तो अपना

पुराना जूता भी दुकान के अंदर ही छोड़ दिया। फौरन वापस चलो।"

हुदहुद सचमुच नंगे पैर चल रहे थे। मैंने वापस जाकर शटर थपथपाया। दुकान के एक नौकर ने थोड़ा सा शटर ऊपर उठाया और कछुए की तरह जरा-सी गर्दन बाहर निकालकर बोला, "कहिए।"

"भई, हम जो जूते पहनकर आए थे, उन्हें भी अन्दर भूल आए हैं। जरा बाहर फिकवा दीजिए।"

"अब तो मुश्किल है। मैंने वे जूते भी डिब्बे में बन्द करके ऊपर लगा दिए। सारे डिब्बे एक जैसे हैं। अब हजारों डिब्बों में उन्हें ढूंढ़ना आसान नहीं है। दुकान बंद हो चुकी है? कल आइएगा ले जाइएगा।"

इतना कहकर उसने शटर बंद कर दिया। हुदहुद बेचारे परेशान कि अब नंगे पैर घर कैसे जाएं? कोई मामूली चप्पल खरीदना उनकी शान के खिलाफ था। सो उन्होंने पैंट जरा नीचे खिसका कर पांव ढक लिए और अपने पैर ढांपते हुए धीरे-धीरे घर लौट आए।

अगले दिन देखता क्या हूं कि हुदहुद बढ़िया सूट और टाई के साथ लकड़ी के खड़ाऊं पहने आफिस से लौट रहे हैं। मेरे पूछने से पहले ही बोले, "अब ठीक है, दोस्त। यह काफी मजबूत चीज़ है। इसका सोल भी अलग नहीं होता।"

... और वे खटर-पटर करते तेजी से आगे बढ़ गए। सुना है कि उनका नया जूता कई ऊंचे कारीगर मिलकर बनाने में लगे हुए हैं।
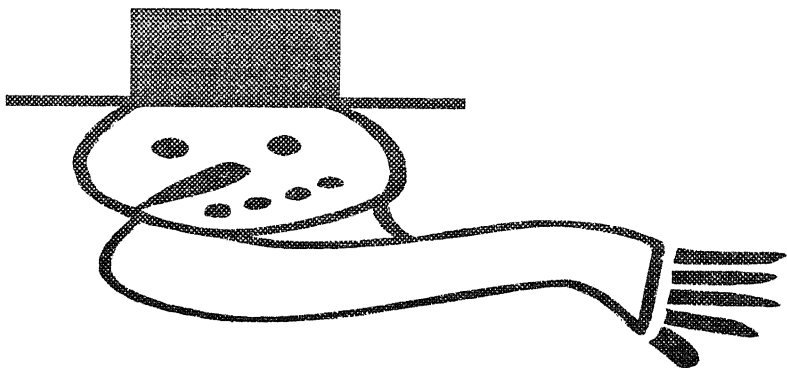
गोपी

सावित्री परमार

लम्बी यात्रा से लौटी शिल्पा। पड़ोसन कान्ता ने घर की चाबी के साथ–साथ डाक भी दी। काफी सारे पत्र थे। शिल्पा धूप में कुर्सी लगा कर डाक ले बैठ गई। शांति से पत्र पढ़ने लगी।

गुलाबी रंग का एक लिफाफा नज़र को बार–बार बांधने लगा। किसका होगा? पता भी अजीब–सी लिखावट का है, कौन हो सकता है? उन्होंने गुलाबी लिफाफे को खूब उलट–पलट कर देखा, कुछ अन्दाजा नहीं लगा पाई।

हैरान मन से उन्होंने गुलाबी लिफाफा खोला। उसमें से एक पतली झिल्ली जैसे कागज पर शादी का निमंत्रण–पत्र निकल कर उनकी गोद में आकर गिर गया। साथ ही धारीदार कापी के कागज पर लिखा एक खत था। एक सरसरी निगाह उन्होंने ऊपर से नीचे तक डाली...आपका गोपी...कौन गोपी?

वह पत्र पढ़ने लगीं–

परम आदरणीया गुरु दीदी!

गोपी का प्रणाम स्वीकार हो।

दीदीजी, जब आप पूरा पत्र पढ़ लेंगी, तब शायद आपको अपना शिष्य वह गोपी याद आ जायेगा, जिसे गर्द–गुबार और गले तक अभावों के दलदल से निकाल कर आपने अपनी ममता की छाया दी। प्यार और

सहारा दिया। साहस, प्रेरणा और सही दिशा का ज्ञान कराया। मैं जब टूट कर बिखर जाने वाला था, तब आप ही तो थीं, जिन्होंने अपना हाथ बढ़ा कर मुझे संभाला। आशा बंधाई और भविष्य को संवारने में, फिर से मजबूत हो सकूं, इसके लिए हरसंभव मेरी मदद की। आपने अपने शिष्य के सिर पर इस तरह आशीर्वाद का हाथ रख दिया कि मैं आपका पुत्र जैसा हो गया था। आज मेरे चेहरे पर जो सूरज की रोशनी उगी है, वह आपके ही कारण तो, दीदी जी, आपको मैंने जितना जाना–समझा उस पर मुझे गर्व रहा। सदैव ही रहेगा। जहां एक ओर विद्यार्थियों के लिए आप अखरोट के समान कठोर थीं, वहीं दूसरी ओर ममतामयी नारी का कोमल हृदय आपके पास भरपूर था। आपकी प्रेरणा की ऊर्जा और आपके आशीषों को अपना आदर्श मानकर आज मैं जीवन के संघर्षों को झेलने में थोड़ा सक्षम हो सका हूं। आप विश्वास करेंगी ही कि मैंने जो भी नया कदम उठाया, पहले आप को मन ही मन प्रणाम किया।

दीदीजी, खुद पढ़ लिया बारहवीं तक, यह आपको विदित ही है। आपका तबादला हो गया, आप दूर चली गईं। मैंने एक सूत–मिल में नौकरी कर ली। छोटे भाई को दसवीं तक पढ़ाया और उसे लोहे के छोटे पुर्जे बनाने वाले वर्कशॉप में किसी तरह काम दिला दिया। उसने बहुत मेहनत–लगन से काम किया। उसके मालिक ने प्रसन्न होकर उसे स्थाई काम पर रख लिया। उसकी शादी की। मां तो पहले ही जर्जर हो गई थीं। छोटे भाई की शादी के बाद वह जीवित नहीं रह सकीं, परन्तु दीदीजी, घर की गाड़ी ढंग से चलती देखकर और हम दोनों भाइयों को चार पैसे कमाता देखकर वह संतुष्ट होकर गई हैं। दीदी मैंने स्काउटिंग की ट्रेनिंग करके एक शिक्षण–संस्था में नौकरी पा ली है। मेरा विवाह है। आपके पास निमंत्रण–पत्र भेज रहा हूं। दीदीजी, जिस प्रकार आपने कदम–कदम पर मुझे आशीर्वाद दिया, ठीक इसी प्रकार आप इस पते पर आकर मेरी इस खुशी में शामिल होकर अपनी बहू को भी आशीर्वाद दें। मेरी खुशियों का कोई अंत नहीं होगा दीदीजी, आपको

इस शुभ अवसर पर पाकर। आशा करता हूं कि आप अवश्य दर्शन देंगी और हमको आशीर्वाद भी।

सदैव की भांति,

आपका गोपी

पत्र फिर अंगुलियों में पत्ते सा कांपने लगा था। गोपी! अचानक शिल्पाजी के सामने न कमरा रहा, न शेष पड़ी डाक रही और न रही थी यात्रा की लम्बी थकान। एक विचित्र सी अनुभूति हुई। यादों के दायरे गोलाकर चक्र की भांति आंखों के आगे घूमने लगे। शिल्पाजी हठात् कई वर्ष पहले की अनुशासन प्रिय शिक्षिका हो उठीं। सामने साकार हो उठा उनका विद्यालय और बारहवीं कक्षा का बड़ा कक्ष। कक्षा में बैठे साठ छात्र। सभी स्वच्छ, सलीकेदार, अनुशासित और पढ़ने में रुचि रखने वाले।

ज्योंही प्रार्थना के पश्चात घण्टा लगता, वह अपनी पुस्तक और कक्षा–डायरी लेकर कक्षा में पहुंच जातीं। एक नज़र पूरी कक्षा पर डालकर प्रतिदिन यह देखने का जैसे उनका स्वभाव बन गया था कि छात्र सीधी बैठक में बैठे हैं। कुर्सी–मेज टेढ़ी तो नहीं। पूर्ण संतुष्ट होकर वह हाजरी लेतीं और तुरंत पढ़ाई आरंभ। खिड़की–दरवाजे बंद करा लेतीं, ताकि तल्लीनता भंग न हो।

जिस प्रकार बहुत स्वच्छ, चिकनी और सुन्दर दीवार पर कोई छोटी दरार पड़ जाये, या कोई स्याही की बूंद, तब उस दीवार की संपूर्णता नष्ट सी हो उठती है, ठीक इसी प्रकार से उस कक्षा में सबसे पिछली कोने वाली सीट पर एक लड़का बैठता था गोपी। हजार बार टोकने पर भी वह रबर के टायर वाली चप्पलें पहनता। सफेद स्कूल पोशाक की कमीज बिना ठीक धुले, बिना प्रेस नील लगे एकदम पीली और चमड़े जैसे गुड़ीमुड़ी रहती थी। यही हाल खाकी पैण्ट का था। यही कारण था कि राष्ट्रीय–पर्वों पर वह कभी स्वयं को अन्य छात्रों के साथ शामिल नहीं करता था। खासकर छब्बीस जनवरी की परेड–रिहर्सल

में। वही जूते–स्कूल पोशाक कारण रहते। न बालों में ढंग से तेल–कंघी और न ठीक तरह से नाखूनों की सफाई। कई बार सन्देह होता कि न मालूम, यह प्रतिदिन स्नान भी करता है अथवा नहीं। रुखा–उदास चेहरा। सोई–सोई आंखें। घिसटते से कदम। पूरी कक्षा में वह दूर से ही दृष्टि में खीज और ऊब भर देता था, लेकिन आया था वह गुड सैकण्ड–डिवीजन लेकर दसवीं पास करके, इसलिए उसे बैठने और पढ़ने का पूरा–पूरा अधिकार था।

बीस वर्ष से वह बारहवीं कक्षाएं सदैव लेती आई थीं। प्रतिवर्ष सैकड़ों एक से बढ़कर एक छात्र पढ़कर निकलते थे। वह कभी इतना नहीं खीजीं किसी भी छात्र से, जितना मन ही मन इस गोपी को देखकर ऊब उठती थीं। प्रश्न गरीब–अमीर घरानों के बालकों का नहीं था, प्रश्न था गोपी के लापरवाह बिखरे, उनींदे और कुछ–कुछ अलसाये रूप का।

कई बार अकेले में, कई बार प्रार्थना से पहले, कई बार भरी कक्षा में उसे समझा चुकी थीं। उसकी ये सारी कमियां दिखा–दिखा कर क्रोधित भी खूब होती रही थीं। पूरी कक्षा के सामने उसे कई बार लज्जित भी किया, लेकिन वह चुपचाप सिर झुकाए बस सुनता रहता। न कोई सफाई देता और न आगे से ठीक तरह रहने का प्रण करता। ज्यादा क्रोध बढ़ने पर उसे कक्षा से भी कई बार निकाला। वह चुपचाप निकल जाता। फिर दूसरे दिन वही गंदगी और वही उनींदा सा व्यक्तित्व। मन पर वह गंदे मैल की तरह कभी–कभी इस कदर छा उठता कि कक्षा–पढ़ाने का सही उल्लास गायब हो उठता था।

इधर, कुछ दिन से वह देर से स्कूल आने लगा था। प्रार्थना में बैठने का तो प्रश्न ही नहीं था, वह हाजरी के समय भी नहीं होता था। चूंकि शिल्पा की वह अपनी कक्षा थी, वह क्लास–टीचर थीं। एक फिक्र सी भी थी कि हर दिन हाजरी उसकी नहीं हुई तो बोर्ड का इम्तिहान कैसे देगा। एक तरकीब निकाली कि जाते ही पहले पढ़ाई और जब पांच मिनट शेष रह जाते, तब हाजरी। तरकीब तो काम आ गई क्योंकि आधा

कालांश बीत जाने पर वह आ ही जाता। फटकार कर बैठा दिया जाता। लेकिन ऐसा भी कब तक? कक्षा का, छात्रों का अनुशासन फिर क्या रहा? एक ही छात्र को यह लाभ क्यों? उसे यह बात भी समझाई, लेकिन वह उसी रफ्तार से आता रहा। आता अवश्य। एक बार अचानक उन्हें लगा कि पिछले आठ दिन से वह विद्यालय नहीं आया। यह एक नई बात थी। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। कोई अर्जी भी नहीं। कहीं बीमार पड़ गया क्या? या सड़क पर कहीं...! नहीं..।

उन्होंने राकेश से वजह पूछी, जो उसके पड़ोस में रहता था। वह भी कुछ बताने में असमर्थ रहा। अगले दिन रविवार था। राकेश को कहा कि वह सोमवार को उसकी सूचना लेकर आये और उससे यह भी कहता आये कि बिना अर्जी दस–बारह दिन रहने पर उसका नाम काट दिया जायेगा। सोमवार को अभ्यास के अनुसार जैसे ही उसकी कुर्सी पर दृष्टि गई कि उसे सही सलामत बैठा पाया। उसे देखते ही उनका क्रोध उफन पड़ा। सिर पर कप्तानी सूती सस्ती कैप और स्कूल पोशाक के स्थान पर काली पैण्ट और पीली गंदी सी जर्सी।

क्रोध के आवेग के कारण न हाजरी के लिए उसका नाम बोला और न इतने दिन अनुपस्थित रहने का कारण पूछा। वह सदैव की तरह नीची दृष्टि किये किताब खोलकर बैठा रहा।

उसके बाद का कालांश पुस्तकालय का था। सारे छात्र चले गए, तब उसे कक्षा में ही रोक लिया और इतनी देर से जो क्रोध दिल–दिमाग को चाट रहा था, वह उस पर पूरी शक्ति से बरस पड़ा एक चांटा कस कर मारकर वह बोलीं "तू इतना बेशर्म भी हो सकता है, यह अभी जाना। आने पर न माफी मांगी। न अर्जी दी। न कोई ग्लानि चेहरे पर झलकी। ऐसे आकर बैठ गया कक्षा में जैसे तेरे घर की बैठक हो। स्कूल–पोशाक पहले ही ऐसी पहनता है जैसे झाड़न हो आज वह भी नहीं। बहुत हीरो बनकर आया है कक्षा में। क्यों? और यह खिलाड़ियों की सी कैप? क्या हो गया है तुझको? यह गंदे फटीचर कपड़े पहन कर

जोकर बनकर आने की क्या जरूरत थी? अभी नाम काटती हूं। निकल जा इसी वक्त इस मनहूस लिबास के साथ। टोप लगाएंगे लाट साहब. ..'' कहर कर झटके से उसी गुस्से वाली हालत में उन्होंने उसकी कैप खींच ली।

...अरे! यह क्या? उसका सिर घुटा हुआ था। बाल ही नहीं थे।.. और वह सदा का चुपचुप सुनने वाला गोपी हिचकियां ले रहा था। उन्हें तो जैसे किसी ने जादू से सुन्न कर दिया था। उन्हें लगा कि जैसे कोई चाबुक उनकी आत्मा को छील गया हो! गोपी को चांटा नहीं लगा, बल्कि जैसे उनकी हथेली पर किसी ने अंगारे बिछा दिए हों!

''क्या हुआ बेटे!'' मुश्किल से वह बोल पाई थीं। उसके सिर पर प्यार से हाथ फिरा कर फिर पूछा ''बताओ गोपी! क्या हुआ बच्चे। कुछ बताओ तो!''

गोपी ने जो यह अपनेपन की और प्यार भरे स्पर्श की गर्मी पाई, तो जाने कब–कब का रुका पानी आंखों की राह निर्बाध गति से बह उठा, ''मैडमजी! मेरे पिता की मृत्यु हो गई है। इसलिए।''... फूट–फूट कर वह बिलख उठा। शब्द नहीं निकल सके। वह क्षण भर में ही खुद ही दृष्टि में अपराधिनी सी हो उठीं। बहुत बौनी और बहुत अन्यायी। उनके संस्कार, रीति रिवाज और जाने क्या–क्या उनका मन मथने लगे। उन्होंने अपने पैरों में बिलखते उस मैले गोपी को इस तरह से हृदय से लगा लिया, मानो यह बहुत अमूल्य कृति हो! उसे आश्वासन देती हुई खेल मैदान के कोने में ले गईं। गोपी धीरे–धीरे सुबकते हुए उन्हें वे सारे उत्तर देने लगा, जो प्रश्नों की तीखी नोंकों की तरह वह उसे चुभाती थीं।

''दीदी! आपने प्यार दिया है, तो अब आप दीदी हैं। मैं बेहद गरीब घर का हूं। पिता गांवों में चिनाई का काम करते रहे। पिछले पांच वर्षों से वह क्षय रोग से पीड़ित थे। अकेली मां सड़क पर पत्थर की गिट्टियां तोड़ती। घास काटती। लकड़ी बीन कर बेचती और हम दो भाई, एक

बहन, बीमार पिता और अपना कैसे गुजारा करती, यह हम लोग ही जानते हैं।"

"कहां से लाती चमड़े के जूते। दो जोड़ी स्कूल पोशाकें। बढ़िया साबुन और नील! एक सस्ती बट्टी देकर कहती कि एक महीने चलाओ। एक वक्त रोटी बन गई, तो दूसरे वक्त भूखा रहना पड़ता। गांव के मुट्ठी भर खेत बेचकर बहन की शादी की। वह भी ठेला–मजदूर है। कब लगाता तेल, कब नहाता? कब नाखून काटता और कैसे वक्त पर यहां आता? भूखी–प्यासी रहने से और पिता की देखभाल करते–करते मां इतनी कमजोर हो गई कि उससे मजदूरी नहीं हो पाती थी। कहां से बनतीं कच्ची–पक्की रोटियां? इसीलिए दीदीजी, सुबह सात बजे से लेकर एक बजे तक मैं मजदूरी करता रहा। एक साहब के बगीचे में पानी देता और दस घरों में दूध की थैलियां और बाजार का सामान लाकर देता। तब यहां पागलों की तरह भागता। सरकारी दवा में क्या मिलता है? वहां भी पैसा तो थोड़ा लगता ही है। एक्स–रे, सुइयां, टॉनिक कहां से देते! हाय–हाय करते पिता मर गए हैं। दीदी, नाम मत काटिए। आपके घर का काम कर दिया करूंगा। यह वर्ष निकल जाये तो कुछ बन जाऊंगा।... जी हां, दीदीजी! परसों पिता की तेरहवीं है। घर में कुछ नहीं है। दो–चार सगे–संबंधी आये हुए हैं। एक ही घड़ी थी टूटी–फूटी–पुरानी... समय तो बता ही देती थी। उसे बेच कर आज चाय पत्ती और दूध–आलू देकर आया हूं। मुझे क्षमा कर दें दीदीजी।"

सुनकर उनका मन हाहाकार से भर उठा। जिन्दगी कितनी कठोर–निर्मम होती है! भीतर ही भीतर वह कह उठीं जैसे कि "तुम्हें क्या क्षमा करूं बेटे, तुम स्वयं मुझे क्षमा करना!"

दूसरे दिन कक्षा में मेज पर पहले स्वयं ने सौ रुपये रखे। फिर सभी छात्रों को पूरी बात बताई। देखते ही देखते सारे बालकों ने अपनी जेब–खर्ची का ढ़ेर लगा दिया। सारे बच्चे भावुक हो उठे थे। सभी के चेहरे–नेत्र न जाने किस भावना से पिघले जा रहे थे। सभी अपनी–अपनी

तरह से उसे प्यार–सान्त्वना और आशा जनक तसल्ली दे रहे थे। गोपी तो जैसे प्यार का अनमोल खजाना पा गया था।

अवसर की और भाग्य की बात है कि गोपी के पिता की तेरहवीं वाले दिन स्कूल में कुछ समारोह था। आधे दिन का अवकाश था। पता लगा कि पूरी कक्षा गोपी के घर पहुंच गई। हाथों हाथ सारा सामान दिला दिया। खाना–पीना, पूजा–हवन सभी कराकर और शेष बचे रुपये गोपी की मां को देकर बालक लौटे। एक छात्र ने, जिसके पिता की घड़ियों की दुकान थी, एक सुन्दर सी घड़ी गोपी को भेंट की। सभी उसकी फीस भरने में, फार्म भरने में और पढ़ाई की तैयारियों में ऐसे मदद करते थे प्यार से कि जैसे वह बहुत प्यारा–न्यारा मित्र हो।

वह भी उसकी पूरी मदद करती रहीं। स्नेह–प्यार उनके घर से उसे मिलता रहा। वह अच्छे अंकों से जब पास हुआ, तब पूरी कक्षा ने उसे उपहार–बधाई–मिठाई से लाद दिया था। वह मन ही मन खुशी से भरी रहतीं। सोचती हमारी संस्कृति! हमारी परम्पराएं! और कितनी गहरी जड़ों वाले हैं हमारे संस्कार? क्या रिश्ता है कक्षा का और उसका गोपी से? है एक गहरा रिश्ता–भावना का। मानवता का। सहयोग का और आपसी मेल जोल का। ट्रान्सफर होकर वह चली गई थीं दूर प्रिंसिपल बनकर। सेवानिवृत भी हो गईं और यादों की ढ़ेरी कुरेदकर फिर आ बैठा यह गोपी सामने। लिफाफे को एक ओर रखते हुए शिल्पा बुदबुदा उठी "हां–हां, जरूर आऊंगी गोपी बहू को आशीर्वाद देने... जरूर आऊंगी।" शिल्पा ने भीगी पलकें पोंछ डालीं।

तैंतीस गधे

सुधीर सक्सेना 'सुधि'

जैसा कि सबके बचपन में होता है कि वे पहली–पहली बार कोई नई चीज़ या प्राणी देखते हैं तो मन में जिज्ञासा होती है कि उसके बारे में अधिक से अधिक जानें।

पिताजी ने मेरे स्कूल जाने लायक उम्र होने से पहले चित्रों वाली एक पुस्तक लाकर दी, इस इच्छा के साथ कि राजा बेटा चित्रों के साथ–साथ अक्षर ज्ञान भी करे।

मैं उस रंग–बिरंगी पुस्तक को बहुत ध्यान से देखता। माँ घर का काम–काज निबटा कर दोपहर में आराम करती तो मैं भी अपनी पुस्तक लेकर पास बैठ जाता। मां चित्रों पर अंगुली रखकर पूछती, "यह क्या है?" "कब्बू" मैं फौरन जवाब देता। "यह क्या है?" "चीं–चीं" मैं बताता। और यह... "चूहा... यह घोला" और यह..." मैं इस चित्र पर अटक जाता और फिर कुछ रुक कर जवाब देता "जे भी घोला है!" "नहीं बेटे, यह गधा है। अब बताओं क्या है?' "गधा!" मैं बताता। माँ संतुष्ट होती कि राजा बेटा घोड़ा और गधा में फर्क जानने की चेष्टा करने लगा है।

एक दिन जब घर की टूट–फूट सुधारने के लिए चूने–पत्थर और बजरी रेत से लदे–फदे, सफेद–काले, चार पैरों वाले आठ–दस जानवरों को हांकता हुआ एक आदमी आंगन तक चला आया तो मैं चिल्लाया,

"मां...मां, देखो गधे!" मां उस दिन बहुत खुश हुई और मैं भी, इसलिए कि मैंने गधों को सही–सही पहचान लिया था।

फिर स्कूल जाने का मौसम आया। हमारी टीचर दीदी बहुत अच्छी थीं। वे हमें प्रतिदिन कहानी सुनाती थीं। एक दिन उन्होंने हमें धोबी और गधा नाम की कहानी सुनाई। इस कहानी से मुझे गधे के बारे में और भी बहुत कुछ मालूम हुआ। गधा बोझा ढ़ोता है। गधा बेचारा होता है। गधा सीधा–सादा होता है। गधा धोबी के डंड़े खाता है। और गधा, गधा ही होता है।

टीचर दीदी से कहानियां सुनते, टॉफी–बिस्किट खाते–खाते मैं पांचवीं कक्षा में आ गया।

एक दिन गणित के मास्टरजी ने कक्षा में कुछ बच्चों को शरारत करने पर डांटा और अंतिम वाक्य में "गधे कहीं के" कह कर अपनी बात पूरी की। मेरी आंखें चौड़ी हो गईं। "यह क्या, मास्टरजी की तबीयत तो ठीक है न! आंखें तो कमजोर नहीं हो गईं, जो उन्होंने बच्चों को "गधे कहीं के" कहा। जब वे चले गए तो मैंने उन सभी बच्चो को छूकर देखा। वे तो वैसे ही लगे जैसे पहले थे। कहीं कोई बदलाव नहीं... तो फिर मास्टरजी ने ऐसा क्यूं कहा? मुझे उत्सुकता हुई। पर किससे पूछता? पता नहीं कोई क्या सोचता!"

एक दिन उन्होंने कक्षा में आते ही घोषणा की, "ध्यान से सुनो। मैं कल से चार दिन की छुट्टी पर रहूंगा। मैं तुम्हें कुछ काम देकर जा रहा हूं। आकर सबकी कॉपियां जांचूंगा।" और उन्होनें कुछ की बजाय ढ़ेर सारा काम दे डाला।

हम काम को तो उनके जाने के तुरन्त बाद ही भूल गए और खुशियां मनाने लगे। हम उनके पीरियड में खूब मजे करते। पता ही नहीं चला कि कब पांचवां दिन आ गया। मास्टरजी ने कक्षा में आते ही पहली बात यही कही, "अपनी–अपनी कॉपियां यहां मेज पर रख दो।"

पूरी कक्षा में सिर्फ दो ही बच्चों ने उनका दिया काम किया था सो

वे लपक कर गए और मेज पर अपनी कॉपियां रख आए। बाकी बच्चे मन ही मन बहाने सोचने लगे।

"बस दो ही कॉपियां? बाकी किसी ने काम नहीं किया?" पूरी कक्षा चुप! "मैं पूछता हूं, आखिर चार दिन तक तुमने किया क्या? बोलो, जवाब दो।" जब कोई नहीं बोला तो उनको ताव आ गया। वे बाहर की ओर लपके। मैंने खिड़की से झांका। वे कक्षा के बाहर ही लगे नीम के पेड़ पर लटकी एक डाली को तोड़ने के लिए उछल रहे थे। मैंने अपने पड़ोसी को बताया। पड़ोसी ने अपने पड़ोसी को और पूरी कक्षा में यह खबर फैल गई कि मास्टरजी नीम की डाली तोड़कर ला रहे हैं।

आखिर वे नीम की डाली तोड़ने में सफल हो गए। हम सबके नन्हें–नन्हें दिल तेजी से धड़कने लगे। "उफ्! कितना कड़वा होता है नीम और उसकी मार...।"

"अभी पता चल जाएगा कि काम न करके लाने की सजा क्या है!" मास्टरजी डाली लहराते हुए बोले। और पल भर बाद ही नीम हम पर बरस रहा था, गरज रहा था। सड़ाक! सड़ाक!! सड़ाक!!! साथ ही मास्टरजी की पतली आवाज़ भी गूंज रही थी, "नालायक काम नहीं करते। मटरगश्ती करते हैं। गधे कहीं के! सड़ाक! गधे कहीं के! सड़ाक! गधे कहीं के...!"

मास्टरजी ने तैंतीस बार तो "गधे कहीं के" कहा ही होगा। बाकी दो ने काम किया था सो वे बच गए। वरना वे भी हमारी सी हालत में होते और कक्षा पांच में पूरे पैंतीस गधे होते।

मारपीट मचाकर मास्टरजी ने हाथ में बचा रह गया डाली का टुकड़ा कक्षा के बाहर फेंक दिया। अब वे हमें डांट रहे थे "तुम्हें शर्म आनी चाहिए। केवल दो बच्चों ने ही काम किया है, कुछ सीखो इनसे गधों!"

वे दो बच्चे भी दुःखी थे और हम तैंतीस बच्चे भी। हमारी पीड़ा यह थी कि हमारे बीच दो ऐसे प्राणी हैं जिन्होंने काम किया है, और वे

गधे नहीं हैं। उन दोनों की पीड़ा यह थी कि वे तैंतीस गधों के बीच बैठे हैं।

इस घटना के बाद तो हमारे लिए यह कोई नई बात नहीं थी। हमारे कान "गधे कहीं के" सुन–सुन कर पक चुके थे।

छठी कक्षा में मास्टर कृपालु दयाल हमें हिन्दी पढ़ाते थे। उनका सिर्फ नाम ही कृपालु दयाल था। लेकिन वे हद दर्जे के कठोर थे। स्वभाव से क्रूर! क्रूर दयाल! उनका एक वाक्य था "हम तुम्हारी इतनी मरम्मत करें कि तुम याद रखो।" उनके कक्षा में आते ही हम सबकी घिग्घी बंध जाती थी। पैंतालिस मिनट का पीरियड पैंतालीस घंटे का लगता था। उनके आने से पहले भले ही हमने भरपेट पानी पीया हो लेकिन कक्षा में उनके कदम रखते ही गला सूख जाता था। वे जब पीटते थे तो उनकी जुबान से यह वाक्य, "हम तुम्हारी इतनी मरम्मत करें कि तुम याद रखो।" बराबर फिसलता रहता था। उनके हाथ और जुबान एक साथ अपना कर्तव्य पूरा करते थे।

कुछ दिन बाद उन्होंने जाने किससे प्रेरणा पाकर अपने वाक्य में संशोधन कर लिया था। अब वे कहते, "हम तुम्हें इतना मारें कि तुम गधे बन जाओ।"

एक दिन उन्होंने कुछ शब्दों के पर्यायवाची लिखकर लाने को कहा। उनमें से एक शब्द था "गधा"। मैंने अपनी कॉपी में लिखा, गधा– खर, गर्दभ, रासभ और हम बच्चे।

दूसरे दिन जब उन्होंने कॉपियां जांची तो मेरी कॉपी पढ़कर चौंके, फिर मुझसे बोले, "इधर आओ।" मैं थर–थर कांपता हुआ उनके पास खड़ा हो गया।

"यह क्या लिखा है– हम बच्चे? हैं भई, क्या मतलब है इसका?" उन्होंने पूछा।

जाने कैसे मेरे मुंह से निकला, "आप कहते हैं और गणित के मास्टरजी भी कहते हैं।" हालांकि मैं डर रहा था कि अब मेरी खैर नहीं।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले, "जाओ, अपनी जगह जाकर बैठ जाओ।"

मुझे उनका यह स्वर बहुत नरम लगा। शायद उन्हें लगा होगा कि वे राष्ट्र निर्माता हैं। उन्हें हम बच्चों को सुनागरिक बनाना है, गधा नहीं।

उसके बाद जहां तक मेरी जानकारी है, उन्होंने किसी भी बच्चे को गधा नहीं कहा, न गधे की तरह हमने उनसे मार खाई। सचमुच अब वे कृपालु दयाल का ही अवतार बन गए थे।
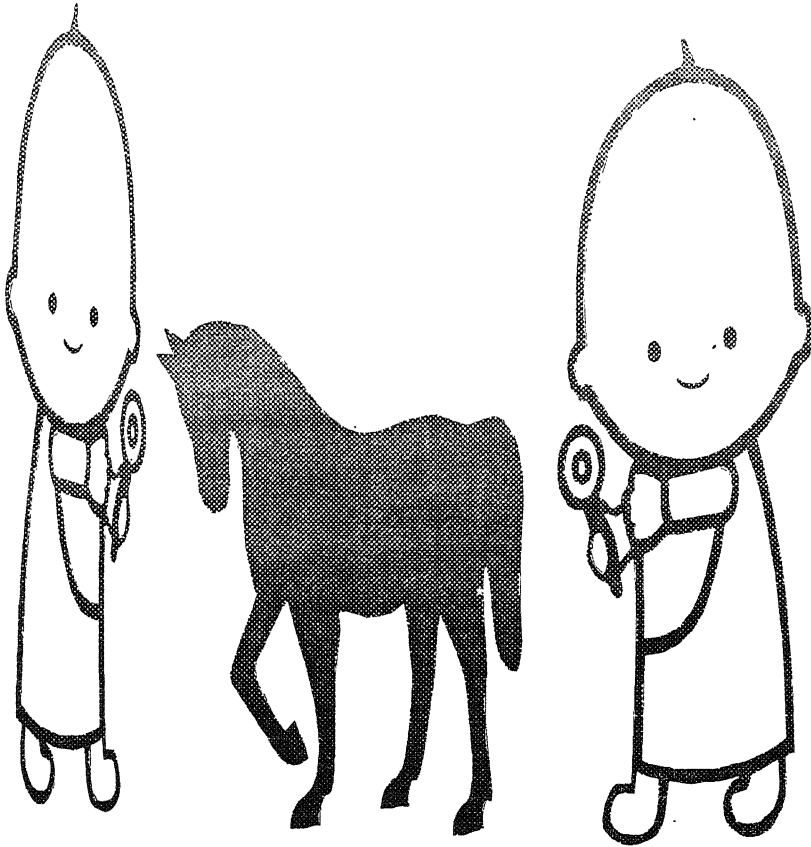
एतवा

अंकुश्री

एतवा साहसी और बहादुर लड़का था। वह करीब बारह साल का था। लेकिन गांव के बड़े लोग भी उसके साहस का लोहा मानते थे। चमकता हुआ ढला बदन और कमर में लंगोटी। तनी हुई मांसमेशियां और मुस्कराता हुआ चेहरा। यह था एतवा। पहाड़ों से घिरे एक गांव में एतवा रहता था। पहाड़ और उसके आस–पास जंगल ही जंगल था। जंगल के आस–पास छिटपुट रूप से बस्तियां बसी हुई थीं। वे इतनी दूरी पर बसी थीं कि एक बस्ती से दूसरी बस्ती दिखायी नहीं देती थी।

एक दिन एतवा मछली पकड़ने गया हुआ था। उसके हाथ में छोटा–सा जाल था। जाल घुमाकर वह पानी के ऊपर फेंकता था। जब जाल खींचता तो पता चलता था कि मछलियां नहीं फंसी हैं। वह अनेक बार जाल फेंक चुका था। मगर मुश्किल से छोटी–छोटी आठ मछलियां ही फंस पायी थीं। रात में जोरों की बारिश हुई थी। शायद वर्षा से सारी मछलियां बह कर नीचे की ओर चली गई थीं। इसीलिए मछलियां पकड़ में नहीं आ पा रही थीं।

मछली की तलाश में एतवा आगे बढ़ता जा रहा था। घने जंगलों से घिरे पहाड़ और उसकी घाटी में बहती नदी। मौसम बरसाती था। हर ढ़लान से पानी बह रहा था। जाल फेंकते हुए एतवा बहुत दूर बढ़ गया।

अचानक एतवा के कानों में कुछ आवाज़ सुनाई पड़ी। आवाज़ पेड़

की टहनियां टूटने की थी। उसे समझते देर नहीं लगी कि पास में हाथी है। टहनियां टूटने की आवाज तेज होती जा रही थी। वह समझ गया कि हाथी गुस्से में है।

तभी एतवा की नज़र पास की झाड़ी पर पड़ी। वहां एक हथिनी थी। उसके पास ही उसका नन्हा–सा एक बच्चा भी था। मछली पकड़ने की धुन में वह झाड़ी की ओर चला गया था। उसे देखकर ही हाथियों को गुस्सा आ गया।

हाथियों को देखते ही, एतवा सावधान हो गया। वहां खड़ा रहना खतरे से खाली नहीं था। वह भागने लगा। तभी उसकी नज़र सामने की झाड़ी पर पड़ी। दो हाथी तेजी से उसकी ओर चले आ रहे थे। हाथियों को देखकर एतवा घबराया नहीं। उसने हिम्मत से काम लिया। उसकी दाहिनी ओर ढ़लान थी। वह एक झटके से ढ़लान की ओर भागने लगा। दोनों हाथी एतवा का पीछा करने लगे।

ढलवां रास्ता और हाथियों का भारी–भरकम शरीर... उनकी पकड़ में एतवा नहीं आ सका। हाथियों ने बहुत दूर तक उसका पीछा किया। मगर बेकार। वह हाथियों की गिरफ्त से दूर निकल गया।

एतवा थक कर चूर–चूर हो गया था। उसने नदी किनारे जाकर पानी पिया। नदी पथरीली थी। उसे पार करने के बाद एतवा सुस्ताने के लिए ऊंची चट्टान पर बैठ गया।

भागते समय उसे ठोकर लग गयी थी। वह गिरा भी था। उसके हाथ की मछली वाली टोकरी भी गिर गई थी। जाल भी रास्ते में ही गिर गया था। वह गिरते हुए सामान की चिंता किये बिना भागता गया था।

चट्टान पर पड़ा एतवा नीचे की ओर देख रहा था। उसे अपना सामान दिखायी दिया। दोनों क्रुद्ध हाथी भी उसे दिखाई दे रहे थे। वे अपने झुंड की ओर लौट रहे थे। कुछ देर में हाथी काफी दूर चले गए। एतवा ने कुछ देर आराम किया। फिर अपना सामान उठा लाया।

एतवा अपने घर से काफी दूर निकल आया था। दिन बीत चुका था। शाम होने वाली थी। अंधेरा होने से पहले वह घर नहीं लौट सकता था। जंगली और पहाड़ी रास्ते को अंधेरे में पार करना खतरनाक था। निकट की किसी बस्ती में उसने रात बिताने की सोच ली।

बस्ती की तलाश में एतवा आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर एक पहाड़ी नदी मिली। नदी पतली थी। पार करना आसान लगा। लेकिन नदी में पैर रखते एतवा झटके से पीछे हट गया। नदी का पानी गरम था। उसे लगा कि पैर जल जाएंगे। वह गरम पहाड़ के पास पहुंच गया था।

गरम पहाड़ की घाटी में वन विभाग का विश्रामागार था। एतवा को इसकी जानकारी थी। वहां गरम पानी का स्वीमिंग पुल भी बना हुआ था। रात बिताने के लिए एतवा वहीं चला गया। वहां के चौकीदार को वह जानता था। उसके पड़ोस के गांव का था। उसका नाम जतरू था। एतवा को देखकर जतरू बहुत खुश हुआ।

पहाड़ से गरम जल का स्रोत फूटा था। इसे स्वीमिंग पुल की ओर मोड़ दिया गया था। एतवा काफी रात तक स्वीमिंग पुल के गरम जल में नहाता रहा। चौकीदार ने चावल बनाया था। एतवा की टोकरी में कुछ मछलियां थीं। मछलियों को आग में भूना गया। खाने के बाद वह वहीं सो गया।

एतवा तड़के ही उठ गया। बाहर निकला तो उसकी नज़र मोरनियों के झुंड पर पड़ी। बहुत–सी मोरनियां एक ही खेत में चुग रही थीं।

दो लड़के पास की मेड़ के पीछे छिप कर बैठे थे। एतवा की आहट पाकर मोरनियां भागने लगीं। दो को छोड़कर सभी मोरिनयां भाग गईं। उन दोनों मोरनियों के पांव किसी चीज़ में फंस गए थे। फंसी हुई मोरनियों को दोनों लड़कों ने पकड़ लिया। मोरनियों को पकड़कर वे भागने लगे।

अब पूरी बात एतवा की समझ में आ गयी थी। लड़के मोरनी को

फांसने के लिये फंदा लगाए हुए थे। दोनों का यह रोज का धंधा होगा। एतवा ने यह अनुमान लगाया कि इस तरह तो सारी मोरनियां खत्म हो जाएंगी। बिना मोर–मोरनी के जंगल की खूबसूरती नहीं। वह ऐसा नहीं होने देगा।

जाल को एतवा ने गरदन में लपेटा, मछली की टोकरी पीठ पर लटकाई। और वह उन लड़कों का पीछा करने लगा। वह पूरी तेजी से दौड़ रहा था। दोनों लड़के अभी कुछ ही दूर जा सके थे। एतवा को अपनी ओर आते देखकर वे चौकन्ना हो गए। वे और तेज भागने लगे।

उन तीनों के दौड़ने से सुनसान जंगल में शोर–सा मच गया। हिरन चौकन्ने हो गए। वे इधर–उधर भागने लगे। उन्हें भागते देखकर चिड़ियां चहचहाने लगीं। बंदर भी किलकारियां मारकर डाल पर भागने लगे। पूरे जंगल में खतरे की घंटी बज गई। जंगल और जानवरों के बीच रहने के कारण एतवा को खतरे की घंटी और जानवरों की भाषा की जानकारी थी।

कुछ दूर जाकर एतवा ने उन लड़कों को धर दबोचा। उसने पूछा, "तुम इस सुंदर राष्ट्रीय पक्षी को मारने पर क्यों तुले हुए हो?"

"हम जंगल में कुछ भी करें। बोलने वाले तुम कौन होते हो?" एक लड़के ने ऐंठते हुए कहा। दूसरा लड़का भी आंखें तरेरने लगा। एतवा से उनकी बहुत देर तक बहस हुई। मगर वे समझे नहीं। उल्टे झगड़ने लगे। एतवा से बड़े थे। लेकिन एतवा उन्हें पछाड़ता रहा। मगर बेचारा अकेला कितनी देर तक लड़ता? थककर वह चूर हो गया।

एतवा को उन लड़कों ने पकड़ लिया। वे उसे अपने गांव ले गए। उन्होंने गांव वालों को पूरी बात बता दी। पूरी बात सुनकर गांव वाले एतवा को मारने पर उतारू हो गए। लेकिन संयोग की बात! गांव का सरदार गांव से बाहर गया हुआ था। सरदार की आज्ञा के बिना किसी को सजा नहीं दी जा सकती थी। सरदार के आने तक उसे एक पेड़ से भूखे–प्यासे बांध दिया गया।

गांव का सरदार बहुत योग्य आदमी था। वह साहसी भी कम नहीं था। लेकिन क्रूरता के लिये वह कुख्यात था। नाम था शनिचरा पहान। एतवा की आज खैर नहीं है। गांव वालों को पूरा विश्वास था।

शाम को सरदार आया। गांव वालो ने उससे एतवा की शिकायत की। सरदार ने एतवा से पूछा, "गांव के लड़कों से तुमने झगड़ा क्यों किया?"

"कैसा झगड़ा?" एतवा ने कड़क कर जवाब दिया, "ये दो थे, मैं अकेला। अकेले लड़ कर देखते। मैं उम्र में इनसे कम जरूर हूं, मगर बहादुरी में नहीं।"

एतवा की हिम्मत से भरी बातें सुनकर सरदार को हंसी आ गयी। देखादेखी गांव वाले भी हंसने लगे। तभी सरदार चिल्लाया, "शैतान! तुम्हारी यह हिम्मत?" उसकी आवाज से गांव वाले सहम गए। सभी खामोश हो गए। लेकिन एतवा का चेहरा गंभीर था। उसने निर्भीकता से कहा, "सरदार! आपको केवल अपने गांव के लड़कों की चिंता है। आप अपने गांव की चिंता करते हैं। लेकिन मैं किसी एक गांव के बारे में नहीं सोचता। मैं देश का हूं और देश हमारा है। इसलिये देश के समूचे गांवों को अपना गांव समझता हूं।"

एतवा बोल रहा था। गांव वाले उसका मुंह ताक रहे थे। सरदार भी उसकी बातें सुनकर नरम हो चुका था। धीरे से उसने पूछा, "लेकिन यह तो बताओ तुमने झगड़ा किया क्यों? ये दोनो लड़के मेरे गांव के हैं। इनकी हिफाजत करना मेरा धर्म है।"

"आप अपने गांव या उसके दो लड़कों की हिफाजत करना अपना धर्म समझते हैं। लेकिन मैं पूरे देश की हिफाजत में विश्वास करता हूं।" एतवा ने इत्मिनान से कहा, "जंगल राष्ट्रीय संपत्ति है। इसका राष्ट्रीय महत्व है। जंगल और उसमें रहने वाले पशु–पक्षियों की रक्षा करना हम सबका परम धर्म है।"

"बिलकुल ठीक बात है।" सरदार ने खुश होकर कहा, "मैं तुम्हारी

इस बात से सहमत हूं। पहले ही बहुत सारे जंगल काटे जा चुके हैं। उसमें रहने वाले पशु–पक्षियों को नुकासान पहुंचाया जा चुका है। इसलिए अब इनकी हिफाजत बहुत जरूरी हो गयी है।''

''लेकिन इन दोनों लड़कों की कारगुजारियां आपको पता हैं?'' एतवा ने कहा, ''जंगल में घूम–घूम कर ये मोर पकड़ा करते हैं। मोर हमारा राष्ट्रीय पक्षी है। इसके शिकार पर यों भी प्रतिबंध है।''

सरदार एतवा की बातें सुन कर शर्मिंदा हो गया। उसने कहा, ''सजा के लिए नहीं, न्याय के लिए तुम्हें यहां खड़ा किया गया है। गलत कारगुजारियों को बहादुरी समझना भूल है। ऐसे लोगों को सही बात की जानकारी दी जानी चाहिए। गलती करने वालों को सजा दी जानी चाहिए। सजा देने में मुझे संकोच नहीं होता।''

एतवा को तुरंत बंधन से मुक्त कर दिया गया। सरदार ने दोनों लड़कों को बुलवाया। तभी एतवा बोला, ''क्या इन लड़कों को सजा देना जरूरी है? अपराध रोकने का दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता क्या? इससे तो ये और क्रूर हो जाएंगे और कुछ दिनों के बाद ही फिर से वन्य प्राणियों को नुकसान पहुंचाने लगेंगे।''

''क्या मतलब?'' सरदार ने पूछा।

''मतलब साफ है।'' एतवा बोला ''इनकी गलती है कि इन्होंने मोरनियों को पकड़ा है। आज मैंने देख लिया। बात आप तक पहुंच गई। हो सकता है कि इस गांव के दूसरे लड़के भी ऐसा करते हों। सुरक्षा का भार इन्हीं दोनों लड़कों को सौंप दिया जाए। यही इनकी सजा होगी। हां, इनकी सहायता के लिये कुछ और लोग इनके साथ रह सकते हैं।''

''वाह! सजा का क्या बेजोड़ प्रस्ताव है?'' सरदार ने कहा, ''मैं तुम्हारी बातों से पूरी तरह सहमत हूं। आस पास के जंगलों की सुरक्षा बहुत जरूरी हो गई है। उसमें रहने वाले पशु–पक्षियों की सुरक्षा भी जरूरी है। आज से यह काम इन दोनों लड़कों पर सौंपा जाता है।''

दोनों लड़कों को भी यह बात पसंद आई। वन्य जीवन के बारे में

एतवा ने जो चेतना फैलाई, उसकी सभी लोग तारीफ करने लगे। जब एतवा के गांव के लोगों को यह बात पता चली तो उन्होंने भी उसकी खूब तारीफ की।

लोगों ने अपने वनों की हिफाजत खुद करनी शुरू कर दी। हर ग्रामीण अपने आप को जिम्मेदार वन–रक्षक मानने लगा।

एक और कर्ण

रमाशंकर

शाम का समय था। ठण्ड़ जोरों की पड़ रही थी। सन्नाटा व कोहरा चारों ओर छाया हुआ था। अमन और आकाश अपने एक मित्र के जन्मदिन की पार्टी से एक ही साइकिल से घर लौट रहे थे। अचानक उनके कानों में किसी की दर्द भरी कराहने की आवाज़ सुनाई पड़ी। वे रुक गये। उन्होंने अपने आस–पास देखा। आवाज़ सड़क के दायीं ओर के फुटपाथ की ओर से आ रही थी। वे दोनों उस ओर बढ़ गये।

फुटपाथ के निकट पहुंचने पर अमन और आकाश ने देखा। एक लड़का वहाँ ठण्ड़ से काँपते हुए कराह रहा था। उसके सर व हाथ पाँव में चोट लगी थी। कहीं–कहीं से खून भी बह रहा था। यह देख अमन और आकाश आश्चर्य में पड़ गये। उसी समय लड़के ने उनसे विनती करते हुए कहा "भइया, मुझे चोट लगी है। बहुत दर्द हो रहा है। मुझसे चला भी नहीं जा रहा है। मुझे मेरे घर तक पहुँचा दो। मैं आप लोगों का एहसान कभी नहीं भूलूँगा।"

लड़के की बात सुनकर अमन ने पूछा "क्या नाम है तुम्हारा? कहाँ रहते हो? यह चोट तुम्हें कैसे लगी?"

"श्यामू नाम है। पास की झोपड़पट्टी में रहता हूँ। कबाड़ बीनकर घर वापस लौट रहा था, अचानक एक वाहन से टकरा गया।" लड़का अमन के पूछने पर बोला।

लड़के का उत्तर सुनकर अमन नाक भौं टेढ़ा करते हुए बोला "नहीं–नहीं, मैं तुम्हें वहाँ लेकर नहीं जाऊँगा।"

"लेकिन क्यों?" अमन की बात पर उसके छोटे भाई आकाश ने उससे पूछा। अमन ने कहा "तुम्हें पता नहीं, झोपड़पट्टी में कूड़ा–कबाड़ बीनने वाले गन्दे लोग रहते हैं।" "तो क्या हुआ भैया, इससे हमें क्या लेना देना। हमें तो श्यामू को उसके घर पर छोड़ना है ताकि इसके माता–पिता इसकी अच्छी तरह से देखरेख कर सकें।" अमन की बात पर आकाश बोला।

अमन आकाश को समझाते हुए कहने लगा "देखो आकाश, हम बड़े घर के लड़के हैं। हमें वहाँ किसी ने देख लिया तो अच्छा नहीं होगा। और वैसे भी देख रहे हो, आज ही हमने नये कपड़े पहने हैं। सब के सब इसको लेकर जाने में गंदे हो जायेंगे।" आकाश अमन की बात पर बोला "भैया, कपड़े ही तो गन्दे होंगे, धुलकर फिर से साफ हो जायेंगे। लेकिन घर पहुँचने पर इस बेचारे की सही देखभाल तो हो जायेगी। यहाँ पड़े–पड़े तो यह ठण्ड़ का शिकार भी हो जायेगा।"

आकाश की बात पर अमन गुस्सा हो गया। वह बोला "तुम्हारी समझ में अभी मेरी बातें नहीं आयेंगी। चलो घर चलो। अभी बहुत से लोग इधर से गुजरेंगे। उनमें से कोई न कोई इसको इसके घर तक पहुंचा देगा। समय भी काफी हो गया है। याद है न, पापा ने जल्दी घर वापस आने के लिए कहा था।"

आकाश बोला "हाँ" कहा तो था, लेकिन....?"

"अरे! छोड़ों लेकिन–वेकिन को, आओ जल्दी से साइकिल पर बैठो घर चलते हैं।" अमन आकाश से बोला।

आकाश का मन श्यामू को अकेला छोड़कर घर जाने का नहीं था। वह अमन के जोर देने पर बेमन से साइकिल पर बैठकर चला गया।

वह रास्ते में सोचने लगा। अगर अब कोई उधर से न गुजरा तो श्यामू का क्या होगा? वह कब तक इस कड़ाके की ठण्ड़ में वहां पड़ा

रहेगा। उसने ज्यादा कपड़े भी तो नहीं पहन रखे हैं। मात्र एक पुरानी मैली शर्ट, फटी पैन्ट और एक हाफ स्वेटर ही तो उसके बदन पर है। कहीं ऐसी हालत में उसे ठण्ड़ लग गयी तो.... नहीं .... नहीं .... मैं उसकी मदद करूँगा, चाहे मेरे नये कपड़े गन्दे ही क्यों न हो जायें। मैं पापा, मम्मी की डाट सुन लूँगा।

यह सब सोचकर आकाश अमन से बीच रास्ते में एक बहाना बनाता हुआ बोला "भैया, साइकिल रोको, मुझे मयंक के घर से एक कॉपी लेनी है। मेरा पिछला स्कूल का कुछ काम छूटा है। उसे पूरा करके मुझे कल ही स्कूल में जमा करना है। आप घर चलिए, मैं अभी थोड़ी देर में मयंक के घर से कॉपी लेकर आता हूँ।"

अमन ने आकाश के कहने पर साइकिल रोक दी। आकाश साइकिल से उतरकर जब जाने लगा तो अमन ने उससे कहा "आकाश, कॉपी लेकर जल्दी घर लौटना। देर मत करना।" आकाश "हाँ भैया" कहता हुआ वहाँ से तेजी से चल पड़ा।

श्यामू अभी भी सड़क पर पड़ा कराह रहा था। आकाश कुछ ही देर में उसके पास पहुँच गया। वह श्यामू से बोला "आओ श्यामू, मैं तुम्हें डॉक्टर के पास ले चलता हूँ।"

"लेकिन, आपके कपड़े गन्दे हो जायेंगे तो....।" श्यामू ने कहा।

आकाश उसकी बात पर बोला "अरे, उसकी चिन्ता तुम मत करो। आओ मैं तुम्हें सबसे पहले डॉक्टर प्रकाश के यहाँ ले चलता हूँ। वह मेरे परिचित हैं। उनका दवाखाना यही पास की मार्केट में है। वो तुम्हारा इलाज अच्छी तरह से कर देंगे।"

आकाश के कहने पर श्यामू डॉक्टर के पास चलने को तैयार हो गया। आकाश उसे अपने कन्धे का सहारा देता हुआ वहाँ से उसको लेकर धीरे–धीरे चल पड़ा।

थोड़ी देर में दोनों डॉक्टर प्रकाश के दवाखाने पर पहुंच गये। आकाश ने डॉ. प्रकाश से श्यामू के विषय में बताया और उसका इलाज

करने को कहा। डॉ० प्रकाश आकाश के इस नेक काम से बहुत खुश हुये। उन्होंने निःशुल्क श्यामू की चोटों पर दवा लगाकर पट्टी बाँध दी और कुछ दवाइयाँ उसे खाने को दीं। आकाश उसको अपने साथ लेकर वहाँ से उसके घर की ओर चल पड़ा।

श्यामू के घर में उसके माता–पिता बड़ी देर से उसका इन्तजार कर रहे थे। अचानक उन्होंने जब श्यामू को एक अपरिचित लड़के के कन्धों का सहारा लेकर घर की ओर आते देखा, तो वे घबड़ा गये। वे फौरन दौड़कर उसके पास गये। उसके शरीर पर बंधी पट्टियों को देखकर वे चिन्ता में पड़ गये। उनके पूछने पर श्यामू ने सारी बातें बता दीं। साथ ही आकाश के विषय में भी बताया। श्यामू के माता–पिता आकाश को बहुत–बहुत धन्यवाद देने लगे।

आकाश उनके बीच कुछ समय तक रहा। उसे वहां बहुत अच्छा लगा। श्यामू के माता–पिता का स्नेह भरा प्यार व व्यवहार पाकर वह बहुत खुश हुआ। श्यामू को आराम करने की बात समझाकर वह वहाँ से अपने घर चला गया।

उस दिन के बाद से वह बराबर समय निकालकर जब तक श्यामू ठीक नहीं हो गया तब तक उसे देखने आता रहा। धीरे–धीरे दोनों में अच्छी दोस्ती हो गयी।

श्यामू अनपढ़ था। आकाश को यह बात अच्छी नहीं लगी। वह उसको बीच–बीच में उसके घर आकर पढ़ाने भी लगा। श्यामू ने बहुत जल्दी प्रयास करके थोड़ा बहुत पढ़ना–लिखना सीख लिया। यह देख उसके माता–पिता बहुत खुश हुये। उन्होंने श्यामू को अब कबाड़ बीनने की जगह पढ़ाने–लिखाने का फैसला किया। वहाँ से थोड़ी दूर पर एक सरकारी स्कूल था। आकाश के कहने पर उन्होंने उसका नाम उसी स्कूल में लिखा दिया। वह स्कूल जाने लगा।

एक दिन छुट्टी का दिन था। आकाश के पिता किसी काम से कहीं बाहर गये थे। घर में एक नई–नई स्कूटर आयी थी। अमन को

थोड़ा बहुत स्कूटर चलाना आता था। उसने नई स्कूटर अभी तक एक भी दिन नहीं चलाई थी। उसका मन बहुत दिनों से नई स्कूटर चलाने के लिये ललचा रहा था। आज पिता के घर पर न रहने पर उसने नई स्कूटर बाहर ले जाकर चलाने की बात सोची। वह बिना अपनी माँ व आकाश को बताये चुपके से स्कूटर लेकर घर से बाहर चल पड़ा।

आकाश अपने कमरे में बैठा होमवर्क पूरा कर रहा था। उसकी माँ रसोई में खाना बना रही थी। थोड़ी देर बाद दरवाजे की घण्टी बजी। माँ ने आकाश को आवाज देते हुए कहा "बेटा आकाश, जरा देखना तो कौन आया है।" "अच्छा माँ" आकाश ने माँ की बात पर कहा। वह वहाँ से उठकर दरवाजे की ओर चल पड़ा।

उसने दरवाजा खोला। सामने का दृश्य देखकर वह चौंक पड़ा। भागा–भागा रसोई में माँ के पास गया। बोला "माँ, भैया का एक्सीडेन्ट हो गया है। वह बहुत घायल हैं। उनको लेकर मुहल्ले के कुछ लोग बाहर खड़े हैं।"

आकाश की माँ उसकी बातें सुनकर, दौड़कर दरवाजे के पास आयी। अमन को घायल अवस्था में देखकर वह रो पड़ी। उसी समय आकाश के पिताजी भी लौट कर आ गये। उनके पूछने पर एक आदमी ने बताया कि अमन स्कूटर को तेज चलाता हुआ जा रहा था, अचानक चौराहे के मोड़ पर एक कार से टकरा गया। अमन के सर व चेहरे पर काफी चोटें आयीं थीं। वह बेहोश था। उसके माता–पिता उसको लेकर तुरन्त अस्पताल की ओर भागे।

अस्पताल के डॉक्टर ने अमन का इलाज किया। इलाज के बाद उन्होंने अमन के पिता को बताया कि अमन की दोनों आँखों की रोशनी गहरी चोट लगने की वजह से चली गयी है। जो अब वापस नहीं आ सकती। अमन के माता–पिता यह खबर सुनकर रो पड़े। आकाश को जब इस बात का पता चला तो वह भी रो पड़ा।

अमन को काफी चोट लगी थी। उसका इलाज अस्पताल में भर्ती

कर चलने लगा। कुछ दिनों बाद उसे काफी आराम मिल गया। वह उठने, बैठने व थोड़ा बहुत चलने–फिरने भी लगा। यह देख डॉक्टर ने उसको शीघ्र ही अस्पताल से घर भेज देने का आश्वासन दिया।

आज अमन अस्पताल से डिस्चार्ज होने वाला था। उसके माता–पिता व आकाश उसे लेने अस्पताल आये। जब वे अस्पताल के उसके कमरे में पहुँचे तो आश्चर्य में पड़ गये। अमन अपनी बेड पर नहीं था। उन्होंने आस–पास के मरीजों से पूछा तो पता चला कि अमन को लेकर डॉक्टर कहीं गये हैं। अमन के पिता उसका पता लगाने लगे।

थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा। अमन एक कमरे से निकलकर व्हील चेयर पर बैठा नर्स व डॉक्टर के साथ चला आ रहा है। उसके आँखों पर पट्टी बंधी है। थोड़ी देर में नर्स ने अमन को लाकर उसकी बेड पर बैठा दिया।

डॉक्टर ने धीरे–धीरे करके उसकी आँखो पर बंधी पट्टी खोली। और पलकों को धीरे–धीरे करके खोलने के लिए अमन से कहा। अमन ने वैसा ही किया जैसा डॉक्टर ने उससे कहा था। पलकों के पूरा खुलते ही वह सामने खड़े अपने मम्मी–पापा व छोटे भाई को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। वह खुश हो बोला ''मैं देख सकता हूँ। मुझे सब कुछ दिखाई दे रहा है।''

अमन के मुँह से ऐसे शब्द सुनकर उसके माता–पिता सहित सभी बहुत खुश हुए। उन्होंने फौरन अमन को अपने गले लगा लिया। आकाश की खुशी का तो ठिकाना ही न रहा। वह बहुत खुश था।

अमन के पिता ने डॉक्टर से पूछा ''डॉक्टर साहब, यह सब कैसे हो गया। आपने तो कहा था कि अमन अब कभी देख ही नहीं सकता। फिर भला यह चमत्कार...।''

''यह चमत्कार मेरा नहीं एक गरीब लड़के की वजह से हुआ है। उसे बोन कैंसर (हड्डी का कैंसर) हुआ था। वह इसी अस्पताल में भर्ती था। उसका बचना बहुत मुश्किल था। जब उसने अमन के विषय में

जाना तो उसने मरने से पहले अपनी दोनों आँखें अमन को दान कर दीं थीं।"

आकाश डॉक्टर के पास ही खड़ा था। वह डॉक्टर से बोला "डॉक्टर साहब, उस लड़के का क्या नाम था?"

डॉक्टर ने कहा "बेटा, उसका नाम श्यामू था। वह बहुत ही नेक दिलवाला लड़का था।"

आकाश श्यामू का नाम सुनते ही चौंक पड़ा। उसने फिर डॉक्टर से प्रश्न किया? बोला "डॉक्टर साहब, कहीं वह झोपड़पट्टी में रहने वाला लड़का श्यामू तो नहीं था?" "हाँ बेटे, वह वही लड़का था। उसी ने ऐसा दीपदान किया है। वाकई वह आज का कर्ण था। लेकिन... तुम उसे कैसे जानते हो?" डॉक्टर ने आकाश से कहा।

आकाश ने सभी बातें श्यामू से जुड़ी डॉक्टर व अपने मम्मी-पापा को बता दीं। वे श्यामू के विषय में जानकर बहुत दुःखी हुए। अमन श्यामू की महानता देखकर अन्दर ही अन्दर उसके साथ किए गलत व्यवहार के लिए रो पड़ा। उसे अपनी भूल पर बहुत पछतावा भी होने लगा। वह श्यामू की आत्मा से बार-बार क्षमा माँग रहा था।
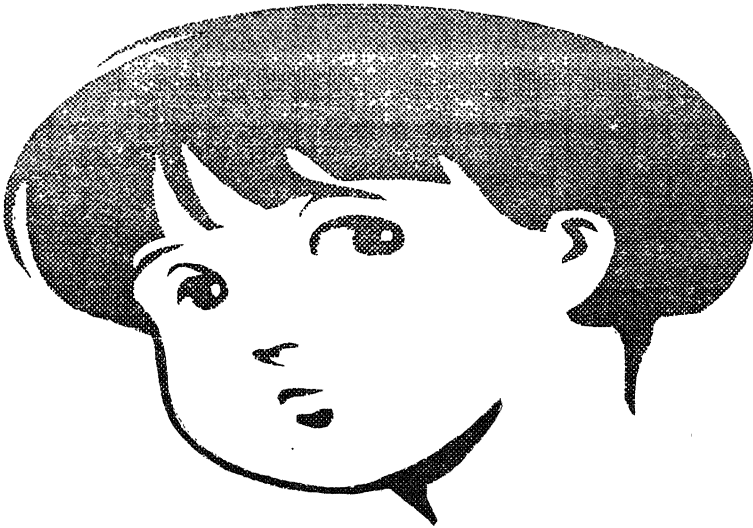
पहचान खो गई

निर्मला लोहार

बस राजनगर के स्टैंड पर रुकी तो मामाजी ने मुझसे कहा "चलो, यह सूटकेस तुम पकड़ लो।" मैंने सूटकेस उठाया और मामाजी के साथ नीचे उतर गई। आज सात वर्ष बाद मैं गांव आई थी। इन सात वर्ष में गांव में परिवर्तन शायद तेज गति से हुआ था। एक अजीब सा खालीपन महसूस हो रहा था। हरे–हरे वृक्ष जहां स्वागत करते प्रतीत होते थे वहां पक्के मकानों की लम्बी कतार खड़ी थी। ऊबड़–खाबड़ कच्ची सड़क अब पक्की सड़क में बदल गई थी।

अचानक मेरी तन्द्रा टूटी। "खट–खट–खट" मामाजी ने दरवाजा खटखटाया था। मैंने चौंक कर देखा। इतना बड़ा और पक्का मकान। क्या ये मामाजी का ही है? जल्दी ही मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया। मामीजी ने दरवाजा खोला। उल्लासित होती हुई बोलीं "अरे निम्मी! आओ, आओ।"

उन्होंने मेरे हाथ से सूटकेस लिया और बोलीं "किशन, देख निम्मी आ गई।" किशन मेरे ममेरे भाई का नाम था। वह दौड़ता हुआ आ गया।

"दीदी, कैसी हो?" उसने पूछा।

"अच्छी हूं, तू कैसा है?"

"बहुत अच्छा। दीदी, तुम आ गई हो न तो मजा ही आ जाएगा।"

मामीजी खिलखिला कर हंस दीं। मेरे चेहरे पर भी मुस्कराहट आ गई थी। वे बोली "अब ज्यादा बातें न बना, दीदी यहीं है। बाद में कर लेना।"

मैंने चारों तरफ देखा। गंगा और भूरी नहीं दिखाई दीं। ये दोनों मामाजी की गाएं थीं। हालांकि मैं वर्ष में एक बार ही गांव आती थी पर वे मुझे इस तरह पहचानती थीं जैसे सदियों का साथ हो। पहले घर में प्रवेश करते ही आगंतुक को गोधन के दर्शन होते थे पर आज उन्हें न पाकर मैं बेचैन थी। मैंने उस समय कुछ भी पूछना उचित नहीं समझा। मामीजी ने कहा "किशन, दीदी को उस कमरे में ले जा।"

"चलो दीदी।" मैं उसके साथ कमरे में पहुंची। मुझे आश्चर्य हो रहा था किशन जो कभी मुझे मेरे नाम से बुलाता था आज दीदी कह रहा था। "क्या व्यवहार भी बदल गया है?" मैं सोच रही थी।

"किशन, राजू और रेखा कहां हैं?"

"राजू तो दुकान पर गया है, शाम को लौटेगा और रेखा अपनी किसी सहेली के यहां गई है अभी आ जाएगी?"

"दुकान? तो क्या मामाजी ने दुकान भी खोल ली?" मैं अपनी उत्सुकता को शान्त करने के लिए उससे कुछ पूछती इससे पहले ही खिलखिलाहट से भरी आवाज सुनाई दी–

"निम्मी, निम्मी।"

मैंने नजर ऊपर उठाई तो देखा सामने से रेखा चली आ रही है। वह आते ही मुझसे लिपट गई। फिर हम दोनों बातें करने लगे। हमें कब निद्रा देवी ने अपने आगोश में ले लिया, पता ही नहीं चला।

जब हम उठे तो शाम हो चुकी थी। रेखा ने कहा "मैं जरा पड़ोस में जा रही हूं, तुम भी चलोगी?"

"नहीं, तुम जाओ।" मैंने उत्तर दिया। वह चली गई।

मैं खिड़की से बाहर देख रही थी कि अनायास ही मेरी दृष्टि उस नीम के पेड़ की तरफ चली गई जहां हम बचपन में खेला करते थे।

नानी, मौसी और मामी चिल्लाती रहतीं "निम्मी, रेखा, अन्दर आओ। लू लग जाएगी।" पर हम किसी और ही दुनिया में होते। बस केवल अश्वासन देते "आ रहे हैं, बस जरा सा और... जरा सा और" और खेलते रहते। कभी कंकर, कभी चंगा-- बीत्ती, कभी कंचे। तो कभी छुपा--छुपी। सभी खेलों का केन्द्र बिन्दु वह नीम का पेड़ था। हमारे पास होतीं "कच्ची केरियां या इमली" जो हम राधा ताई के बाग से चुरा कर लाती थीं।

मुझे यह खेल आते थे पर अभ्यास नहीं होने से मैं अकसर हारती। हारने पर मैं सारा दोष रेखा पर डाल कर रुठ जाती। वह थोड़ी देर तो अकेली बैठी रहती पर उसका मन नहीं मानता तो मेरे पास आकर कहती "चलो खिलौने खेलते हैं। खिलौनों का नाम सुनते ही सारा झगड़ा एक तरफ रख कर मैं उनके साथ खेलने लगती। हाथ से बने मिट्टी के सुन्दर खिलौने। उन अनगढ़ खिलौनों में न जाने कैसा आकर्षण था जो मुझे बरबस अपनी ओर खींचता। शहर के प्लास्टिक और रबड़ के खिलौने भी उनके सामने तुच्छ होते। मैंने कई बार रेखा से खिलौने बनाना सीखा पर कभी कोई खिलौना सुन्दर नहीं बना। वह नीम का पेड़ इस बात का प्रमाण था कि मेरे बचपन का चौथाई हिस्सा उसकी छांव में बीता है। आज वह सुनसान अकेला खड़ा था बार--बार अपनी डालियों को हिला--हिला कर अपना दुःख प्रकट कर रहा था। आज न कोई खिलखिलाहट थी न ही रूठने--मनाने की आवाजें। सब कुछ समय के धुंधले साए में खो चुका था। मैंने आकाश की तरफ देखा। मेरी दृष्टि टी.वी. के एंटिना पर ठहर गई लगभग सभी घरों की छतों पर एंटिना या डिश एंटिना लगा हुआ था। तभी मुझे याद आया-- "आज तो रविवार है, टी.वी. पर फिल्म आ रही होगी।" आखिर गांव भी तो कस्बा बनने के कगार पर था।

तभी रेखा की आवाज आई "चलो, खाना खा लो, भूख नहीं लगी क्या?" मैं उसके साथ रसोई में गई। रसोई का तो वातावरण ही कुछ

और था। मिट्टी के चूल्हे के स्थान पर रसोई गैस थी। प्रेशर कुकर में खाना बनाया गया था। मामीजी ने खाना लगाया। आज खाने में वह मिठास नहीं थी जो आज से सात वर्ष पूर्व नानी की मृत्यु से पहले थी। दही या छाछ तो नदारद ही थी। आती भी कैसे? जब दूध ही डेयरी से लिया जाता था। वह भी नपा–तुला तो एक अजीब वातावरण में अपने–आप को पा रही थी जहां समय की धारा के तेज प्रवाह का परिणाम देखने को मिल रहा था। मैंने पूछा "मामी, गंगा और भूरी कहां हैं?"

"उन्हें हमने बेच दिया है, मां जी की मृत्यु के बाद उनकी देखभाल करता भी कौन? तुम्हारे मामाजी तो सुबह ही फैक्ट्री चले जाते हैं और मैं यहां अकेली, कितना काम करूं?" मामीजी ने कहा।

"और खेत"...? मैंने पूछा।

"हां, खेत भी बेच दिए, पैदावार भी अच्छी नहीं होती थी, अब इतनी मेहनत करके फसल बोएं और फसल न मिले तो भूखों मरने की नौबत आ जाएगी।"

मैंने आगे कोई बात नहीं की। चुपचाप खाना खाया और उठ गई।

"अरे, तुमने तो कुछ खाया ही नहीं?" मामीजी ने पूछा।

"नहीं, नहीं बस।"

"रहने दो मां, यह शहर की है न? ज्यादा खाने की आदत ही नहीं है, तभी तो सींक सलाई है।" रेखा ने कहा और खिलखिला दी। मैं बस मुस्कुरा भर दी। अचानक आवाज आई "मां ओ मां।" "शायद राजू आ गया" मामीजी ने कहा "अन्दर आ जा।" वह अन्दर आया। मुझे देखते ही बोला "निम्मी कैसी हो?" उसके स्वर में हर्ष था।

"तुम्हारा क्या खयाल है, कैसी लग रही हूं।" मैंने भी मजाकिया ढंग से कहा।

"अच्छी, नहीं.... बहुत अच्छी।" और हमारी खिलखिलाहट का स्वर गूंज उठा।

तभी किशन ने आकर कहा "मां, छत पर पानी छिड़क दूं?" "हां, हां जा" मामीजी ने कहा तो मैं बोली, 'मैं भी चलती हूं।"

हम दोनों छत पर गए। छत का स्वरूप तो बिल्कुल ही नहीं बदला था। पानी छिड़कने पर जो सोंधी–सोंधी महक उठी उसने मुझे अतीत की सुनहरी यादों में जाने के लिए मजबूर कर दिया।

तब किशन छोटा था। नानी की सख्त हिदायत थी कि उसे छत पर न ले जाएं वरना वह गिर जाएगा। मैं और रेखा ही छत पर पानी छिड़कते। थोड़ी देर में सूख जाता तो बिस्तर बिछाते और नीचे चले आते। जब खाना खाकर आते तो ठंडी–ठंडी हवा अपनी मधुर धुन सुना रही होती। नीम के पत्ते सर–सर की आवाज करते।

तभी नानीजी ऊपर आतीं। उनके हाथ में छोटी सी मटकी होती। मटकी को छत की मुंडेर पर रख कर वे हिदायत देतीं "शैतानी मत करना, वरना गिर जाओगे।" और वे चली जातीं। उस मटकी का पानी बहुत ठंडा होता। गर्मी की तपती दोपहर उसी ठंडे पानी को पीकर निकलती थी। गर्मी की दोपहर में अक्सर हम सो जाते। इससे रात को नींद नहीं आती। मैं और रेखा छत पर बातें करते रहते। अपनी, स्कूल की, शहर की, गांव की। हमारी बातें थमने का नाम ही नहीं लेतीं। फिर मामाजी की डांट सुनाई देती "क्या सुबह नहीं होगी? सुबह कर लेना बातें। हमें सोने दो।"

उनकी डांट सुनकर हम एक बार तो सहम जाते फिर पांच–दस मिनट में धीरे–धीरे फुसफुसाहट से जो बातें करते तो वह खिलखिलाहट और शैतानी का रूप ले लेती। आखिर मां मुझे डांटती तो मैं चुप हो जाती साथ ही रेखा भी। मामीजी छत पर बिस्तर लगा रही थीं। मैं भी उनकी मदद करने लगी। मामाजी ने खाना खा लिया था। वे ऊपर आए और सो गए।

सुबह चिड़ियों की चहचहाहट का मधुर स्वर सुनकर मेरी नींद टूटी। मेरे और किशन के अलावा सभी उठ चुके थे। मैं नीचे उतरी।

आज वही चिरपरिचित भजन का मधुर स्वर सुनाई नहीं दिया जो नानी तुलसी के पौधे के सामने गाया करती थीं। रेखा ने कहा "चलो जल्दी से तैयार हो जाओ, तालाब के आसपास घूम आएंगे।" मैं जल्दी–जल्दी तैयार हो गई और उसके साथ चल दी। रास्ते में केवल कुछ ही खेत दिखे। दूर–दूर तक मकानों की बाढ़ थी। गांव मानो शहर ही लग रहा था।

बातें करते–करते हम तालाब तक पहुंचे। तालाब देखकर मेरे मन में उदासी और क्रोध के मिश्रित भाव भर आए। तालाब के उस पार मार्बल–फैक्ट्रियां थीं, जिनका निकलता धुआं देखकर लग रहा था कि वह अपनी कालिख में गांव को डुबो देगा। कुछ औरतें कपड़े धो रही थीं। तालाब का गहरा हरा रंग यह आभास दिला रहा था कि तालाब में काई की मात्रा अधिक है।

रेखा ने कहा "कितना अच्छा था जब हम यहां खेलते थे।"

"हां, आज हम बेकार ही यहां आए।" मैंने कहा।

"सच कहूं तो इतने दिन तक यहां आने का मन ही नहीं था, पर आज तुम्हें अपने साथ देखकर जी चाहता है कि एक बार फिर तैरें, खेले–कूदें। एक बार वह बचपन फिर लौट आए।" रेखा ने ठण्डी सांस लेते हुए कहा। तभी एक मधुर लोकगीत सुनाई पड़ा।

इस गीत की मधुरता ने मन मोह लिया। घनघोर अंधेरे के बीच वह जैसे एक प्रकाश की किरण के समान था। ग्रामीण स्त्रियों को गीतों का अभ्यास नहीं करना पड़ता। सभी एक धुन, एक लय में गाती हैं जैसे पूर्वाभ्यास कर रखा हो। न जाने कितनी देर तक वह गीत सुनते रहे हम। उस गीत की मिठास इतनी भावविभोर कर देने वाली थी कि उसका वर्णन शब्दों में संभव नहीं। आज वर्षों बाद एक लोकगीत सुनने को मिला था। आजकल तो शहरों में शादी के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीत भी फिल्मी गीतों में खो गए हैं। मन कह रहा था कि कोई ऐसे ही गीत सुनाए जाए और हम सुनते रहें। अचानक गीत की आवाज

थम गई। सभी औरतें जा चुकी थीं केवल हम दोनों वहां अकेली बैठी थीं।

जब हम दोनों घर आए तो खाना तैयार था। खाना खाया। रेखा और मैं न जाने कब तक उस नीम के पेड़ के नीचे बैठे रहे। शीतल मंद हवा मानो कह रही थी कि बीता हुआ समय कभी लौटता नहीं। व्यक्ति के लिए एक–एक दिन महत्वपूर्ण होता है। अगर पौधा अपनी जड़ से घृणा करने लगे तो पौधे का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

मैं कमरे में गई और सामान जमाने लगी। रेखा ने आश्चर्य चकित होकर कहा "ये क्या? तुमने तो पंद्रह दिन के लिए कहा था।"

"हां, पर मैं गांव देखने आई थी, गांव का शहरीकरण नहीं।"

वह शायद मेरी बात का अर्थ समझ चुकी थी। उसने कुछ नहीं कहा। हालांकि सभी ने मुझे बहुत रोकना चाहा। लेकिन मेरा मन उचट गया था। मैं नहीं मानी।

बस चल पड़ी थी और मैं सोच रही थी। सब कुछ पीछे छूटता जा रहा है, कुछ खो दिया है मैंने जो अब शायद कभी नहीं मिल सकेगा, कभी नहीं। मेरे भीतर का शांत ज्वालामुखी जो मैं पिछले दो दिनों से अपने भीतर महसूस करती रही थी, अब फट पड़ा था और आंखों के जरिए आंसू के रूप में निकल रहा था। मैंने आंसुओं को रोकने का असफल प्रयत्न किया पर वे थम नहीं पाए। मैंने उन्हें चुपके से पोंछ लिया।

बस तेजी से दौड़े जा रही थी।
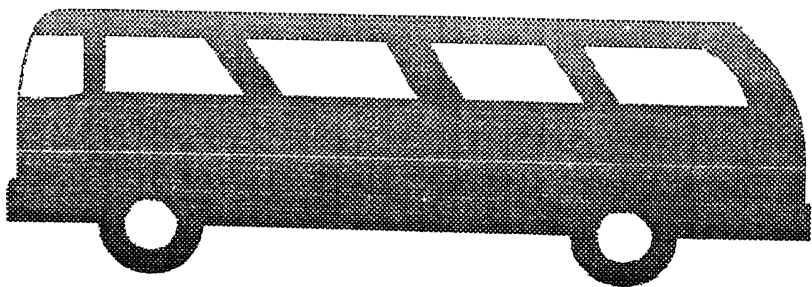
सुनहरी तितली

मोहम्मद साजिद खान

चीनू की मां बचपन में ही गुजर गई थी। अब वह बर्फीली पहाड़ियों के निचले हिस्से में एक घर में अपने पिता के साथ रहती थी।

चीनू बहुत ही सीधी और सरल स्वभाव की लड़की थी। बस अपने काम से काम रखती। उसका पिता तेज स्वभाव का था। मां के मर जाने पर चीनू अपने को बहुत अकेला सा महसूस करने लगी थी। उसका पिता बात–बात पर उसे झिड़क देता। चीनू घंटों रोया करती।

चीनू के घर के सामने एक सुंदर सा फूलों का उद्यान था। उसमें तरह–तरह के रंगीन फूल खिला करते थे। चीनू फूलों को तोड़कर बेचती थी।

यह सुंदर सा उद्यान चीनू का ही था। फूलों के पौधे लगाकर इसे उसने ही सुंदर रूप दिया था। चीनू का लगभग सारा समय इसी उद्यान में बीतता था। उसे जब भी मां की याद आती वह रो पड़ती। उसे रोता देख उद्यान के सारे खिले फूलों के चेहरे ऐसे मुर्झा जाते मानो उन्हें भी चीनू के दुःखी होने का दुःख है।

उसका पिता जब भी उसे रोता देखता, तो गरज उठता। इससे नन्हीं चीनू और भी ज्यादा दुःखी हो जाती। फिर फूलों के बीच जाकर बैठने से उसका सारा दुःख दूर सा हो जाता और वह खुश होकर फूलों से खेलने लगती।

आज काफी बर्फ गिर रही थी और सर्दी तेज पड़ रही थी। चीनू लिहाफ में दुबकी सुबक रही थी। आज उसे अपनी मां की बहुत याद सता रही थी। प्रतिदिन की भांति उसने मुंह–हाथ धोया! और टोकरी लेकर उद्यान तक जा पहुंची। फिर जूही और बेला की लताओं के नीचे उदास होकर बैठ गई।

चीनू को रोता देख जूही और बेला की लताएं उसके कंधों पर झुक गईं। मानो कह रही हों "चीनू! मत रोओ।"

पर अब भी चीनू की आंखों में आंसू थे। उसी समय उसके पिताजी आ गए। उन्होंने गुस्से में कहा "तुम फिर रोने बैठ गई।"

चीनू ने भीगी पलकों से एक बार अपने पिता को देखा। चीनू का हृदय बहुत टूट चुका था। जब पिताजी दूसरे काम में लग गए तो चीनू अपने घर से बाहर निकल पड़ी।

जाते–जाते उसने अपने प्यारे–प्यारे फूलों से कहा "मेरे प्यारे दोस्तों! मैं जा रही हूं। कहीं दूर...। मेरे लिए दुआ करना। शायद कभी हम मिल पाएं।"

थककर जरा देर के लिए वह एक हरसिंगार के पेड़ के नीचे बैठ गई। तभी एक सुंदर और चमकीली सी, काले और सफेद पंखों वाली, सुनहरी तितली उसके पास चक्कर काटने लगी। चीनू उसे देखने लगी। तभी वह तितली बोली "क्यों रो रही हो बहना?"

चीनू एकदम आश्चर्य में आ गई। फिर बोली "तुम कौन हो?"

"मैं इसी हरसिंगार के पेड़ पर रहती हूं। मेरा नाम लिली है। मैं हर साल परियों के देश से यहां आती हूं। किसी की भी सहायता करने। पर सबसे पहले शायद मुझे तुम ही रोती दिखी हो। तुम्हारा नाम क्या है बहना?" उस तितली ने चीनू से पूछा।

चीनू ने आंसू पोछ लिए फिर बोली "मेरा नाम चीनू है।" फिर उसने सारी कहानी उसे कह सुनाई।

"ओह! यह तो बहुत बुरा हुआ, पर कोई बात नहीं। तुम कुछ दिन

यहीं रहो। मैं तुम्हारे साथ रहूंगी। तुम्हारा मन बहल जाएगा।" तितली रानी ने राय दी।

चीनू वहीं रहने लगी। तितली रानी फूलों का मधु पीती और चीनू फलों को खाती। दोनों सुखी थीं। दिन निकलते गए। सर्दी के दिन जाते रहे। बसंत आ गया। पेड़ों ने कपड़े बदले। फूलों में मधु और खुशबू बढ़ी। सारी धरती हरियाली से ढ़क गई।

एक दिन तितली रानी ने चीनू से कहा, "देखो चीनू बहना! मुझे इस धरती पर रहते काफी दिन गुजर गए हैं। अब मेरे वापस परीलोक में जाने का समय आ गया है! सोचती हूं अब तुम अपने घर वापस चली जाओ।"

"पर मैं घर जा भी तो नहीं सकती। राह भूल चुकी हूं।" चीनू ने दुःखी होकर कहा।

"कोई बात नहीं। मैं तुम्हें घर छोड़ने चलूंगी।"

सुबह ही दोनों घर से निकल पड़ीं। तितली रानी के पास शक्ति थी। उसे चीनू के घर का रास्ता मालूम होता जा रहा था। वह आगे–आगे थी और चीनू उसके पीछे–पीछे। काफी रास्ता तय कर लेने के बाद उन्हें दूर किसी के चीखने की आवाज सुनाई दी। एक आदमी तेजी से भाग रहा था और दो आदमी उसका पीछा कर रहे थे।

"लगता है कोई परेशानी में हैं।" तितली रानी बोली।

"हां, ऐसा ही लगता है।" चीनू ने कहा।

"तुम यहीं बैठो, मैं अभी आई।" कहकर तितली रानी उड़ चली।

तितली रानी ने देखा कि दो लुटेरे एक आदमी से धन छीनने की कोशिश मे हैं। उसने फौरन एक घनी झाड़ी बना दी। आदमी उसमें छिप गया। लुटेरे उसे न पाकर वापस हो लिए।

उस आदमी ने तितली रानी को ढ़ेरों धन्यवाद दिया, आभार माना और अपनी राह ली।

जब तितली रानी चीनू के पास पहुंची तो उसने पूछा "कौन था?"

तब तितली रानी ने उसे सारी घटना और उस आदमी का हुलिया बताया।

"अच्छा! वह ऐसा था। तो जरूर वह मेरे पिताजी होंगे। चलो देखते हैं।" चीनू ने कहा।

दोनों उन्हें ढूंढ़ने लगीं।

"वह रहे। वह मेरे पिताजी ही हैं।" चीनू खुशी से बोली।

दोनों पास पहुंचीं। चीनू पिता से लिपट गई। फिर उसने तितली रानी के बारे में उन्हें सब कुछ बता दिया।

"मेरी प्यारी बेटी। मैंने तुझे कहां–कहां न ढूंढ़ा। मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है। अब मैं तुम्हें कभी कष्ट न पहुंचाऊंगा। मैं सदा तुम्हें प्यार दूंगा।" चीनू के पिता ने कहा। उन्होंने चीनू को हृदय से लगा लिया।

तितली रानी भी पिता–पुत्री का प्रेम देखकर खुश हो उठी।

तितली रानी एक बार मुस्कुराई और फिर बोली "अब मेरा परीलोक जाने का समय हो आया है चीनू। अब मैं जा रही हूं।" कहकर तितली रानी दूर गगन में उड़ गई।

"फिर आना।" चीनू ने कहा। वह अब भी तितली रानी को देखे जा रही थी। उसकी आंखों में हर्ष के आंसू थे। तितली रानी गगन में गुम हो गई थी।

चीनू और उसके पिता वापस घर की ओर चल दिए।

चीनू एक बार फिर अपने प्यारे फूलों से जा मिली थी।
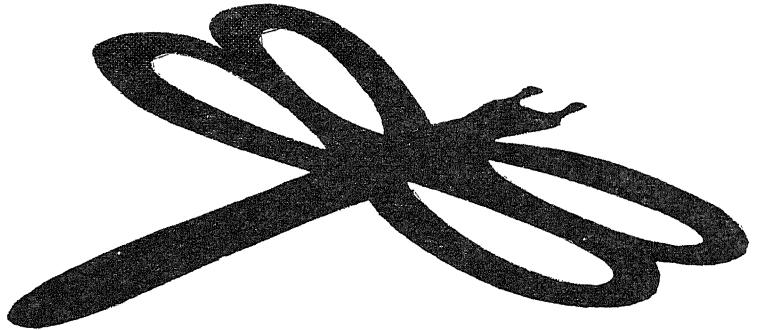
करिश्मा नन्ही फौज का

नरेन्द्र निर्मल

राजू खेल के मैदान से खेलकर वापस घर की ओर लौट रहा था। आज उसे लौटने में कुछ ज्यादा देरी हो गयी थी। रोज़ सूरज ढ़लने से पहले वह खेल बंद करके घर लौट आता था। आज वह खेल के मजे में कुछ ऐसा डूबा कि घर समय से पहुंचने की सुधि न रही। सूर्य एकदम डूबने पर आया, तो उसे ख्याल आया– अब घर चलना चाहिए। मन ही मन वह डरा भी देर हो गयी है, पापा समय से घर न पहुंचने पर कान जरूर उमेठेंगे। वह तुरन्त घर की ओर चल पड़ा।

अकेला नन्हां राजू अपने हाथों को झुलाते हुए लम्बी–चौड़ी सूनसान सड़क पर चला जा रहा था। तभी अचानक एक जीप आकर उसके निकट रुकी। राजू हड़बड़ा गया। वह जीप से कुछ दूर हटकर जा खड़ा हुआ।

लेकिन यह क्या...? जीप में से निकले दो लम्बे चौड़े आदमी उसकी ओर लपके और उसे धर दबोचा। नन्हां राजू घबरा गया। क्षण भर में यह सब क्या...? तभी उनमें से एक आदमी ने न जाने क्या जबरदस्ती उसकी नाक में सुंघा दिया। राजू की आंखों के सामने अन्धेरा छा उठा। वह धीरे–धीरे अपना होश खोने लगा। वे आदमी नन्हीं सी जान राजू को पकड़ कर चम्पत हो गये।

अन्धेरा होने के बहुत देर बाद जब राजू घर न पहुंचा तो उसके

घरवालों को चिन्ता सताने लगी। उसके पिता जी उसे इस बीच कई जगह खोज आये। उसके दोस्तों के यहां पूछने गये। सभी ने यही कहा राजू तो खेल के मैदान से सीधे घर की ओर गया था। निराश होकर राजू के पिता जी ने राजू के खो जाने की रिपोर्ट पुलिस में लिखा दी।

इधर राजू को लेकर वह बदमाश शहर से बाहर एक पुरानी इमारत में पहुंचे। बेहोश हो जाने के कुछ ही देर बाद वह पूरे होश में आ गया था। परन्तु वह वैसे ही चुपचाप एक कोने में पड़ा रहा। राजू ने सुन रखा था– उसके शहर में आजकल बच्चे खूब लापता हो रहे हैं। उसने अखबार में पढ़ा था– शहर में बच्चों का अपहरण करने वाला गिरोह है, जो आये दिन बच्चों को गायब कर रहा है। राजू आंखें मूंदे सोच रहा था– अब उसे इस संकट का सामना कैसे करना है, कैसे वह इन बदमाशों के चंगुल से निकले। उसने मन ही मन निर्णय लिया– जहां ये लोग ले चलें, चलने दो, जो होगा देखा जायेगा। इन लोगों के स्थान पर पहुंचने पर इनके अड्‌डे का तो पता लग ही जायेगा। यह भी पता चल जायेगा कि बच्चों को पकड़कर ये बदमाश कहां रखते हैं और उनसे क्या–क्या करवाते हैं?

जहां पर जीप रुकी थी। वह बहुत ही सूनसान इलाका था। जीप में एक ओर पड़े राजू को उन बदमाशों ने गठरी की तरह उठाया और सामने एक टूटी हुई पुरानी इमारत की ओर चल पड़े।

राजू ने हल्के से अपनी आंखें खोलकर आस–पास के इलाके का अन्दाजा लिया। अन्धेरा था ही, कोई न समझ सका कि उसने आंखें खोली हैं।

तभी उसके कानों में आवाज़ पड़ी, "ओ रामू, ताला खोलो। आज फिर एक चिड़िया पकड़ कर लाये हैं। रामू झटपट उठा। दरवाजे पर लटके ताले को खोलकर उसने जल्दी–जल्दी दरवाजा खोला। सीढ़ियों दार रास्ता नीचे तहखाने की ओर गया था। सभी नीचे उतरने लगे। सीढ़ियों वाले रास्ते में एक लालटेन जल रही थी। रास्ता उतर कर नीचे

एक हालनुमा तहखाना था। तहखाने में रोशनी और हवा आने के लिए काफी ऊपर दो रोशनदान बने थे। पूरे तहखाने में रोशनी के लिए दीवार पर एक लालटेन टंगी थी।

बदमाशों के आते ही यहां बैठे कुछ बच्चे भय से थर थर कांपने लगे। एक दो के तो नन्हीं आंखों से आंसू बह निकले।

बहुत भयानक जगह थी– यह। न कोई आवाज़, न कोई बच्चों के साथ चार बोल प्यार के बोलने वाला। थे तो बस अंगारे सी आंखों वाले पत्थर दिल के ये शैतान। जिन्होंने फूल से प्यारे बच्चों को कैद कर रखा था।

रामू को कुछ आवश्यक निर्देश देकर, सुबह आने को कहकर, वे बदमाश चले गये। रामू भी आकर वैसे ही ताला दरवाजे में बंद करके बाहर पड़ी चारपाई पर लेट गया। रामू का काम था– कैदखाने में फंसे इन बच्चों की देख रेख करना।

तहखाने में बैठे सभी बच्चे उदास मन से अपने नये साथी को निहार रहे थे।

एकाएक राजू बड़े ही झटके के साथ तनकर उठ खड़ा हुआ। उसका इस तरह तनकर खड़ा होना देखकर सभी बच्चे सकपका गये। राजू ने बच्चों से पूछा "तुम लोग यहां कब से हो?"

किसी ने बताया चार दिन से तो किसी ने बताया आठ दिन से तो किसी ने बताया पन्द्रह दिन से। "क्या करते हो तुम लोग।" राजू ने पूरी जानकारी चाही।

लड़कों ने बताया "ये बदमाश हम लोगों की सहायता से विभिन्न वस्तुओं को अन्य नगरों में भेजकर तस्करी करवाते हैं।" एक लड़के ने सामने पड़े ढ़ेर सारे केलों की ओर इशारा करते हुए बताया– इन केलों में कुछ बनावटी प्लास्टिक के केले की बनी थैलियों के बीच कीमती हीरे मोती रखकर तस्करी के लिए बाहर भेजे जायेंगे।

राजू सबकी बातें ध्यान से सुनने के बाद कुछ देर बैठा सोचता

रहा– क्या करूं? कैसे इन बदमाशों से छुटकारा पाया जाये। नन्हा राजू बड़ी देर सोचता रहा। तभी सामने रखे केलों को देखकर उसके दिमाग में एक विचार कौंधा। वह चुटकी बजाते हुए बोला "आइडिया।"

राजू झटपट सामने एक ओर रखे केलों को उठा लाया और बोला, "दोस्तों, ऐसा करो कि यह केले पेट भर कर मजे से खा जाओ।"

हालांकि बच्चे भूखे थे, लेकिन फिर भी उन्होंने साफ इंकार कर दिया "हम न खायेंगे।"

"क्यों...आखिर क्यों...।" राजू को बड़ी झुंझलाहट हुई।

एक लड़का कांपते स्वर में बोला, "यह केले गिनकर रखे गये हैं और वे हमें मना कर गये हैं– "खबरदार। जो केले छुवे, हाथ काट कर रख दिये जायेंगे।"

"दोस्तों, क्या तुम लोग इन बदमाशों के चंगुल से छूटना नहीं चाहते?" अचानक कड़कती हुई आवाज़ में राजू ने सबसे पूछा।

"क्यों नहीं छूटना चाहते हैं" सभी बच्चे बोले।

"तो फिर जल्दी से केले खाओ।" राजू ने अपनी बात दोहराई।

बच्चे केला खाने की बात को न समझ पा रहे थे। आखिर केला खाने और यहां से छुटकारा पाने से क्या संबंध? अजीब बात है इस लड़के की।

राजू बोला "साथियों, अपने भीतर समाये भय को दूर भगाओ तभी हम सबका भला है। मेरे दिमाग में एक योजना है, यदि तुम सब मेरा साथ दो, तो इन देशद्रोही बदमाशों के चंगुल से हम सभी बच निकलेंगे।

"वह कैसे?" एक लड़के ने पूछा।

"केला खाओ।" राजू ने फिर वही बात मुस्कराते हुए कही।

सबने पूछा "आखिर केले खाने से और तुम्हारे यहां से छुड़ाने का क्या तालमेल?"

राजू ने समझाया "यहीं तो सबसे बड़ा तालमेल है। दोस्तों, मेरी योजना यह है कि तुम सभी लोग केले खाओ और छिलका जाकर

सीढ़ियों पर बिछा आओ। और इसके बाद सीढ़ियों पर टंगी लालटेन बुझाकर वहां अन्धेरा कर दो, फिर रामू को नीचे बुलाओ। सीढ़ियों से उतरते वक्त उसका पैर जब छिलकों पर पड़ेगा तो फिसल कर 'धड़ाम' से वह नीचे आ गिरेगा। बस फिर उसके हाथों में जो डन्ड़ा रहता है, उसी से उसकी धुनाई करके हम सभी साथी यहां से भाग निकलेंगे।"

एक लड़के ने पूछा "तुम्हारी यह योजना है तो बहुत अच्छी, पर यह बताओ रामू को ऊपर से नीचे भला बुलाओगे कैसे? ऐसे तो वह आसानी से नीचे आने वाला नहीं।"

"उसका भी एक उपाय हमने सोच रखा है।"

राजू ने अपनी योजना के अनुसार बताया, "सीढ़ियों पर छिलका बिछाने के बाद हमें करना यह होगा कि हम सभी मिलकर जोर–जोर से चिल्लायेंगे सांप...सांप...सांप... बचाओ... बचाओ। और जब तक रामू नीचे न उतरे तब तक हम सभी चिल्ला–चिल्ला कर उसकी नाक में दम कर देंगे। रामू किसी तरह नीचे आयेगा ही, बस फिर वहां से अपनी नन्ही फौज का करिश्मा चालू।" राजू अपनी योजना समझाते हुए आगे बोला "देखों दोस्तों, एक बात का ध्यान रखना, भागते वक्त बहुत संभल कर आहिस्ते–आहिस्ते छिलकों से बचते हुए एक एक करके ऊपर चढ़ना।"

सभी को राजू की योजना बहुत पसंद आयी। फिर क्या था केला खाओं फार्मूला लागू हुआ। सभी बच्चों ने मजे के साथ पेट भर कर केला खाया और छिलके बिछा आये। इसके बाद बच्चे अपनी योजना के अनुसार लगे जोरों से चिल्लाने, "सांप...सांप... बचाओ... बचाओ.... सांप. सांप... सांप।"

रामू तुरन्त अपना डन्ड़ा लेकर दरवाजा खोलने लपका। जल्दी–जल्दी दरवाजे का ताला खोलकर वह बदहवास सा सीढ़ी उतरने लगा। एक–दो–तीन...चार और पांचवीं सीढ़ी पर जैसे ही रामू ने पैर रखा कि धड़ाम से औंधे मुंह वह नीचे आ गिरा। उसके हाथों का

डन्डा एक ओर जा लुढ़का।

नीचे नन्ही फौज अपनी पूरी तैयारी के साथ खड़ी थी। फिर क्या था– जुट गये सब के सब। जी भरके सभी बच्चों ने रामू की ठुकाई करी। रामू जब कुछ बेहोश सा हो गया तो सभी बच्चे एक–एक करके छिलकों से बचते हुए ऊपर आ गये। राजू ने देखा चाभी समेत कुन्ड़ी में ताला लटक रहा था। जल्दी–जल्दी में राजू ताले को दरवाजे में बंद करके चाभी जेब में डाली और चल पड़ा सबके साथ सड़क की ओर।

लगभग एक घण्टे चलने के बाद बच्चे भटकते हुए किसी तरह शहरी इलाके में पहुंचे। सबसे पहले बच्चे पुलिस स्टेशन पहुंचे। इतनी रात बीते, बच्चों को देखकर पहले तो पुलिस वाले सकपकाये, फिर राजू द्वारा पुलिस को सारी बातें पता चलने पर तुरन्त कार्यवाही हुई। पुलिस ने तुरन्त रामू को गिरफ्तार किया। उसने बदमाशों के सारे कारनामें और सभी अड्ड़े कबूले। पुलिस ने सभी अड्ड़ों पर छापा मार कर बदमाशों को तुरन्त गिरफ्तार किया।

दूसरे दिन अखबारों में इस घटना की पूरी खबर छपी थी। साथ ही यह भी खबर थी कि राजू को उसके साहस के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार भी दिया जायेगा।
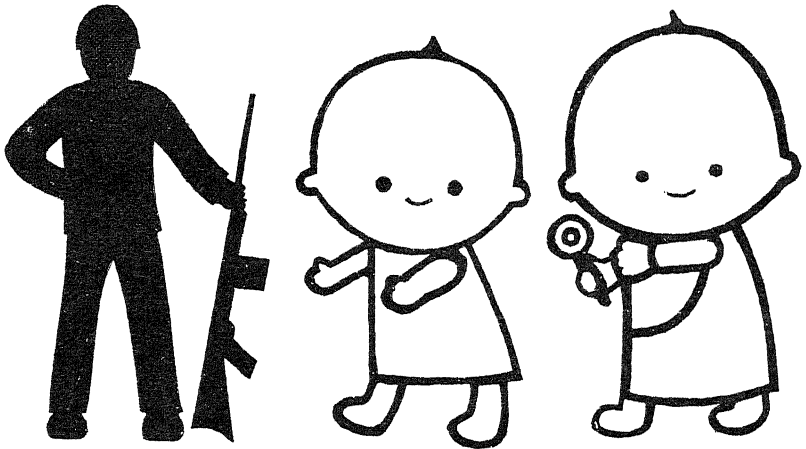
मान जाओ मेरी गुड़यां

समीरा स्वर्णकार

आज जयश्री मुझसे नाराज थी। कल मैंने उसके साथ फिल्म देखने जाने का वादा किया था जो कि घर पर कुछ लोगों के आने से टूट गया। बस मेरी भोली–भाली सहेली नाराज हो गई। और आज मैं उसे मनाने उसके घर पहुंच गई। आंटी से उसके विषय में पूछने पर पता चला कि वह अपने कमरे में है और अगले ही पल मैं उसके कमरे में हाजिर थी। मैंने देखा जयश्री कापी पर उल्टे–सीधे कार्टून बना रही थी। वह गुस्से में ऐसा ही करती है। वह पलंग पर लेटी हुई इस काम में पूर्ण तन्मयता से संलग्न थी। मैं भी दबे पांव उसके पलंग के पास पहुंची और उसके बगल में लेट गई। उसने एक क्षण के लिए मुझे देखा फिर मुंह फेर कर वापस कार्टून बनाने लगी।

मैंने उसको मनाने की गरज से कहा "मान जाओ न! मान जाओ मेरी गुइयां!"

वह मेरी ओर देखकर आश्चर्य से कहने लगी "ये गुइयां किस भाषा का शब्द है?"

मैंने कहा "पता नहीं। लेकिन कहीं न कहीं तो इसका प्रयोग होता ही है?"

उसने फिर पूछा "पर तुम कैसे जानती हो?"

मैंने कहा "जैसे पुरानी यादें मस्तिष्क में अनायास ही आ जाती हैं

वैसे ही यह शब्द मेरी बातों मे आ गया।"

जयश्री अब भी आश्चर्यचकित थी। पूछने लगी "पुरानी यादों की तरह? क्या तुम कभी ऐसे लोगों के बीच रही हो? आखिर गुइयां का मतलब क्या है?"

मैं बताने लगी "गुइयां का मतलब होता है सबसे घनिष्ठ सहेली। बेहद प्यारी, सबसे न्यारी।" मैं एक क्षण रुकी फिर उदास हो गई। मैंने कहा "जयश्री। मैं एक आदिवासी ग्राम में रह चुकी हूं। बस वहीं से यह शब्द आ गया है मेरे पास। सचमुच लोग बिछड़ जाते हैं पर भाषा हमेशा साथ निभाती है। कब कहां हमारे मस्तिष्क और जीभ में घुल मिल जाती है पता ही नहीं होता।"

जयश्री उस गांव एवं वहां के लोगों के विषय में जानने के लिए बड़ी उत्सुक थी। उसने मुझसे पूछा "वहां तुम्हारे कैसे अनुभव थे सम्मी, तुम्हें तो देखकर लगता ही नहीं कि तुम ऐसी जगह भी रह चुकी हो? कुछ बताओ तो सही।"

मैं थोड़ी खुश हुई कि बड़ी मुश्किल से मानने वाली मेरी ये सहेली आज इतनी आसानी से गुस्सा भूल गई। मैंने उसे बताना शुरू किया– सात साल पहले की बात है। मेरी तीसरी कक्षा की परीक्षा चल रही थी। उन दिनों ही पापा ने हमें बताया कि उनका ट्रांसफर पिंडरई हो गया है। मैंने तब तक कोई गांव नहीं देखा था। शहर में अंग्रेजी मीडियम स्कूल में पढ़ने वाली स्कूल बस से स्कूल जाने वाली मैं गांव के बारे में क्या जानती थी। बस थोड़ा बहुत पापा ने और टीचर ने बताया था कि गांव में कच्ची सड़क होती है, खेत होते हैं, झोपड़ियां होती हैं वगैरह–वगैरह। पर गांव की कोई स्पष्ट छवि मेरे दिमाग में न थी। गांव जाने के लिए मैं बेहद उत्सुक थी।

हम लगभग पंद्रह दिन बाद गांव के लिए चल पड़े। पापा ने हमें कहा कि तुम लोग उसी ट्रक में बैठकर चलो जिसमें सामान जा रहा है। ट्रक पर! सुनकर मुझे बड़ा मजा आया। पापाजी साथ में मोटर साइकिल

से आने वाले थे।

रास्ते में भयंकर धूल थी। खांसते–खांसते मेरा मम्मी का बुरा हाल था। रास्ते में अनेक नाले पड़े। वो भी बिना पुल के। ट्रक के पहियों से दोनों ओर पानी उछलता तो मुझे बहुत मजा आता। हम शाम तक गांव पहुंच गए। वहां किराए से घर देने का ज्यादा रिवाज नहीं था। हमें एक झोपड़ी किराए से मिली थी। जो पहले वीडियो हाल थी। काफी लंबा। अगली सुबह एक बाई आई। उसे हमारे मकान मालिक या सही कहें तो झोपड़ी मालिक ने भेजा था। वह साथ में एक टोकरा गोबर लाई थी। मैंने उससे पूछा "ये किसलिए है?"

वह कहने लगी "अरी बिटिया। धरती पर लीपन के लाये हैं।"

मैंने कहा "जमीन पर पोत दोगी। अरे! ये तो बदबू करेगा।"

वह हंसने लगी। देखते ही देखते उसने पूरे कमरे में गोबर लीप दिया। मैं एक पलंग के ऊपर नाक बंद करके खड़ी थी। मम्मी से चप्पल मंगवाई। मैंने पलंग से सीधे चप्पल पर पैर रखे और बाहर आ गई।

बाहर का दृश्य कितना सुंदर था। दूर–दूर तक हरियाली। आकाश भी सुंदर लग रहा था। औरतें और लड़कियां सिर पर घड़े या गुंडी रख पानी ले जा रही थीं। एक के ऊपर एक करके कुछ ने तो तीन चार घड़े तक रखे हुए थे। मुझे बड़ी हैरानी हुई यह देखकर कि वे बिना हाथ से पकड़े चली जा रही थीं। थोड़ी ही देर में मम्मी ने मुझे अंदर बुला लिया नाश्ता करने के लिए।

उस दिन मैं पापा के साथ मोटर साइकिल में बैठकर खूब घूमती रही। गांव और आसपास के इलाके घूमने में बहुत मजा आया। घर बड़े अनोखे और सुंदर लग रहे थे पर दरवाजे बहुत छोटे थे।

कुछ दिनों बाद पापा मुझे स्कूल ले गए। स्कूल देखकर तो मैंने सिर पीट लिया। वह भी एक टूटी–फूटी दो मंजिली डरावनी झोपड़ी ही थी। वह एक कन्या शाला थी। अंदर ऑफिस में बैठीं सब टीचरें गप्पें लड़ा रही थीं और लड़कियां गंदे कपड़े पहने बिना चप्पल घूम रही थीं।

किसी कक्षा से दो एकम दो की बड़ी जोरदार आवाज आ रही थी। पापाजी ने मेरा एडमीशन करा दिया। अगले दिन मैं साफ सुथरी फ्राक, जूते कंघी वगैरह की मदद से तैयार होकर स्कूल पहुंची। पर मुझे सबसे अलग–अलग अजीब सा लग रहा था। मैं अकेले ही टिफिन ले गई थी। सब तो चवन्नी के बेर लेकर खाकर ही खुश थे। ऐसे ही एक दो दिन बीत गए।

फिर एक दिन जोरदार बरसात हुई। शाम से पानी गिर रहा था जो रात भर गिरता रहा। घर की छत से इतनी अधिक जगह से पानी टपक रहा था कि सारे बर्तन एवं बाल्टी कम पड़ रहे थे। सब सामान हटाकर बस टपकते पानी के नीचे बरतन रखे जा रहे थे। और अचानक पैरों से बर्तन टकरा रहे थे। तभी दरवाजे पर आहट हुई। पापाजी ने मोमबत्ती की रोशनी में देखा तो पता चला रीजनल मैनेजर आए हुए थे। उनके साथ एक ऑडिटर भी थे। उनकी जीप इस कीचड़–पानी में फंस गई थी और वे जबलपुर न पहुंचकर हमारे घर आ गए थे। वे कभी हमारे घर के पर्दों के सहारे बने कमरों को, जमीन पर रखी बाल्टी एवं बर्तनों को और कभी हमारे चेहरे को देख रहे थे। वे देख रहे थे कि किस जगह पर बैंक खोल दिया है।

बरसात सुबह तक थम गई थी। चारों ओर कीचड़ ही था। रास्ते में चलने पर पैर छह इंच धंस जाते थे। मच्छर भी खूब हो गए थे। मुझे एक दिन बहुत सिरदर्द महसूस हो रहा था फिर भी मैं स्कूल चली गई। स्कूल में किसी से ज्यादा बात नहीं की थी। फिर भी मैंने साथ बैठने वाली लड़की से कहा कि मेरा सिर दुःख रहा है। वह बड़े प्यार से मेरा सिर दबाने लगी। पर जब सिरदर्द और बुखार कम न हुआ तो वे लोग मुझे एक बैलगाड़ी में बिठाकर घर ले आईं। मुझे मलेरिया हो गया था।

दो तीन दिन बाद मैं कुछ ठीक हुई। मेरी कक्षा की सब लड़कियां मुझसे मिलने रोज आतीं। और एक शाम ना जाने मेरा मन क्या हुआ कि मैंने एक पेटी से अपनी सब फटी पुरानी फ्रॉक बाहर निकाली। टूटी

स्लीपर भी। और अगले दिन से मैं भी उनकी तरह फटे पुराने कपड़े पहन कर व टूटी स्लीपर पहनकर स्कूल जाने लगी। बस अब दोस्ती में कोई रुकावट न थी। वही भाषा। वही शौक। मुझे उन्होंने पचासों लोकगीत और भजन सिखा दिए। मैं भी उनके समान चार आने के बेर, बिही, शहद, गोंद, कैथा, चनाबूट, गन्ना जैसी चीजें खाने लगी। उनकी तरह ढेर सारा तेल लगाकर दो चोटी बनाती जिसमें रंग–बिरंगी पिन और रिबन लगी हो। गुट्टे पत्थर, गिल्ली डंडा यहां तक कि मैंने कबड्डी खेलना भी सीख लिया। तिल, गुड़, मूंगफली की पपड़ी के आगे मुझे काई चाकलेट पसंद न आती। इतना ही नहीं मैं उन लोगों की तरह रोज एक खाली बोरा भी स्कूल ले जाती जिससे कि जमीन में न बैठना पड़े। मुझे उन सब में एक लड़की बहुत अच्छी लगती। उसका नाम अर्चना था। कक्षा में एक वही तो मेरे बराबर उम्र की थी शेष तो दो साल से लेकर आठ साल बड़ी थीं। एक की तो शादी भी हो चुकी थी।

अर्चना मेरी बहुत अच्छी सहेली बन गई थी। हम घंटों साथ–साथ खेतों में घूमते, गुट्टे (पत्थर) खेलते, कंचे खेलते या फिर नाले के पानी में पैर डुबोए बातें करते रहते। गांव अब मुझे भा गया था। हर चीज अच्छी लगने लगी थी। सब कुछ कितना सहज और सुंदर था। वहां की होली जिसमें ऐसा रंग चढ़ाया जाता था कि कई दिन तक न छूटे। दीवाली भी कितने सुंदर ढंग से मनाई जाती। गोबर–चूने से लिपे–पुते घर आंगन, रंगोली और दीए कितने सुंदर होते थे। ऐसी सुंदरता बल्ब से जगमगाते घरों में कहां? दीवाली के बाद लगने वाले मड़ई मेले में हम सब बच्चे भी जाते बैलगाड़ी में बैठकर। बंसी, पुंगी, फग्गे, डमरू, मिट्टी की गुड़िया जैसी अनमोल सम्पत्ति खरीद कर लौटते। फिर कई दिनों तक घर इन बाजों की चें–चें–पें–पें से गूंजता और मम्मी परेशान भी होती, हंसती भी।

अर्चना का साथ मुझे बहुत अच्छा लगता था। वह बेहद भोली–भाली

लड़की थी। उसकी आंखें खुशी से चमकती रहती थीं जिनमें मेरे लिए ढेर सारा प्यार होता था। वह बड़ी सी काली बिंदी लगाती। वह इतनी मीठी धुन में लोकगीत गाती कि मैं सुध--बुध खोकर उसे एक टक देखती रह जाती थी। वह जब आती तो साथ में उल्लास और उत्साह होते थे। घंटों काम कर लेती थी। गाय बैल नहलाने, दूध दुहने से लेकर खाना बनाना भी जानती थी।

और इस तरह दो साल बीत गए। मैं पूरी तरह गांव के रंग में रंग गई थी। सही शब्दों में कहा जाए तो देहाती बन गई थी। पापा का ट्रांसफर हो गया। जाने की घड़ी भी नहीं--नहीं करती आ गई। गांव से दूर होना कितना कष्टकर होगा मुझे अनुमान भी न था। जाने वाले दिन अर्चना मेरे घर आई। उस के हाथ में कुछ था जिसे उसने कागज में लपेट रखा था। वह मेरे पास आई। मैं उसके कहने पर उसके साथ खेतों में पहुंची। वहां हम मेढ़ पर बैठ गए। वह मेरी ओर उदास होकर देखने लगी फिर सिर झुकांकर कहने लगी "सम्मी। तुम तो शहर की हो न। मुझे ज्यादा प्यार नहीं करती होगी। यहां से जाने के बाद भूल भी जाओगी, पर मैं तुमकों नहीं भूल सकती। तुम जब से यहां आई हो मुझे बहुत अच्छी लगती हो। बिल्कुल गुड़िया जैसी। मैंने हमेशा कहना चाहा पर कुछ कह न सकी। तुम मेरी गुइयां बन जाओ। बनोगी न। तुम्हें कसम...।" वह और कुछ न कह सकी। सिसक पड़ी। मैंने उसके हाथ में रखा कागज का बंडल खोला एक बिही (अमरूद) था। गांव के रिवाज के अनुसार जो सबसे अच्छी सहेली लगे उसका जूठा खाने से गुइयां बन जाते हैं।

उसने बिही मेरी ओर बढ़ा दी। मैंने एक कौर खाया। उसने फिर मेरे हाथ से लेकर एक कौर खा लिया। मैं उसकी गुइयां बन चुकी थी। मैंने अब उससे लेकर खाना चाहा पर उसने मना कर दिया। कहने लगी, "तुम्हें और भी सहेलियां मिल जाएंगी, मुझे अपनी गुइयां न बनाओ मैं इस लायक नहीं।"

वह बिही हाथ में लेकर खेतों में दूर दौड़ गई, अपने घर की तरफ। मैं उसे दूर जाते देखती रही, फिर घर लौट आई। उस शाम हम गांव छोड़कर हमेशा के लिए चले गए।

मैंने कहानी या आप बीती खत्म करने के बाद जयश्री की ओर देखा। उसकी आंखों में आंसू थे। मैं उससे कुछ पूछती इससे पहले मैंने महसूस किया कि मेरे गाल से नीचे अनेक आंसू टपक रहे थे।

दादी का गांव

डॉ. दिनेश चमोला

अंजली और शैलजा दो बहनें थीं। दोनों बहुत सुन्दर व होशियार थीं। अंजली दूसरी कक्षा में पढ़ती थी और शैलजा पहली में। वे पहाड़ के रहने वाले थे। लेकिन वे दिल्ली में ही रहते थे। बस कभी गर्मियों की छुट्टियों में ही पहाड़ जाना हो पाता। पहाड़ उनको भले लगते, वे गांव के मौसम व परिवेश में रचने–बसने लगते कि छुट्टियां समाप्त हो जातीं।

शैलजा चूंकि बहुत कम पहाड़ में रही थी। इसलिए गांव के माहौल से परिचित न थी। लेकिन जब भी गांव, जंगल व पहाड़ की कहानी मम्मी पापा सुनाते तो एकटक हो सुनती और जिज्ञासा से कई–कई अनसुलझे प्रश्न बीच–बीच में करती। मम्मी पापा भी यह सुन प्रसन्न हो जाते।

उनके पापा जी की बदली दिल्ली से देहरादून हो गई थी। देहरादून बहुत सुन्दर जगह है। फिर जहां नौकरी का स्थान था वह स्वर्ग से भी सुन्दर। आर–पार में हरे भरे ऊंचे–ऊंचे वृक्षों का जंगल। बीच में मीलों तक समुद्र से खामोश चाय के बागान। उत्तर में पहाड़ों की रानी मसूरी व चारों ओर छोटी–छोटी पर्वतमालाएं। बच्चों को बहुत भला लगा। दिल्ली के शोरगुल व गहमागहमी से यहां के शान्त जीवन का आनंद ही कुछ और था। दिल्ली में नजदीक से चिड़ियों, पक्षियों को

देखने का सौभाग्य बच्चों को न मिला था। लेकिन यहां तो आने पर आंगन के आर–पार कई रंग–बिरंगी चिड़ियां उनसे परिचय के लिए उतावली बैठी थीं।

बच्चों को चिड़ियों का यह नजदीकी प्रेम बहुत अच्छा लगा। वे उन्हें दाना डालने लगे। अब क्या था, रात खुलती भी न थी कि रंग–बिरंगी सुन्दर–सुन्दर चिड़ियां बगीचे में चहचहाने लगतीं।

बगीचे में फूलों के अलावा एक आम का भी पेड़ था। जिस पर दिन भर पक्षियों का जमघट लगा रहता। शैलजा छोटी थी। मम्मी से बार–बार कहती, "मम्मी जी, आज इन प्यारी चिड़ियों को भी अपने घर में ही रहने दो न!"

"नहीं बेटे, इनके भी अपने घर होते हैं। सायं होते ही ये अपने–अपने घरों को उड़ चलते हैं। यदि हम उनको यहां रखेंगे तो घर में उनके छोटे बच्चे बहुत रोयेंगे। यदि ऑफिस से तुम्हारे पापा न आएं तो?"

"हम ऑफिस चले जाएंगे... पापा जी को लेने।" शैलजा तपाक से बोल पड़ी। मम्मी के थोड़ा समझाने पर शैलजा समझ गई। शैलजा का घर का नाम शैलू था। पापा जी ऑफिस से आने के बाद अपने लिखने–पढ़ने में डूब जाते, तो बच्चे बाल पत्रिकाएं पलटने लग जाते।

अंजली कलाकार थी। सुन्दर–सुन्दर चित्र बनाती। शैलू चित्र बनाते देखती तो खुद भी कागज काले पीले करने लग जाती। लेकिन कुछ ही दिनों में शैलजा भी अच्छे चित्र बनाने लगी। अंजली शैतान भी थी और बुद्धिमान भी। दोनों पढ़ते–लिखते चित्र बनाते और पापाजी के आने तक पार्क में खेलते–कूदते चिड़ियों से बतियाते। उन्हें मिलने के लिए कभी गोपेश्वर, लिखवाड़ी से प्रवीण, नवीन, निवास, कुसम आते तो कभी लखनऊ से आशु, दीप्ती व मंकू, कभी रिवाड़ी से सोनू आता तो कभी राजस्थान (जयपुर) से कृति। सभी यहां की चिड़ियों व सुन्दरता की खूब प्रशंसा करते।

शैलजा व अंजली की पाठशालाएं अलग–अलग लेकिन साथ–साथ

थीं। स्कूल जाते कभी रास्ते में बंदर साथ हो जाते तो कभी लंगूर। इनसे उन्हें डर लगता। लेकिन जब कभी स्कूल के पास के लीची व आम के पेड़ों पर सुन्दर–सुन्दर तोतों का झुण्ड़ आता तो सब बच्चों को बहुत अच्छा लगता। कुछ दिनों बाद शैलजा का जन्मदिन था। उसके दो तीन माह बाद अंजली का।

एक दिन अंजली ने मम्मी जी से कहा, "मम्मी, शैलू को जन्मदिन का क्या तोहफा देंगे?"

"मम्मी जी, मुझे हीरामन लाने हैं... सुन्दर–सुन्दर तोते... जो हमारे स्कूल में आते हैं... कितनी अच्छी बातें करते हैं... मुझे लाओगी न मम्मी?" शैलजा पहले ही बोल पड़ी।

"अपने पापा जी से कहना..." मम्मी जी ने शैलजा से कहा।

बस, क्या था। शैलजा ने पापा जी के सामने धरना दे दिया। वह इतनी पक्की है कि मांग पूरी करवा कर ही सांस लेती है। अंजली तो कुछ कह–सुनकर मान भी जाती है लेकिन शैलजा उस दिन स्कूल भी न गई। आखिर एक दिन मजबूर होकर मम्मी व पापा जी के साथ बाजार जाकर पिंजरे में दो हीरामन लेकर ही चैन से बैठी। अब क्या था! हीरामन से उनकी अब अच्छी खासी दोस्ती हो गई। एक नाम उसने चिट्टू और दूसरे का नाम रख दिया मिट्ठू। कुछ दिनों में अंजली ने भी अपने लिए एक पिंजरे की मांग की। फिर दो तोते और ले आने पड़े। बस, अब तो सोते खाते तोतों से ही उठना बैठना... और वे भी तो उन्हीं का दिया लिया खाते पीते।

कुछ दिनों बाद गुड़गांव से उनके चाचा जी गांव जाने के लिए देहरादून आए। अंजली की छुट्टियां थीं। वह भी अपने तोतों की निगरानी की बात कर चाचा जी के साथ गांव चली गई। उसे गांव बहुत अच्छा लगता। शहर की अन्य खास–खास बातों के अलावा उसने दादा–दादी को अपने सुन्दर–सुन्दर तोतों की भी बात कही। लेकिन यह बात सुन दादी को अच्छा नहीं लगा। दादी ने उसे समझाते हुए

कहा, "बेटी, पक्षियों को पिंजरे में रखना पाप होता है। जो चिड़ियों व जीव जन्तुओं को कष्ट देता है भगवान उसे शाप देते हैं। आकाश में उड़ने घूमने वाले पक्षियों को नहीं सताना चाहिए बेटी...। यदि कोई हमारे भी हाथ पांव बांध दे तो कष्ट तो होगा न...! जाकर अपने पापा जी को कहना कि पिंजरे में पक्षियों को रखना अच्छी बात नहीं है। बन्दी चिड़ियों, जीव–जन्तुओं को मुक्त करने पर वे दुआएं देते हैं।

"लेकिन दादी जी, चिड़िया बेचने वाले तो सैकड़ों की संख्या में चिड़ियों जीव–जन्तुओं को पकड़ कर पिंजड़ों में रखते हैं और महंगे दामों में बेचते हैं। हमने भी तो उन्हीं से खरीदे थे।" "वे लोग तो निर्दयी होते हैं.... वे भगवान की बात क्या जानें। लेकिन हमें तो यह काम करना ठीक नही है। सब तोते उड़ा देना..., बल्कि अपने पापाजी–मम्मी जी से बंदी तोतों को उड़ाने को कहना।" दादी ने कहा।

फिर दादी जी ने कई कहानियां सुना डालीं। बस, अंजली का बाल मन समझ गया कि वास्तव में चिड़ियों को पिंजरे में कैद करना उनके साथ अन्याय है। वे अवश्य दुःखी होकर श्राप देते होंगे। यह बात उसके मन में बैठ गई। कुछ दिनों बाद अंजली गांव से देहरादून लौटी। उसने आते ही मम्मी–पापा और शैलजा की क्लास ले ली।

"देखो पापाजी, हीरामन अभी उड़ा दो। इनको सताना व ऐसे रखना पाप है। वे भी हमारी ही तरह खेलना कूदना उड़ना और अपने मित्रों से मिल बैठना चाहते हैं। अतः अब आप, दादी जी ने कहा है कि, ऐसे पक्षियों को उड़ाया करना... यह पुण्य होता है।" अंजली ने कई–कई दादी की रहस्यमय बातें कह सुनाई।

गुड़िया की शादी

वसुधा शर्मा

मोहल्ले में फिरकी सी घूमती टिक्की ने आज पहली बार गली से गुजरती बारात को देखा। घोड़ी पर बैठा दूल्हा उसे बहुत भाया। "वाह! मेरी शादी हो तो मैं भी घोड़ी पर बैठूं" यह सोचकर टिक्की का मन मयूर नाच उठा। वह दौड़ी–दौड़ी घर आई और मां के आंचल से लिपट कर बोली "मम्मी... मम्मी, एक बात कहूं, मेरी भी शादी कर दो ना..." कहकर छुइमुई सी शरमा गई।

मां उसकी बाल सुलभ चपलता पर बलैइयां लेती बोली "अरे! मेरी ऐसी प्यारी बिटिया को मैं क्यों अभी से डोली में बिठाकर पराए घर भेज दूंगी?"

"डोली में नहीं मां..., जिसकी शादी होती है वो तो घोड़ी पर बैठकर जाता है।" टिक्की ने मां को समझाया।

"अरे पगली, घोड़ी पर तो लड़का बैठता है तूने दूल्हा देखा होगा। लड़की दुल्हन बनती है और वो डोली में या कार में बैठकर दुल्हा के घर जाती है।" मां ने टिक्की के गाल पर चुटकी काटते हुए कहा।

"लड़की दूल्हा के घर चली जाती है.. वापस अपने घर नहीं आती?" टिक्की ने जिज्ञासा से पूछा।

"नहीं बेटा, फिर कभी–कभी आती है अपने मम्मी–पापा से मिलने" निस्वास छोड़ती मां से मिली यह नई जानकारी टिक्की को पसन्द नहीं

आई। उसका भी चेहरा फीका पड़ गया। कुछ देर रुककर उसने मां से पूछा "अगर मां लड़की घोड़े पर बैठकर जाए तो वह लड़के को डोली में बैठकर अपने घर ला सकती है न?"

बालमन को बहलाती मां ने कह दिया "हां, हां.... बिल्कुल ठीक, मेरी टिक्की तो घोड़े पर बैठकर जाएगी और अपने दूल्हा को डोली में बिठला कर ले आएगी।"

बस इतना सुनना था कि टिक्की ने दोनों हाथों से तालियां पीटी और किलकते हुए बोली "फिर तो मेरी गुड़िया भी कल घोड़े पर बैठकर जाएगी और शिखा के गुड्डे को डोली में बैठाकर अपने घर ले आएगी।" कल टिक्की की गुड़िया और शिखा के गुड्डे की शादी जो होने वाली थी।

उतसाह से भरी टिक्की पल भर में ही शिखा के घर जा पहुंची। शिखा जो टिक्की से उम्र में कुछ बड़ी थी, अपने गुड्डे की शादी की तैयारी में कुछ ज्यादा ही व्यस्त दीख रही थी। वह टिक्की को देखते ही बोली "कल तेरे घर बारात आने वाली है और आज तू ऐसे निठल्ली की तरह घूम रही है लगता है कल सब रिश्तेदारों के सामने मेरी नाक कटवाएगी।"

"बारात मेरे घर नहीं, बच्चू... तेरे घर आएगी, समझी।" टिक्की की यह अनहोनी घोषणा सुनकर शिखा उसका मुंह ताकने लगी। फिर बोली "टिक्की, तेरा दिमाग खराब हो गया है या इस घड़ी भी तुझे मज़ाक सूझ रही है? सच सच बता तुझे अपनी गुड़िया की शादी करनी भी है या नहीं?" झल्लाते हुए शिखा ने पूछा।

"शादी से कब मना किया मैंने, मुझे तो तेरा गुड्डा बहुत पसन्द है लेकिन... मैंने अपनी मां से पूछ लिया है लड़की भी घोड़े पर बैठकर जा सकती है और दूल्हा को डोली में बैठाकर अपने घर ला सकती है। इसलिए मेरी गुड़िया भी ऐसा ही करेगी।" टिक्की ने अपना फैसला सुनाया।

"लेकिन ऐसा कहीं होता है? मां ने तुझे बहकाया होगा।" शिखा ने कहा।

मेरी मां बच्चों को बहकाती नहीं है, हम जो करें वही हो जाता है। तू सब तैयारी करके रखना। हम कल अपनी गुड़िया की बारात सजाकर लाएंगे और तेरे गुड्डे को ले जाएंगे।" आदेश देती टिक्की ने कहा।

"लेकिन हम अपने गुड्डे–गुड्डी की शादी रीतिरिवाज परम्परा से ही तो करेंगे, तू ये उल्टी बात क्यों कर रही है?" परेशान सी हुई शिखा ने पूछा।

"उल्टा–सीधा मैं कुछ नहीं जानती शिखा, रीतिरिवाज हम ही तो बनाते हैं इसलिए हम उन्हें तोड़ भी सकते हैं बदल भी सकते हैं। तू बता कब तक लड़कियां ही लड़कों के घर जाती रहेंगी? बारी बदल भी तो सकती है इस तरह तो हमें घोड़े पर बैठने का, लड़कों को अपने घर लेकर आने का मौका कभी भी नहीं मिलेगा। आज तो तेरे गुड्डे की शादी है फिर जब तेरी शादी होगी तो क्या तुझे घोड़े पर बैठकर जाने में मज़ा नहीं आएगा?" टिक्की ने पूछा।

शिखा को टिक्की की बात जंची, वह कुछ सोचकर बोली "मज़ा तो आएगा।"

"फिर क्यों नहीं हम अपने गुड्डे–गुड़िया की शादी से यह नया रिवाज चलाएं?" कहकर टिक्की ने शिखा की ओर देखा। शिखा किसी भी हालत में अपने गुड्डे का ब्याह टालना नहीं चाहती थी और टिक्की की बात से सहमत भी थी, इसलिए उसने तुरन्त सहमति दे दी।

बस फिर क्या था। दूसरे दिन धूमधाम से टिक्की की गुड़िया और शिखा के गुड्डे का ब्याह रचा। गुड्डे की विदाई हुई। उसकी डोली हंकाकर ही टिक्की की गुड़िया ने अपने घोड़े को एड़ लगाई।

आत्मविश्वास

डॉ. भैंरूलाल गर्ग

"अरे सोनू बेटा! कहां हो तुम।" मम्मी की आवाज़ सुनकर छत पर बैठा अपना होमवर्क कर रहा सोनू नीचे आ गया।

उसने देखा कि मोढ़े पर कोई आदमी बैठा है। उसके हाथ में रंगीन कागज में लिपटे दो डिब्बे हैं। सोनू को पास बुलाकर डिब्बे पकड़ाते हुए वह बोला, "लो बेटा, अपना उपहार। कल तुम्हारा बर्थ डे था न! मैं बाहर था, इसलिए कल न आ सका।"

थोड़ी देर बाद जब वह चला गया, तो सोनू ने खुशी–खुशी डिब्बों को खोला। एक में मिठाई थी। दूसरे डिब्बे में कीमती ज्योमेट्री बॉक्स। सोनू की खुशी का ठिकाना न रहा।

उसने मम्मी से पूछा, "मम्मी, ये अंकल कौन थे? कितना अच्छा उपहार लाए मेरे लिए।" वह बोली "बेटे, ये इस शहर के सबसे बड़े आदमी हैं, ठेकेदार अमीरचंद।"

सोनू सोचने लगा, हमेशा ही कोई न कोई फल, मिठाइयां लेकर हमारे घर आता है। पर उन्हें इसने पहली बार देखा है, फिर जब भी ठेकेदार अंकल आते, अपने साथ कुछ न कुछ जरूर लाते हैं। दूसरे अंकल तो कुछ नहीं लाते। सोनू के मन में यही विचार आने लगते। कभी वह मम्मी से किसी के बारे में पूछ लेता, कभी चुप रह जाता।

वह सोचने लगा कि जब उसके पापा ड्राइंग रूम में ठेकेदार अंकल

के साथ बात करते हैं, तो वे उसे अंदर क्यों नहीं आने देते? अगर वह चला भी जाता है, तो कभी ठेकेदार अंकल, या कभी पापा उसे "पढ़ो बेटे अपने कमरे में जाकर, या चलो बाहर खेलो बेटे।" कहकर बाहर क्यों भेज देते हैं?

एक दिन सोनू ने मम्मी से पूछ ही लिया "मम्मी, ठेकेदार अंकल जब आते हैं तो पापा उनसे अकेले में बात क्यों करते हैं? दूसरे अंकल आते हैं, तो सभी के साथ बैठकर बातें करते हैं?"

मम्मी ने बताया, "बेटे, पहले हम राजगढ़ जैसे छोटे कस्बे में थे। यह तो बड़ा शहर है, तेरे पापा असिस्टेंट इंजिनियर हैं। यहां कितना काम है बिल्डिंगों का, सड़कों का। ये काम ठेकेदार ही करवाते हैं। इसलिए ये लोग आते रहते हैं।"

सोनू मम्मी के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ। वह बोला, "लेकिन मम्मी जब वे बातें करते हैं, तो मुझे अंदर क्यों नहीं जाने देते। अंदर होता हूं, तो बाहर क्यों भगा देते हैं?"

मम्मी बोलीं "बेटा, वे बातें तेरे काम की नहीं होती हैं, इसलिए।"

सोनू पापा और ठेकेदार के काम तो समझ गया लेकिन उसके मन में पापा और ठेकेदार की बातें सुनने की इच्छा हुई। वह इस ताक में था कि कैसे उनकी बातें सुनी जाएं।

एक दिन वह स्कूल से देर से आया। अपने घर के दरवाजे पर उसे लाल स्कूटर खड़ा दिखाई दिया। वह समझ गया कि अमीरचन्द अंकल आये हैं।

उसने देखा पापा और अमीरचन्द अंकल ड्राइंग रूम में हैं और उसका दरवाजा बंद है। उसने खाना खाया और कमरे में चला गया। उसने एक तरकीब सोची। ड्राइंग रूम का दरवाजा सोनू के कमरे में खुला है। उसने अपनी कुर्सी दरवाजे से सटा दी और कुर्सी पर बैठ गया। दोनों हाथों को आंखों के पास सटाकर किवाड़ों के जोड़ में से ड्राइंग रूम में देखने लगा। उसे पापा और अमीरचन्द अंकल साफ

दिखाई दे रहे थे। अमीरचंद अंकल कह रहे थे "साहब, दो की बात... मगर आप...। देखिए कितना...।" वह साफ नहीं बोल रहे। लेकिन पापा पूरे समझ रहे थे, "नहीं अमीरचन्द, इतने से काम न चलेगा। एक और बढ़ाना पड़ेगा। तुम्हें।"

अमीरचन्द अंकल बहुत गिड़गिड़ा रहे थे, लेकिन पापा अपनी बात पर अड़े हुए थे। पापा फिर बोले, देखो भाई, इतना लालच मत करो। आगे भी...। और तभी उसने देखा कि अमीरचन्द ने अपने कोट की जेब में हाथ डाला। पलक झपकते दस–दस के नोटों की तीन गड्ड़ियां उठायी और अपने पीछे रखी अलमारी में रख लीं।

यह देखकर सोनू की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। वह सोचने लगा, इतना पैसा! पापा को क्यों दिये इतने रुपये अंकल ने? कहीं यह रिश्वत तो नहीं? तभी पापा और ठेकेदार अंकल हमेशा अकेले में...। वह कुछ समझने लगा था। तभी उसके मस्तिष्क में कुछ दिन पहले पढ़ी अखबार की वह खबर उभर आयी "एक नयी बनी स्कूल की इमारत की छत गिर जाने से आठ बच्चों की मृत्यु, दस घायल।" उसी खबर में आगे यह भी था "बिल्डिंग बनवाने वाले इंजीनियर को नौकरी से बरखास्त कर दिया गया।"

उस रात सोनू को देर तक नींद नहीं आई। जब तक नींद नहीं आई, वह यही सब सोचता रहा। उसके पापा भी बिल्डिंग बनवाते हैं। अगर ठेकेदार उनमें घटिया माल लगायेंगे तो वे भी जल्दी ही गिर जाएंगी। उसके पापा को भी नौकरी से..। उसे आशंका हुई कहीं उसके स्कूल की बिल्डिंग भी ऐसी कमजोर न हो। उसे कंपकंपी छूटने लगी।

सुबह–सुबह सोनू को उदास देखा तो मम्मी पूछ बैठी "क्या हुआ बेटा, क्या कोई बुरा सपना देखा है तूने।" वह कुछ न बोला। बस चुप रहा।

उसने देखा कि पापा उनके पास नहीं हैं। उसने मम्मी से कह ही दिया। "मम्मी, पापा ने पाप किया है। उन्होंने रिश्वत ली है।" मम्मी यह

सुनकर एक बार चौंकी "बोली बेटा, यह क्या कह रहा है? कैसी रिश्वत? किससे रिश्वत ली तेरे पापा ने?"

वह कहता गया। "मम्मी, मैंने रात को अपनी आंखों से देखा पापा को। पापा ने अमीरचन्द अंकल से तीन हजार रुपये लिये हैं। मैंने उनकी बातें भी सुनी।" मम्मी ने उसकी बातों को गंभीरता से न लेते हुए उसे समझाना चाहा "बेटा, वो तेरे पापा से अंकल ने उधर लिए होंगे सो वापस किए होंगे। तुम्हें क्या लेना–देना बड़ों की बातों से।"

रात में मम्मी ने सारी बातें बता दीं उसके पापा को। उसके पापा यह जानकर चौंके। सोचा, यह तो अच्छी बात नहीं। अभी बच्चे को यह सब जानकारियां। नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं है और वे पत्नी से कह गए "तुम्हें ध्यान रखना चाहिए। बच्चा क्या करता है, कहां रहता है?"

लेकिन तभी से सोनू अनमना सा रहने लगा। उसका किसी काम में मन न लगता। स्कूल से आकर या तो वह अपने कमरें में बंद हो जाता या एकांत में उन्हीं बातों पर सोचा करता।

सोनू को लगातार उदास देख मम्मी–पापा उसे बहलाने की कोशिश करते लेकिन वह उदास ही रहता। वे सोचते इकलौती संतान है। अगर कहीं इसके दिमाग पर बुरा असर पड़ गया तो? वे उसे पिक्चर ले जाने के लिए कहते या घूमने के लिए तो उसका एक ही जवाब होता "मैं कहीं–नहीं जाऊंगा।"

उस दिन रविवार था। सोनू लान में बैठा गणित के सवाल हल कर रहा था। मम्मी शायद स्वेटर बुन रही थीं। पापा मोढ़े पर बैठे अखबार देख रहे थे। एक स्कूटर दरवाजे पर आकर रुका। सोनू ने देखा अमीरचन्द अंकल हैं। उनके हाथ में इस बार भी एक डिब्बा है। जिस पर किसी मिठाई की दुकान का लेबल लगा है। अमीरचन्द ने अंदर घुसते ही डिब्बा सोनू के हाथ में थमा दिया। सोनू ने झटके से डिब्बे का बंधा फीता तोड़ा, गेट से बाहर गया और सड़क के पास जाकर डिब्बे को हवा में उछाल दिया।

यह देखकर अमीरचन्द हक्का—बक्का रह गया। वह कुछ बोले इससे पहले ही सोनू तिरछी निगाहें करते हुए गुस्से में बोला "अंकल, आज के बाद हमारे घर न आइयेगा। आपने पापा को खराब कर दिया है।" और सोनू अपनी जगह आ फिर अपने काम में लग गया।

अमीरचन्द की स्थिति अजीब हो गयी। सोनू के पापा—मम्मी ने एक बार देखा और अपने काम में लग गये। शायद उन्होंने सोचा था कि यह अमीरचन्द इस समय जाए तो ही अच्छा है।

अमीरचन्द नजरें झुकाए गेट से बाहर आया। सामने नजर पड़ी तो देखा तीन—चार कुत्ते उस मिठाई पर टूट पड़े हैं।
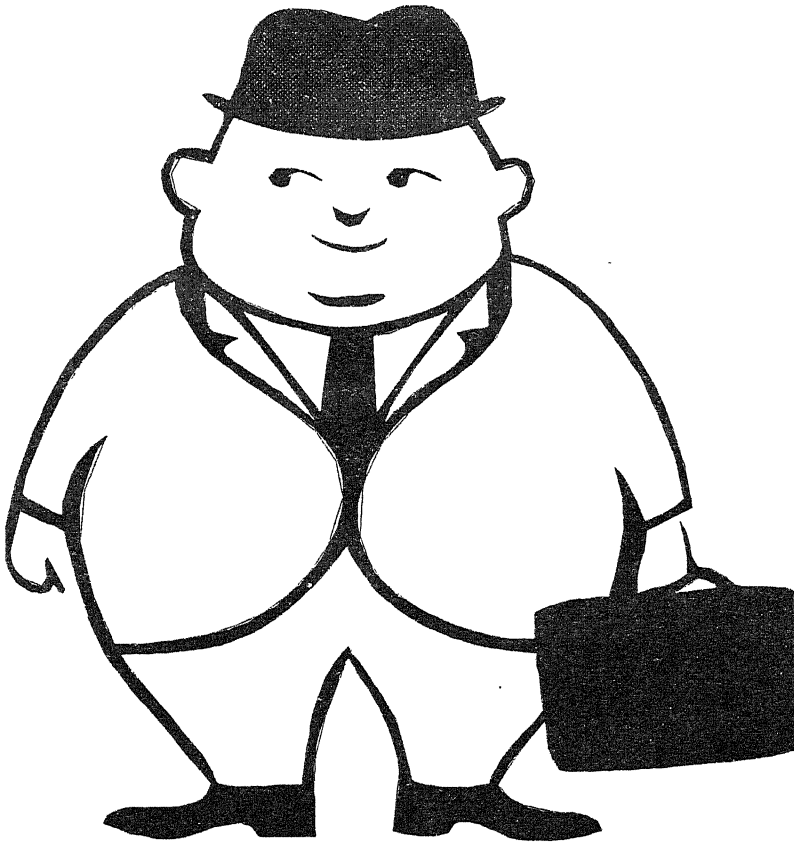
सुन्दर लड़की

विष्णु प्रभाकर

समुद्र के किनारे एक गांव था। उसमें एक कलाकार रहता था। वह दिनभर समुद्र की लहरों से खेलता रहता, जाल डालता और सीपियां बटोरता। रंग—बिरंगी कौड़ियां, नाना रूप के सुन्दर—सुन्दर शंख, चित्र—विचित्र पत्थर, न जाने क्या—क्या समुद्र जाल में भर देता। उनसे वह तरह—तरह के खिलौने, तरह—तरह की मालाएं तैयार करता और पास के बड़े नगर में बेच आता।

उसका एक बेटा था, नाम था उसका हर्ष। उम्र अभी ग्यारह की भी नहीं थी, पर समुद्र की लहरों में ऐसे घुस जाता, जैसे तालाब में बत्तख।

एक बार ऐसा हुआ कि कलाकार के एक रिश्तेदार का मित्र कुछ दिन के लिए वहां छुट्टी मनाने आया। उसके साथ उसकी बेटी मंजरी भी थी। होगी कोई नौ—दस वर्ष की, पर थी बहुत सुन्दर, बिलकुल गुड़िया जैसी।

हर्ष बड़े गर्व के साथ उसका हाथ पकड़कर उसे लहरों के पास ले जाता। एक दिन मंजरी ने चिल्लाकर कहा, "तुम्हें डर नहीं लगता?"

हर्ष ने जवाब दिया, "डर क्यों लगेगा, लहरें तो हमारे साथ खेलने आती हैं।"

और तभी एक बहुत बड़ी लहर दौड़ती हुई हर्ष की ओर आयी,

जैसे उसे निगल जाएगी। मंजरी चीख उठी, पर हर्ष तो उछलकर लहर पर सवार हो गया और किनारे पर आ गया।

मंजरी डरती थी, पर मन ही मन यह भी चाहती थी कि वह भी समुद्र की लहरों पर तैर सके। उसे यह तब और भी जरूरी लगता था, जब वह वहां की दूसरी लड़कियों को ऐसा करते देखती, विशेषकर कनक को, जो हर्ष के हाथ में हाथ डालकर तूफानी लहरों पर दूर निकल जाती।

वह बेचारी थी बड़ी गरीब। पिता एक दिन नाव लेकर गए, तो लौटे ही नहीं। मां मछलियां पकड़कर किसी तरह दो बच्चों को पालती थी। कनक छोटे–छोटे शंखों की मालाएं बनाकर बेचती। मंजरी को वह अधनंगी काली लड़की जरा भी नहीं भाती। हर्ष के साथ उसकी दोस्ती तो उसे कतई पंसद नहीं थी।

एक दिन हर्ष ने देखा कि कई दिन से उसके पिता एक सुन्दर–सा खिलौना बनाने में लगे हैं। वह एक पक्षी था, जो रंग–बिरंगी सीपियों से बना था। वह देर तक देखता रहा, फिर पूछा, "बाबा, यह किसके लिए बनाया है?"

कलाकार ने उत्तर दिया, "यह सबसे सुन्दर लड़की के लिए है। मंजरी सुन्दर है न? दो दिन बाद उसका जन्मदिन है। उस दिन तुम इस पक्षी को उसे भेंट में देना।"

हर्ष की खुशी का पार नहीं था। बोला, "हां–हां, बाबा। मैं यह पक्षी मंजरी को दूंगा।"

और वह दौड़कर मंजरी के पास गया। उसे समुद्र के किनारे ले गया और बातें करने लगा। फिर बोला, "दो दिन बाद तुम्हारा जन्म–दिन है।"

"हां, पर तुम्हें किसने बताया?"

"बाबा ने। हां, उस दिन तुम क्या करोगी?"

"सबेरे उठकर नहा–धोकर सबको प्रणाम करूंगी। घर पर तो

सहेलियों को दावत देती हूं। वे नाचती–गाती हैं।"

और इसी तरह बातें करते–करते वे न जाने कब उठे और दूर तक समुद्र में चले गए। सामने एक छोटी–सी चट्टान थी। हर्ष ने कहा, "आओ, छोटी चट्टान तक चलें।"

मंजरी काफी निडर हो चली थी। बोली, "चलो।" तभी हर्ष ने देखा–कनक बड़ी चट्टान पर बैठी है। कनक ने चिल्लाकर कहा, "हर्ष, यहां आ जाओ।"

हर्ष ने जवाब दिया, "मंजरी वहां नहीं आ सकती। तुम्हीं इधर आ जाओ।"

अब मंजरी ने भी कनक को देखा। उसे ईर्ष्या हुई। "वह वहां क्यों नहीं जा सकती? वह क्या उससे कमजोर है..।"

वह यह सोच ही रही थी कि उसे एक बहुत सुन्दर शंख दिखाई दिया। मंजरी अनजाने ही उस ओर बढ़ी। तभी एक बड़ी लहर ने उसके पैर उखाड़ दिए और वह बड़ी चट्टान की दिशा में लुढ़क गयी। उसके मुंह में खारा पानी भर गया। उसे होश नहीं रहा।

यह सब आनन–फानन में हो गया। हर्ष ने देखा और चिल्लाता हुआ वह उधर बढ़ा, पर तभी एक और लहर आयी और उसने उसे मंजरी से दूर कर दिया। अब निश्चित था कि मंजरी बड़ी चट्टान से टकरा जाएगी, परन्तु उसी क्षण कनक उस क्रुद्ध लहर और मंजरी के बीच आ कूदी और उसे हाथों में थाम लिया।

दूसरे ही क्षण तीनों छोटी चट्टान पर थे। कुछ देर हर्ष और कनक ने मिलकर मंजरी को लिटाया, छाती मली। पानी बाहर निकल गया। उसने आंखें खोलकर देखा, उसे जरा भी चोट नहीं लगी थी। पर वह बार–बार कनक को देख रही थी।

अपने जन्मदिन की पार्टी के अवसर पर वह बिल्कुल ठीक थी। उसने सब बच्चों को दावत पर बुलाया। सभी उसके लिए कुछ न कुछ लेकर आए थे। सबसे अंत में कलाकार की बारी आयी। उसने कहा,

"मैंने सबसे सुन्दर लड़की के लिए सबसे सुन्दर खिलौना बनाया है। आप जानते हैं, वह लड़की कौन है? वह है मंजरी।"

सबने खुशी से तालियां बजायीं। हर्ष अपनी जगह से उठा और बड़े प्यार से वह सुन्दर खिलौना उसने मंजरी के हाथों में थमा दिया। मंजरी बार–बार उस खिलौने को देखती और खुश होती।

तभी क्या हुआ, मंजरी अपनी जगह से उठी। उसके हाथ में वही सुन्दर पक्षी था। वह धीरे–धीरे वहां आयी जहां कनक बैठी थी। उसने बड़े स्नेह–भरे स्वर में उससे कहा, "यह पक्षी तुम्हारा है। सबसे सुन्दर लड़की तुम्हीं हो।" और एक क्षण तक सभी अचरज से दोनों को देखते रहे। फिर जब समझे, तो सभी ने मंजरी की खूब प्रशंसा की। कनक अपनी प्यारी–प्यारी आंखों से बस मंजरी को देखे जा रही थी। और दूर समुद्र में लहरें चिल्ला–चिल्लाकर उन्हें बधाई दे रही थीं।
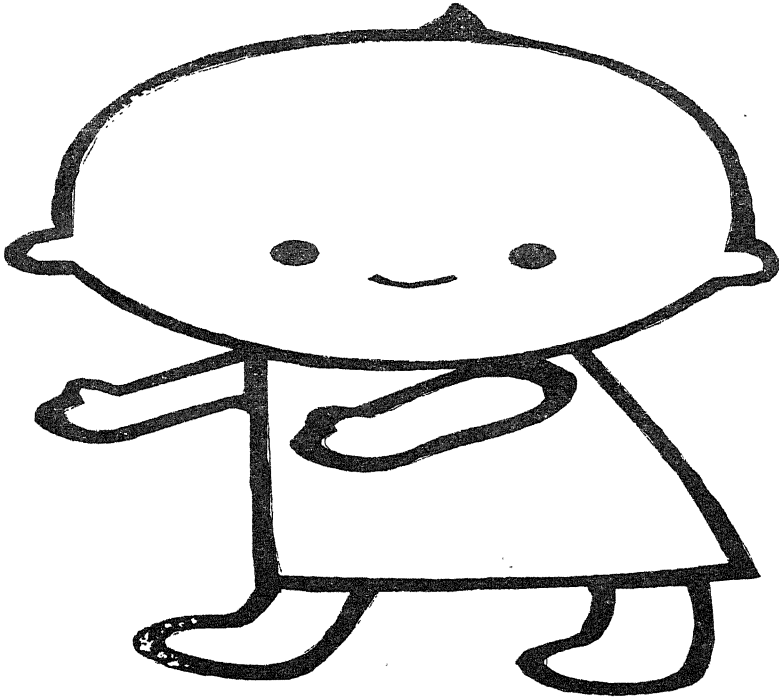
चौथे कुंड का पानी

अनंत कुशवाहा

"भागो, भागो! टांगिया आ रहा है। जान बचाओ। भेड़–बकरियों, मुर्गे–मुर्गियों, जिनको बचा सको, साथ ले सको, लेकर भागो!" कासा गांव में शोर मच गया।

स्लेटी चट्टानों की पर्तों से बने बारह घरों का गांव कासा पहाड़ी पर बसा था। घरों में सामान के नाम पर था ही क्या? वहां के निवासी, बिस्सा आदिवासी अपने आप पर जितना बोझ लाद लें, बस उतना ही। भयभीत औरतों ने बच्चों को संभाला और पुरुषों ने भेड़–बकरियों के रेवड़ को। अफरा–तफरी मच गयी थी। एक दिन लगातार भागेंगे, तब कहीं जाकर टांगिया के गिरोह से बच सकेंगे। चार कोस ऊपर थुम्बा लोगों के करीब पहुंच जाएंगे, तब डर नहीं। टांगिया वहां तक आने की हिम्मत नहीं करता। शांति होने पर लौटना तो यहीं पड़ता है। कासा की जमीन से मोह तो छूट नहीं सकता।

टांगिया पूरा शैतान है! छह–आठ माह में धावा मारता है। खूंख्वार दहकती आंखें, घनी दाढ़ी और बकरे की खाल के जैकेट में वह बहुत क्रूर दिखायी देता है। दया–माया तो जानता ही नहीं। कासा गांव पर जब भी धावा मारा है, स्लेटी दीवारों को ढहा गया है, गांव के चारों कुंडों को खाली कर गया है। पहले दो–तीन बार तो उसकी बंदूक के निशाने के लिए कासा गांव में कोई मिला भी, पर अब तो शोर मचते ही गांव

खाली हो जाता है। टांगिया अपना गुस्सा खाली पड़े घरों पर उतारता है या वर्षा के पानी से भरे चार कुंडों पर। पहाड़ी पर अन्यत्र कहीं पानी नहीं मिलता। वर्षा का पानी स्लेटी चट्टानों वाली पहाड़ियों से तेजी से बहकर दूर मैदानों की ओर चला जाता है। वहां तक पहुंचने में उसे चार दिन लगते हैं।

थके—मांदे, लालची, गुस्से से हांफते, शिकारी कुत्तों की तरह लार टपकाते टांगिया के गिरोह के लोग कासा गांव पहुंचते, तो वह सूना मिलता था। लंबे—चौड़े डील—डौल वाला टांगिया गालियां देता हुआ स्लेट पत्थरों से बनी दीवारों पर कसकर लात मारता और वे भरभरा कर गिर जाती थीं। वह गुस्से में बिफरता गांव में घूमता और घंटे—दो घंटे बाद घाटी में उतर जाता था।

बिस्सा आदिवासी लौटकर अपने घरों को ठीक—ठाक करते। उनके घरों की छतों से धुंए की लकीरें फिर उठने लगतीं थी और रोटी की सुगंध चारों तरफ फैलने लगती थीं। कुंड़ों में बचा—खुचा पानी उनके काम आता। भेड़—बकरियों को चराते हुए अपने फटे—हाल जीवन को फिर जीने लगते थे।

इस बार फिर शोर मचा, "टांगिया आ रहा है। उसे गांव तक पहुंचने में दो—तीन घंटे लगेंगे"। देर से सूचना मिली थी, पर भागना तो था ही। एक तेज—तर्रार युवक मुखिया से बोला, "मुखियाजी, जहर नहीं है? पानी के चारों कुंडों में धोल दें। वे शैतान आकर पानी तो पीएंगे ही। बस पीकर यहीं ढ़ेर हो जाएंगे।"

"इतना जहर कहां है रे! एक कुंड तो फिर भी जहरीला कर सकते हैं, पर उससे क्या फायदा? अगर टांगिया को हमारी गुस्ताखी का पता चल गया, तो यह गांव फिर कभी नहीं बसेगा।"

"आप दीजिए तो।" युवक ने कहा तो मुखिया ने जहर की पोटली उसे दे दी। तभी दूर कहीं बंदूक चलने की आवाज सुनाई दी। कई लोग दौड़ते हुए आये।

"भागो मुखिया जी, अब समय नहीं है, रेवड़ तो काफी दूर जा चुके हैं। दो घंटे में शैतान आ जाएंगे। अब बिल्कुल समय नहीं है।"

भागते पैरों ने गांव पीछे छोड़ दिया। केवल एक आठ साल का लड़का टीरू मुर्गियों के दड़बे के पीछे छिपा चुपचाप उन्हें जाते देखता रहा। टीरू के मां-बाप नहीं थे। वह दूसरों की मुर्गियों की देखभाल करता था। उसका मालिक अपने परिवार और रेवड़ को लेकर भाग चुका था। मुर्गियों का क्या करे, यह उसकी समझ में नहीं आया था। उसने चीखते हुए टीरू से कहा था कि दड़बे में आग लगा दे। वे सब राख हो जाएंगी और फिर वह भी भाग जाए! टीरू नहीं भागा। बिस्सा लोगों के भाग जाने के बाद उसने मुर्गियों का दड़बा खोलकर उन्हें निकल जाने दिया।

वह दड़बे के पीछे ही छिपा था, जब टांगिया के गिरोह के एक आदमी ने उसे पिल्ले की तरह गरदन से उठा कर टांगिया के सामने पटक दिया।

"बस यह चूजा मिला है सरदार! गांव पूरी तरह खाली है। कहता है, इसकी मुर्गियां दड़बे से निकल गयी थीं, उन्हें पकड़ने के लिए रुका था।"

गिरोह के कई बदमाश निकट आ गये।

"इसका निशाना लगाओगे सरकार, बंदूक भर कर दूं?"

"तू ठेर, पहले प्यास के मारे मरा जा रहा हूं। पानी तो पी लें।"

टीरू चिल्लाया, "पानी मत पीना सरकार। उसमें जहर मिला है!"

टांगिया के हाथ से कटोरा छूट गया, "किसमें जहर मिला है रे?"

"तीन कुंडों के पानी में। एक में नही है।"

"तुझे कैसे पता चला?"

"मेरे सामने ही मिलाया था। बस एक कुंड में नहीं मिलाया। आप लोगों के जाने के बाद गांव वाले वापस आते, तो उसी कुंड से काम चलाते।"

टांगिया माथा सिकोड़े कुछ देर सोचता रहा, "बित्ता-भर का यह छोरा झूठ तो क्या बोलेगा!"

"बता कौन से कुंड का पानी ठीक है?"

"मुझे जान से तो नहीं मारोगे न?"

"अरे नहीं बावले, तूने तो हमें बचाया है।"

टीरू आगे–आगे चला, पीछे–पीछे टांगिया और उसके गिरोह के लोग थे।

"इस छोटे कुंड का पानी ठीक है। बाकी तीनों बड़े कुंड़ों में जहर घुला है।"

प्यास से बेचैन टांगिया और उसके साथियों ने उसी कुंड के पानी से अपनी प्यास बुझाई। टांगिया की लाल–लाल आंखें टीरू की ओर घूमी। वह ठठा कर हंसा।

"तूने अपना काम कर दिया न? अब तेरा क्या काम! बहुत समय से इस कासा गांव में मेरी बंदूक नहीं गूंजी है। आज निशाना मिला है।"

"आपने कहा था, मुझे जान से नहीं मारेंगे।"

"अरे कहा था जब कहा था, लेकिन इस गांव के लोग हर बार जान बचाकर भाग जाते हैं और मेरे हाथ कुछ नहीं लगता... सहला, चल रे मेरी बंदूक भर।"

बारूदी बंदूक टांगिया के हाथों में आ गयी, तो निशाना लेने के लिए वह घाटी की ओर चार कदम पीछे हटा। उसके कदम डगमगा रहे थे। आंखें धुंधलाने लगी थीं।

टीरू के गालों पर आंसू बहने लगे। उसने सुबुकते हुए कहा था, "जहर तीनों बड़े कुंडों में नहीं, चौथे कुंड में ही था, जिससे आप सबने पानी पिया है। सिर्फ उसी में जहर मिलाते मैंने देखा था। पहले मैंने झूठ कहा था।"

उसकी पूरी बात सुनने तक का समय टांगिया के पास नहीं था। वह बंदूक लिये–लिये पीछे की घाटी में लुढ़कता ही चला गया। उसके सभी साथी स्लेटी चट्टान पर गिर–गिरकर छटपटा रहे थे।

टीरू के गालों पर ढुलके आंसू धीरे–धीरे सूखने लगे थे।

चाचा का कुर्ता

मोहम्मद अरशद खान

"कंजूस चाचा, कुर्ता पुराना हो गया!" लड़के दीनदयाल को देखकर चिढ़ाते हुए बोले।

दीनदयाल बिदक उठे, "ठहरो बदमाशों, अभी एक–एक की खबर लेता हूं! आज तुम सबको नानी याद न दिला दी, तो मेरा नाम भी दीनदयाल नहीं!" कहता हुआ दीनदयाल लड़कों के पीछे लपका।

लड़के तेजी से इधर–उधर भागने लगे। साथ ही वे उसे चिढ़ाते भी जा रहे थे। दीनदयाल क्रोध में भरा उनके पीछे–पीछे दौड़ रहा था।

दीनदयाल गांव के लड़कों में "कंजूस चाचा" के नाम से प्रसिद्ध था। उसके तन पर एक कुर्ते के अलावा किसी ने दूसरा कोई कपड़ा नहीं देखा था। वह कई साल से उसी कुर्ते को पहनता आ रहा था। गन्दा हो जाने पर धोता और सूखने पर फिर उसी को पहन लेता।

वह गांव में अकेला ही रहता था। उसका एक ही लड़का था, जो शहर में पढ़ता था। दीनदयाल की पत्नी का देहांत हो चुका था। उसने मां की तरह लड़के को प्यार दिया, पढ़ाया, लिखाया। जब लड़का गांव के स्कूल में आठवीं पास कर चुका, तो उसने उसे शहर के एक स्कूल में दाखिल करवा दिया।

अब वह अकेला ही रहकर गांव में अपनी थोड़ी सी जमीन पर खेती करता था। उससे जो समय बचता, उसमें वह मेहनत–मजदूरी

कर लिया करता। वह हर समय पैसे कमाने की फिराक में ही रहता, लेकिन पैसे खर्च करने के मामले में वह बहुत कंजूस था। उसने कई सालों से नए कपड़े नहीं सिलाए थे। वह पाई—पाई करके पैसे बचाता रहता।

इसी कारण गांव के लोग उसे "कंजूस" कहने लगे थे। गांव के शरारती लड़के तो उसे "कंजूस चाचा" कहकर चिढ़ाने से भी न चूकते।

लड़कों के मुंह से "कंजूस चाचा" शब्द सुनकर दीनदयाल आपे से बाहर हो जाता। वह उन्हें घंटों कोसता और बड़बड़ाता रहता। उसे चिढ़ता देखकर लड़कों को बहुत मजा आता।

एक दिन की बात है। गांव के कुछ लड़के दीनदयाल के घर के सामने से गुजर रहे थे कि तभी एक लड़के की नज़र आंगन में बंधी अलगनी की ओर गई, उस पर दीनदयाल का कुर्ता सूख रहा था। वह फुसफुसाता हुआ बोला, "अरे! गिरधर, गोपाल, ननकू! वह देखो, कंजूस चाचा का कुर्ता!"

सबकी बांछें खिल उठीं।

ननकू ने चुपके से अंदर झांका और फुसफुसाया, "अन्दर कोई भी नहीं है...।"

गिरधर ने सबको शान्त रहने का इशारा किया। फिर अपनी चप्पलें वहीं उतारकर बिल्ली की चाल चलता हुआ आंगन में जा पहुंचा। उसने चारों ओर चौकन्नी दृष्टि डाली और कुर्ते को फौरन अलगनी से उतार कर अपनी कमीज में छिपा लिया। फिर दबे पांव वापस आ गया।

सारे लड़के फौरन वहां से खिसक लिए और काफी दूर जाकर रुके।

गिरधर हांफता हुआ बोला, "भई वाह, यह तो कमाल हो गया। जब कंजूस चाचा अपना कुर्ता न पाकर बड़बड़ाएंगे तो बड़ा मज़ा आएगा।"

"सचमुच...।" सभी ने उसकी हां में हां मिलाई।

"पर हम इस कुर्ते का क्या करें?" ननकू ने पूछा "इसे तालाब में फेंक देते हैं?" गणेश ने सुझाया।

"नहीं", गिरधर बोला, "इसे मैं अपने खेत में, बिजूके पर लटकाऊंगा।"

गिरधर के इतना कहते ही सारे लड़के ठठाकर हंस पड़े।

गिरधर ने कुर्ता ले जाकर अपने घर में छिपा दिया।

दीनदयाल किसी काम से पास ही कहीं गया हुआ था। जब वह वापस लौटा तो अपना कुर्ता अलगनी पर न पाकर परेशान हो उठा। दरवाजे से गुजरने वाले हर आदमी को रोक कर दीनदयाल ने अपने कुर्ते के बारे में पूछा लेकिन लोग उसकी बात सुनकर "नहीं" कहते और मन ही मन मुस्कराते हुए चले जाते।

दीनदयाल सारे दिन दरवाजे पर बैठा बड़बड़ाता रहा और कुर्ता चोर को कोसता रहा। उस दिन उसने खाना तक नही बनाया। बस, दरवाजे की चौखट पर बैठा बड़बड़ाता रहा। लड़के उसे बड़बड़ाता देखकर खूब मज़ा लेते रहे।

शाम घिरने लगी थी। अन्धकार गाढ़ा होने लगा था। घरों में दीपक जल उठे थे। लेकिन दीनदयाल के घर में अंधेरा छाया हुआ था। अब उसके बकने–बड़बड़ाने की आवाजें भी आनी बंद हो गई थीं।

यह देख लड़कों को बहुत आश्चर्य हुआ। सभी उसके घर के पास जा पहुंचे। एक ने चुपके से अंदर झांका, आंगन में कोई नहीं था। शायद दीनदयाल कमरे में था। अंदर से कुछ अस्पष्ट सी आवाजें आ रही थीं, जैसे कोई सिसक रहा हो।

लड़कों ने दरवाजे से अपने कान सटा दिए। धीरे–धीरे दीनदयाल की सिसकियां स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगीं। वह रो रहा था, "हाय, अब मैं अपने लड़के की इस महीने की फीस का इंतजाम कैसे करूंगा! मैंने क्या–क्या सोचा था, उसे बड़ा आदमी बनाऊंगा, उसे डॉक्टरी पढ़ाऊंगा। पर अब तो लगता है...।" कहते–कहते उसका गला भर

गया।

थोड़ी देर बाद वह फिर सिसकने लगा, "अब नया कुर्ता सिलाने में सौ–पचास लग जाएंगे। दुनिया मुझे कंजूस कहती रहती, मुझे सहन था। पर मेरे बेटे की पढ़ाई पर आंच न आती...। अब जाने कैसे इंतजाम हो पाएगा इतने पैसों का...!" कहते–कहते वह फफक पड़ा।

सारे लड़के हतप्रभ से खड़े थे। उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि दीनदयाल चाचा की कंजूसी के पीछे यह कारण हो सकता है।

अचानक गिरधर तेजी से घर की ओर भाग चला। उसकी आंखों से लगातार आंसू टपकते जा रहे थे।

थोड़ी देर बाद जब वह वापस आया तो उसके हाथों में दीनदयाल चाचा का कुर्ता था। वह अंधेरे में दबे पांव उनके आंगन में गया और कुर्ता अलगनी पर पहले की तरह लटका दिया और फिर चुपचाप बाहर आ गया।

हरे मानव

हरीश गोयल

वैज्ञानिक होगबेन प्रयोगशाला में अपने प्रयोग का नतीजा जानने हेतु बैठे हुए थे। अचानक वे खुशी से चिल्ला उठे, "यूरेका"। जाहिर था कि प्रयोग सफल हो चुका था। उन्होंने असंभव को संभव कर दिखाया था। असंभव शब्द केवल दुनिया की नज़र में था, लेकिन उन्हें पूरी आशा थी कि वे एक दिन अवश्य सफल होंगे। आखिर उन्होंने हैरतअंगेज कारनामा कर दिखाया। प्रयोग वास्तव में अजूबा था। डॉ. होगबेन मानव को सशरीर बिना किसी वाहन के एक स्थान से दूसरे पर पहुंचा देना चाहते थे। चाहे वह स्थान कितनी ही दूर क्यों नहीं हो। चाहे वह दूरी एक ग्रह से दूसरे ग्रह की हो। एक सौर परिवार से दूसरे सौर परिवार की हो या फिर दुनिया का कोई स्थान हो। मिसाल के तौर पर भारत से अमेरिका या अमेरिका से भारत हो। सिर्फ पल भर में, ठीक दूरदर्शन के चित्र की भांति।

आप सोचते होंगे केवल चित्र ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर पल भर में जा सकता है, आदमी नहीं। यह तो असंभव है।

लेकिन डॉ. होगबेन ने इसे संभव कर दिखाया। डॉ. होगबेन जानते थे कि महान् वैज्ञानिक आइन्साटाइन ने 'द्रव्यमान' तथा 'ऊर्जा' में सम्बन्ध स्थापित किया था। 'द्रव्यमान' को 'ऊर्जा' में बदला जा सकता था लेकिन डॉ. होगबेन सोचते थे क्या ऐसा नहीं हो सकता जब

'द्रव्यमान' और 'ऊर्जा' के विभेद को मिटाया जा सकेगा। डॉ. हेगबेन इस सिद्धान्त की खोज में लग गए और ठीक चालीस वर्षों की कठोर साधना के पश्चात वे इस खोज में सफल हो गए। वह अपना अधिकांश समय प्रयोगशाला में ही गुजारते। डॉ. होगबेन प्रयोगों के द्वारा ऊर्जा को द्रव्यमान में बदलने में सफल हो चुके थे। फिर उन्होंने एक जटिल यंत्र का निर्माण किया। इसकी तकनीकी भी जटिल थी।

अब डॉ. होगबेन इस प्रयोग को जानवरों पर आजमाना चाहते थे। उन्होंने सर्वप्रथम सफेद चूहों को तरंगों में परिवर्तित किया तथा उन्हें चन्द्रमा पर भेजा। वहां पहुंच कर सफेद चूहे पुनः अपने शरीर में आ गए। इससे पहले उन्होंने अपने प्रिय शिष्य अभ्र को सूचना भेज दी थी। वह चंद्रमा पर पहले से ही मौजूद था। वह नियत स्थान पर पहुंच गया। उसने एक कांचनुमा बॉक्स वहां रख दिया। उसमें एक विचित्र ग्राही उपकरण सैट था। श्वेत चूहे तरंगों के रूप में सीधे उस बॉक्स में आ गए और पुनः सशरीर श्वेत चूहों में बदल गए। वे सभी श्वेत चूहे जीवित थे। अभ्र पृथ्वी से पल भर में चंद्रमा पर सशरीर आए सफेद चूहों को देखकर खुशी से चिल्ला उठे, 'हुर्रे!...' डॉ. होगबेन की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वे टेलीविजन के पर्दे पर इस दृश्य को देखकर झूम उठे। उनका प्रयोग सफल हो चुका था।

अब उन्होंने यह प्रयोग सफेद खरगोश पर आजमाया। उन्होंने खरगोश को तरंगों में बदल कर मंगल ग्रह पर भेजा। वहां नीहारिका मौजूद थी। उसने डॉ. होगबेन के विशिष्ट ग्राही उपकरण द्वारा खरगोश को पुनः सशरीर प्राप्त किया। नीहारिका की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने श्वेत खरगोश को हाथ में लिया तथा मंगल की घास को खिलाया जिसे खरगोश ने बड़े चाव से खाया।

डॉ. होगबेन यह देखना चाहते थे कि दूसरे स्थान पर पहुंचे चूहों अथवा खरगोश की बुद्धि या शरीर के भीतरी किसी हिस्से में तो परिवर्तन नहीं होते लेकिन ऐसा नहीं हुआ। यही प्रयोग उन्होंने चिंपाजी

पर भी किया।

अब डॉ. होगबेन ने इस प्रयोग को मानव पर आजमाने की सोची। डॉ. होगबेन के सभी शिष्य इसके लिए तैयार थे। इससे स्पष्ट था कि डॉ. होगबेन के सभी शिष्य साहसी थे। वे मौत की परवाह नहीं करते थे। उन सभी में 'एडवेंचर' की भावना थी। डॉ. होगबेन में उनकी अटूट निष्ठा थी।

डॉ. होगबेन का मन नहीं माना कि अपने प्रयोग की खातिर अपने ही शिष्यों को मौत के मुंह में धकेल दे। पर उनके शिष्य जिद करने लगे। अंत में अपनी महत्वाकांक्षा तथा शिष्यों की जिद के आगे उन्हें झुकना पड़ा।

उन्होंने अपना यह प्रयोग एक शिष्य प्रशान्त पर आजमाया। उन्होंने उसे 'टेलीपोर्ट' यंत्र में खड़ा किया। डॉ. होगबेन तथा उनके शिष्य प्रशान्त को मौत के मुंह में धकेलते हुए एकबारगी कांप उठे। 'टेलीपोर्ट' यंत्र की लालबत्ती टिमटिमा रही थी। सभी शिष्य सांस थामे खड़े हुए थे। उनके दिल की धड़कनें तेज हो गई थीं। पता नहीं मानव पर यह प्रयोग सफल होगा या नहीं?

अचानक हरी बत्ती जल उठी। फायर ब्रिगेड की तरह एक तेज सीटी बजी। धीरे–धीरे वह मंद पड़ती गई। प्रशान्त को मंगल ग्रह पर पहुंचा दिया गया। पहले 'टेलीपोर्ट' यंत्र से उसका शरीर तरंगों में परिवर्तित हुआ। मंगल ग्रह पहुंच कर ये तरंगे पुनः शरीर में बदल गई। वहां उसे दिव्या ने ग्राही यंत्र से बाहर निकाला। डॉ. होगबेन तथा उनके सभी शिष्य खुशी से झूम उठे। फिर तो उनके सभी शिष्य सशरीर एक स्थान से दूसरे स्थान जाने लगे। यदि डॉ. होगबेन के शिष्यों की इच्छा अमरीका जाने की होती तो वे पल भर में ही भारत से अमरीका अपने टेलीपोर्ट यंत्र द्वारा पहुंच जाते और यदि उनकी इच्छा किसी अज्ञात द्वीप पर जाने की होती तो वे पलक झपकते ही वहां पहुंच जाते।

एक बार डॉ. होगबेन अपने चारों शिष्यों सहित टेलीपोर्ट यंत्र द्वारा

पल भर में अफ्रीका के घने जंगलों में पहुंच गए। अचानक वे सभी नरभक्षियों से घिर गए। उन्होंने डॉ. होगबेन तथा उनके शिष्यों को बंदी बना लिया तथा वे उन्हें देवताओं की बलि चढ़ाने के लिए ले गए। वहां से बच निकलने का कोई मौका नहीं था। ठीक बलि के वक्त उन्होंने टेलीपोर्ट यंत्र का प्रयोग किया और वे वहां से सुरक्षित बच निकले और भारत आ गए। नरभक्षी हैरत में पड़ गए कि वे सभी कहां गायब हो गए।

अब डॉ. होगबेन अपनी खोज को विश्व समुदाय के समक्ष रखने की सोचने लगे।

लेकिन इससे पूर्व ही एक 'अंतरिक्ष लुटेरे' ड्रेको की नज़र उन पर पड़ गई। उसने मौका देखकर डॉ. होगबेन का यंत्र तथा कागजात चुरा लिए तथा क्षुद्रग्रहों में छिप गया।

अब डॉ. होगबेन के शिष्यों ने अंतरिक्ष लुटेरे ड्रेको का पीछा किया। वे अंतरिक्ष यान 'पैगासस' में सैर कर रहे थे। अब तक अभ्र, नीहारिका, प्रशान्त तथा दिव्या चारों घनिष्ठ साथी बन चुके थे।

चारों साथियों ने सोचा भी नहीं था कि किसी अंतरिक्ष लुटेरे की कुदृष्टि उन पर पड़ गई है तथा वह बराबर नज़र रखे हुए हैं। उन्हें डर था तो इस बात का कि कहीं अंतरिक्ष लुटेरा ड्रेको टेलीपोर्ट यंत्र चलाना नहीं सीख जाए, नहीं तो वह कभी हाथ नहीं आएगा। उन्हें उस यंत्र को चलाने में कामयाब होने से पहले ही प्राप्त करना होगा।

अभ्र, नीहारिका, प्रशान्त तथा दिव्या चारों साथी अंतरिक्ष में बढ़ते हुए 'क्षुद्रपट्टिका' के बीच आ गए थे। यह पट्टिका 'मंगल' तथा 'बृहस्पति' ग्रहों के बीच थी।

'क्षुद्रग्रह–पट्टिका में चारों साथियों को बौने–ग्रहों (क्षुद्र ग्रहों) के कई समूह दिखाई पड़े। कुछ बौने ग्रहों में कार्बन का बाहुल्य था तो कुछ में सिलिकेट का। अन्य में लौह तथा निकल की अधिक मात्रा थी।

यह भी हो सकता है कि अंतरिक्ष लुटेरा ड्रेको इन्हीं बौने ग्रहों में छिपा हो। यदि वह इतने छोटे–छोटे पिण्डों में छिप गया तो उसे तलाश

करना और कठिन हो जाएगा।

अभ्र तथा उसके साथी अंतरिक्ष यान में निरन्तर क्षुद्र ग्रहों के बीच होते हुए गुजर रहे थे। शीघ्र ही उन्हें क्षुद्रग्रह 'हिडाल्गो' अंतरिक्ष यान की दृश्य पट्टिका पर दिखाई पड़ा।

'हिडाल्गो' एक ऐसा बौना ग्रह है जो बृहस्पति की कक्षा को पार करता हुआ शनि की कक्षा के समीप पहुंच कर लौटता है। इसकी कक्षा समतल के साथ काफी झुकी हुई है। अभ्र ने सोचा क्या दुर्दान्त ड्रेको यहां छिपा होगा। लेकिन उन्हें तो उसके क्षुद्रग्रहों के 'ट्रोजन' समूह में छिपने के सुराग हाथ में लगे थे। अभी तक उनका यान 'क्षुद्र पट्टिका' के भीतरी क्षेत्र से गुजर रहा था। शीघ्र ही अंतरिक्ष यान 'पैगासस' ने इसे पार किया। अब उनका यान क्षुद्र पट्टिका ने इसे पार किया। अब उनका यान क्षुद्रपट्टिका के बाहरी क्षेत्र में आ गया था। यह क्षेत्र क्षुद्रगहों के करीब–करीब खाली था। उन्होंने इसे भी पार किया।

अभ्र तथा उसके साथी जानते थे कि ड्रेको 'सशरीर' टेलीपोर्ट यंत्र के द्वारा पल भर में किसी भी स्थान पर पहुंच सकता है। लोगों को लगेगा कि वह अदृश्य हो चुका है और एक अदृश्य व्यक्ति को तलाशना या उसे पकड़ना अत्यन्त कठिन है। वह दूसरे स्थान पर पहुंच कर कहर बरपा सकता है। उसका इरादा पृथ्वी पर शासन करने का भी हो सकता है। वह चाहे तो पृथ्वी पर विपत्ति ला सकता है। मसलन वह परमाणु शस्त्रागारों में तरंगों के माध्यम से पहुंच कर उन्हें किसी भी देश पर छोड़ सकता है। 'कृत्रिम उपग्रहों' को गिरा सकता है। पृथ्वी पर बेशुमार धन बटोर सकता है। अभ्र तथा उसके साथी जानते थे कि अंतरिक्ष लुटेरे ड्रेको के इरादे नेक नहीं थे।

अंतरिक्ष यान में सैर करते हुए उन्हें क्षुद्रग्रहों का 'हिल्डा' समूह नज़र आया। इसे पार करते हुए वे 'थुल' नामक क्षुद्र ग्रह के निकट आए। उन्होंने इसे भी पार किया।

अभ्र तथा उसके साथी पैगासस में बढ़ते हुए काफी दूर आ गए

थे। अब तो बृहस्पति ग्रह की कक्षा भी उनके निकट आने लगी थी।

काश! उनके पास भी टेलीपोर्ट यंत्र होता या डॉ. होगबेन दूसरा यंत्र बनाने में सफल होते लेकिन ड्रेको तो टेलीपोर्ट यंत्र के कागजात तक चुरा कर ले गया था। फिर टेलीपोर्ट यंत्र को बनाने में भी बहुत अधिक समय लगेगा। तब तक तो वह पृथ्वी पर कहर बरपा चुका होगा।

अब उनके पास केवल एक ही चारा था कि अंतरिक्ष यान 'पैगासस' में ड्रेकों का पीछा किया जाए। अभ्र तथा उसके साथियों के लिए डॉ. होगबेन का 'टेलीपोर्ट' यंत्र अंतरिक्ष लुटेरे से प्राप्त करना बहुत आवश्यक था।

अब क्षुद्रग्रहों का 'ट्रोजन समूह' उनसे ज्यादा दूर नहीं था।

शीघ्र ही उन्हें 'ट्रोजन' बौने ग्रहों का समूह दिखाई दिया। यह ५–२ खगोलीय इकाई दूर था। अंतरिक्ष लुटेरा ड्रेको इसी 'ट्रोजन समूह' में छिपा हुआ था।

अभ्र तथा उसके साथियों को याद आया कि खगोलशास्त्री लांग्राज ने ब्रह्माण्ड में पिंडों के एक विशाल त्रिकोण की कल्पना की थी। इस विशाल ब्रह्माण्डीय त्रिकोण का एक सिरा 'ट्रोजन समूह' दूसरा सिरा बृहस्पति तथा तीसरा सिरा 'सूर्य' है। ट्रोजन समूह तथा बृहस्पति ग्रह दोनों ही सूर्य की परिक्रमा करते हैं। यह ब्रह्माण्ड का अद्भुत त्रिकोण था।

अब तक अभ्र तथा उसके साथी यान में 'ट्रोजन' क्षुद्र ग्रहों के निकट आ गए थे। उन्हें शीघ्र ही 'हेक्टर–ढद्ढद्' दिखाई पड़ा। यह 'ट्रोजन समूह' में सबसे बड़ा क्षुद्र ग्रह है। हेक्टर ढद्ढद् बृहस्पति से ६० डिग्री का कोण बनाता है। उन्होंने देखा कि उसकी द्युति १ : ३ के अनुपात में परिवर्तित हो रही थी। द्युति में परिवर्तन से यह पता चलता है कि वह क्षुद्रग्रह है।

जब यान पैगासस क्षुद्र ग्रह हेक्टर–ढद्ढद् के निकट पहुंचा तो वे यह जानकर आश्चर्यचकित रह गए कि 'हेक्टर–ढद्ढद्' एक के बजाय

दो बौने ग्रह का जोड़ा है। इसे युग्म बौना भी कहा जाता है। वैज्ञानिक हार्टमेन की कल्पना सत्य साबित हुई।

अंतरिक्ष लुटेरे ड्रेको के हेक्टर–ढद्ढद् नामक इसी क्षुद्र ग्रह में छिपने के संकेत मिल रहे थे।

उन्होंने 'हेक्टर–ढद्ढद्' पर उतरने का मन बनाया।

शीघ्र ही उन्हें 'हेक्टर–ढद्ढद्' क्षुद्र ग्रह का धरातल दिखाई पड़ा। अब अंतरिक्ष लुटेरा ड्रेकों उनसे अधिक दूर नहीं था।

जैसे ही अभ्र तथा उसके साथियों को हेक्टर–ढद्ढद् का धरातल दिखाई पड़ा, वे खुशी से चीख पड़े– 'हुर्रे!' काफी लंबे समय के पश्चात उन्हें यह क्षुद्रग्रह दिखाई पड़ा था। अभ्र तथा उसके साथियों को 'हेक्टर–ढद्ढद्' पर प्रचुर मात्रा में खड्ड (क्रेटर) दिखाई पड़ रहे थे।

वे जीवन नौका से 'ट्रोजन समूह' के क्षुद्र ग्रह 'हेक्टर–ढद्ढद्' के धरातल पर उतरे। अब वे हेक्टर ढद्ढद् के भयानक जंगलों में आ गए थे। हेक्टर–ढद्ढद्' के बियावान जंगल में तरह–तरह की डरावनी आवाजें गूंज रही थीं। लेकिन अभ्र तथा उसके साथी बिना उसकी परवाह किए आगे बढ़ रहे थे। धीरे–धीरे डरावनी आवाजें उनके निकट आने लगीं। चारों तरफ हेक्टर के भयावह वृक्षों का झुरमुट था।

उनके खोजी उपकरण यह संकेत दे रहे थे। कि ड्रेका इन्हीं भयानक जंगलों में छुपा हुआ है।

चारों साथियों ने मुड़कर देखा। उन्हें डाइनोसोर के बच्चे दौड़ते हुए आते दिखाई पड़े। अब यह स्पष्ट हो चला था कि ये विचित्र आवाजें इन्हीं डाइनोसोर के बच्चों की थीं। उनकी संख्या बहुत अधिक थी। उनके पीछे बड़े डायनोसोर चले आ रहे थे।

चारों साथी उन्हें देखकर कांप उठे। डाइनोसोर के बच्चे अभ्र तथा उसके साथियों को देखते हुए चीखने लगे। उनकी कर्कश ध्वनि से 'हेक्टर–द्वितीय' का आकाश गूंज उठा। बड़े डाइनोसोर की घुरघुराहट से उनके दिल दहल उठे। डाइनोसोर के डग भरने से उन्हें लग रहा था

मानों 'हेक्टर–द्वितीय' की धरती हिल रही हो।

"साथियों, हम चारों तरफ से घिर गए हैं।" अभ्र ने डाइनोसोर के बच्चों को उनकी ओर बेतहाशा भागते देखकर कहा।

चारों साथियों के रोंगटे खड़े हो गए। "ओह! कितने चुस्त हैं ये डाइनोसोर। हमें फुर्ती दिखानी होगी।" नीहारिका ने उन्हें दौड़ते हुए अपने ओर आते हुए देखकर कहा। वह बुरी तरह कांपने लगी।

"इनकी फुर्ती को देखकर अब इस धारणा को बदलना होगा कि डाइनोसोर निरेसुस्त जीव होते हैं।" अभ्र ने डाइनोसोर के भयानक जबड़ों की ओर देखते हुए कहा।

"लगता है ये मांसाहारी जीव हैं।" प्रशान्त डाइनोसोर के बारे में अनुमान लगाते हुए बोला। उसने धरती पर अनेक मांसाहारी डायनोसोर का अध्ययन किया था।

"ओह! तो ये हमारा भक्षण कर सकते हैं" दिव्या भयावह डाइनोसोर को देखकर आतंकित होते हुए बोली।

"ओह! ये तो आक्रामक रुख अपनाए हुए हैं।" निहारिका त्रस्त होते हुए बोली।

डाइनोसोर तथा उनके बच्चे चारों ओर से इतने निकट आ गए थे कि उन्हें भागने का मौका ही नहीं मिला। वे पहले पीछे की ओर भागे लेकिन डाइनोसोर का झुंड उस तरफ से भी चला आ रहा था। वे फिर दाई तथा फिर बाई ओर भागे लेकिन उन्हें दोनों दिशाओं से डाइनोसोर बढ़ते हुए दिखाई पड़े। वे चारों ओर से घिर चुके थे। वे बुरी तरह थर्रा उठे। उन्हें लगा कि उनकी जिंदगी के कुछ ही पल शेष हैं।

उनके बच कर भागने के सारे रास्ते बंद हो गए थे। उन्हें बच निकलने का कोई उपाय नही सूझ रहा था।

अचानक डाइनोसोर ने दहाड़ मारी। अभ्र तथा उनके साथियों के दिल दहल उठे। उनके भारी भरकम खुले जबड़े साक्षात् मौत के खुले मुख प्रतीत हो रहे थे।

अचानक अभ्र को एक युक्ति सूझी। वह चिल्लाया, "साथियों, फेंकों न्यूट्रोन विध्वंसक।"

सभी साथियों ने अश्रु गैस के गोलों की तरह न्यूट्रोन विध्वंसक फेंके।

न्यूट्रोन तिध्वंसकों के धमाके से चारों ओर धुआं फैल गया।

डाइनोसोर इस अप्रत्याशित धमाके से सहम उठे तथा इधर–उधर भागने लगे। इस बीच अभ्र तथा उसके साथियों को मौका मिल गया। चारों साथी इन्फ्रारेड डिटेक्टर के सहारे खूंखार मांसाहारी डाइनोसोर के झुंड से बचते हुए विस्फोटकों की धुंध में आगे बढ़ गए। वे दम छोड़कर भाग रहे थे। नीहारिका तथा दिव्या का बुरा हाल था। उनकी सांस बुरी तरह से फूल चुकी थी। उन दोनों को लगा कि वे कहीं गिर पड़ेंगी तथा दम तोड़ देंगी।

"अभ्र! अब आगे नहीं दौड़ा जा रहा है।" नीहारिका के हौसले पस्त हो चुके थे।

"नीहारिका, थोड़ी और हिम्मत जुटाओ" अभ्र ने उसका हौसला बढ़ाया।

उनके ह्रदय तेजी से धड़क रहे थे। जब उन्होंने देखा कि डाइनोसोर उनका पीछा नहीं कर रही हैं तो उन्होंने राहत की सांस ली।

अभी वे बैठ नहीं सकते थे। उन्होंने किसी तरह आगे बढ़ना जारी रखा। नीहारिका तथा दिव्या का चेहरा अश्रुओं से भीगा हुआ था।

सुरक्षित स्थान पर पहुंच कर उन्होंने एक चट्टान पर थोड़ा आराम किया।

डाइनोसोर की आवाजों से हेक्टर–द्वितीय का आकाश गूंज उठा था।

उन्होंने फिर आगे बढ़ना प्रारंभ किया। वे अब खड़ी चट्टानों के बीच आ गए थे।

"अभ्र, वो डाइनोसोर क्या कहलाते हैं?" नीहारिका ने अभ्र से प्रश्न

किया।

"वो ओरोड्रोमिअस मेकेलाई कहलाते हैं।" अभ्र ने उत्तर दिया।

"ओरोड्रोमिअस मेकेलाई?" नीहारिका ने प्रश्न भरी निगाहों से देखा। अभी भी उसके आगे डाइनोसोर का भयावह चेहरा तैर रहा था।

"हां, यह नाम वैज्ञानिक मेकेला के सम्मान में रखा गया। उसने ही सर्वप्रथम इनके अण्ड़ों को खोजा था।" अभ्र ने साथियों की उत्सुकता को शांत किया।

"आश्चर्य! इतने फुर्तीले डाइनोसोर मैंने कभी नहीं देखे। वे तो किसी हिरण की तरह तेज दौड़ रहे थे।" दिव्या ने हेक्टर–द्वितीय के आकाश की ओर देखते तथा दो घूंट सूखे हलक में डालते हुए कहा।

"इससे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि इन डाइनोसोरों में मातृत्व (पेरेंटल केयर) का गुण पाया जाता है। तुमने देखा नहीं किस तरह से वे अपने घोसलों के चारों ओर मंडरा रहे थे।" अभ्र ने भी अपनी प्यास बुझाते हुए कहा।

"हां, तभी वे अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए दौड़ते हुए आक्रामक मुद्रा में हमारी ओर चले आए।" दिव्या ने उन्हें याद करते हुए कहा। अब उसका कांपना बंद हो चुका था।

चारों साथियों में डर अब भी समाया हुआ था। वे फिर डायनोसोर से घिर सकते थे।

उन्होंने सोचा भी नहीं था कि ड्रेको की तलाश में इस तरह डाइनोसोर से उन्हें सामना करना पड़ेगा। काश! उसने डॉ. होगबेन का टेलीपोर्ट यंत्र नहीं चुराया होता। उसने उन्हें तनिक भी आभास नहीं होने दिया कि टेलीपोर्ट यंत्र पर उसकी कुदृष्टि पड़ चुकी है। उसे पकड़ना अत्यन्त आवश्यक था। यदि उसे टेलीपोर्ट यंत्र का प्रयोग करना आ गया तो वह पृथ्वी पर कहर बरपा सकता है। यही कारण था कि उन्हें हेक्टर–द्वितीय तक की दीर्घ यात्रा करनी पड़ी। लेकिन अभी भी मंजिल उनसे दूर थी। वे सोचने लगे क्या वे ड्रेको के गुप्त अड्डे पर

पहुंच सकेंगे या इन भयावह डाइनोसोर से मुठभेड़ करते हुए उनकी जीवन की यह लीला समाप्त हो जाएगी।

वो अब आगे बढ़ते हुए खड़ी चट्टानों के बीच आ चुके थे। उन्हें दूर–दूर तक छितराए हुए डाइनोसोर के खुले घोसले दिखाई पड़े। इन घोसलों में कई शिशु डाइनोसोर पनप रहे थे। वयस्क डाइनोसोर उन्हें घेरे हुए थे।

डाइनोसोर कोई पच्चीस फीट लंबे होंगे तथा ओरोड्रोमिअस से काफी विशाल थे। उनके सिर पर मेंडे की तरह चौड़ी तथा चपटी शिखाएं दिखाई पड़ रही थीं।

"साथियों, मायासौर!" अभ्र घौसले के शिशुओं को घेरे हुए डाइनोसोर को देखकर बोला।

"मायोसौर?" नीहारिका ने प्रश्न भरी निगाहों से देखा।

"हां, मायासौर... इनमें ओरोड्रोमियस से अधिक मातृत्व पाया जाता है।" अभ्र मायासौर की भारी भरकम देह की ओर देखकर बोला।

"तब तो ये शिशुओं की रक्षा करने के लिए अधिक खूंखार हो जाते होंगे।" नीहारिका डाइनोसोर की ओर देखकर बोली।

उसका अनुमान सही था। मायोसौर ने उन्हें देखते ही दहाड़ मारी। अभ्र तथा उसके साथी उनकी दिल दहला देने वाली आवाज़ को सुनकर सहम उठे।

मायासौर ने आक्रामक रुख अपना लिया। अभ्र तथा उसके साथियों के रोंगटे खड़े हो गए।

उन्हें फिर न्यूट्रोन विध्वंसकों का प्रयोग करना पड़ा।

धमाकों की आवाज़ से क्षुद्रग्रह 'हेक्टर–द्वितीय' का गुलाबी आकाश गूंज उठा।

धुएं और धमाकों के बीच बच्चे बेतहाशा भागे। उनकी सांसे फूल गई थीं। नीहारिका तो बीच में गिर पड़ी थी। वह तेजी से चीखी। उसे हल्की चोट भी आई।

सुरक्षित स्थान पर पहुंच कर वे घाटी में पुनः आगे बढ़े। मायासौर का इलाका पीछे छूट चुका था।

अब वे चट्टानों के बीच आ गए थे। वे तनिक आगे बढ़े होंगे कि उनके खोजी उपकरण ड्रेको के गुप्त अड्डे के स्ट्रांग संकेत देने लगे। इससे स्पष्ट था कि वे ड्रेको के गुप्त अड्डे के निकट पहुंच चुके थे। वहां उन्हें एक क्रेटर दिखाई दिया। इसी क्रेटर में अंतरिक्ष लुटेरे ड्रेको का अड्डा था। वे संकेतों के सहारे उस विशाल क्रेटर (गड्ढे) के निकट पहुंचे। संकेत इसी क्रेटर से आ रहे थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि ड्रेको का गुप्त अड्डा एक क्रेटर में था।

क्रेटर काफी गहरा था। उसमें पानी भरा हुआ था। लेकिन संकेत इसी क्रेटर से आ रहे थे। स्पष्ट था कि अंतरिक्ष लुटेरे ड्रेको का अड्डा जल के भीतर ही होगा। उन्होंने डुबकी लगाई। उन्हें बाईं तरफ एक गड्ढ़ा दिखाई पड़ा। पानी उस तरफ भी बह रहा था। वे उसी दिशा में तैरते हुए मुड़ गए। वह एक कृत्रिम सुरंग थी, जिसमें वे तैरते हुए बढ़ रहे थे। सुरंग काफी लंबी थी। खतरा उन्हें स्पष्ट नज़र आने लगा था। यदि ड्रेको के गार्डों ने उन्हें देख लिया तो उनका बचना मुश्किल है। अब रोशनी टिमटिमाने लगी थी। इससे स्पष्ट था कि अड्डे का गुप्त दरवाजा निकट ही था। चारों साथियों ने 'न्यूट्रान' पिस्तौलें निकाल ली थीं। शीघ्र तैरते हुए आगे बढ़ने पर वह सुरंग बंद हो गई थी। शुक्र था कि अभी तक कोई उधर से नहीं गुजरा था। अब सुरंग ऊपर की ओर बढ़ रही थी। उन्हें ज्यादा ऊपर नहीं आना पड़ा। अड्डे का दरवाजा उन्हें दिखाई पड़ा। पानी का दबाव यहां बहुत कम हो गया था क्योंकि इसका रिसाव किनारे में कई जगह कर दिया गया था। अर्भ ने 'लेप्टो क्वार्क' किरण का प्रहार किया। दरवाजा खुल गया। भीतर प्रवेश करते ही दरवाजा पुनः बंद हो गया। उन्हें आश्चर्य हुआ वहां दो हरे मानव पहरा दे रहे थे। अर्भ तथा प्रशांत ने पिस्तौल से न्यूट्रोन किरणों का प्रहार किया। इससे पहले कि दोनों हरे मानव संभलते, 'लेप्टो क्वार्क'

किरणों ने उन्हें धराशायी कर दिया। अभ्र तथा प्रशांत ने हरे गार्डों की पोशाकें पहन लीं। अब उन्हें पहचानना मुश्किल था। वे गुप्त अड्डे में तनिक आगे बढ़े। उन्हें दो गार्ड दौड़ कर सामने से आते हुए दिखाई पड़े। शायद उन्हें अभ्र तथा उसके साथियों का आभास हो गया था। गार्डों ने पिस्तौलें दागी। यह शुक्र था कि चारों साथी झटके से बायीं तथा दायीं ओर लुढ़के। इससे हरे मानवों का निशाना खाली गया। लेकिन अभ्र तथा प्रशांत ने लुढ़कते हुए भी फायर कर दिया था। दोनों का निशाना अचूक था। दोनों हरे मानव वहीं धराशायी हो गए। नीहारिका तथा दिव्या ने भी हरे मानव गार्डों की पोशाकें पहन ली। अब उनका कार्य आसान हो गया था। अब वे एक गलियारे में बढ़ रहे थे। गलियारे के दोनों तरफ हर मोड़ पर हरे मानव गार्ड थे लेकिन किसी ने उन्हें रोका नहीं। इसका कारण था कि वे गार्डों का विशेष कोड में ही अभिवादन करते।ये विशेष कोड उन्हें अपने विशिष्ट अभिग्राही तथा खोजी उपकरणों के जरिए प्रवेश द्वार के भीतर प्रवेश करते ही मालूम हो गए थे। चारों साथी हरे मानव गार्डों के वेश में भूल–भुलैया जैसे घुमावदार गलियारों से होते हुए एक हॉल में पहुंचे।

वहां एक उच्च सिंहासन पर अंतरिक्ष लुटेरा ड्रेको बैठा हुआ था। उसे तनिक भी यह आभास नहीं हुआ कि डॉ. होगबेन के शिष्य टेलीपोर्ट यंत्र की टोह में वहां पहुंच चुके हैं।

अब तक अभ्र ड्रेकों के सिहांसन तक पहुंचने के कोड जान चुका था। वह हरे मानव के भेष में ही ड्रेकों के निकट पहुंचा तथा न्यूट्रोन पिस्तौल उसकी कनपटी पर तान दी।

ड्रेको संभल नहीं पाया। "ड्रेको! टेलीपोर्ट यंत्र कहा हैं?" अभ्र ने गरजती हुई आवाज़ में पूछा।

"उपकरण? कैसा उपकरण?" ड्रेको सकपकाया।

"अन्जान बनने की जरूरत नहीं। साफ–साफ बताओ कि तुमने उपकरण कहां छिपाया है। नहीं तो पल भर में तुम्हारी जिन्दगी तमाम

कर दी जाएगी।'' अर्भ ने ड्रेको की कनपटी पर 'लेप्टो क्वार्क' पिस्तौल सटाए हुए धमकी दी।

अभ्र ने प्रशांत को इशारा किया। प्रशांत, नीहारिका तथा दिव्या, हॉल में दूर स्थित एक ऊंचे प्लेटफार्म पर खड़े हुए थे। प्रशान्त ने एक हरे मानव पर पिस्तौल दागी। वह वहीं ढेर हो गया।

ड्रेकों तथा उसके दल के सदस्यो ने हरे लिबास पहन रखे थे जो बुलट प्रूफ थे। लेकिन 'लेप्टो क्वार्क' किरणों में यह कमाल था कि वे बुलट–प्रूफ लिबासों को भेद सकती थीं।

ड्रेको समझ गया कि उसके बुलट–प्रूफ लिबास का जादू खत्म हो चुका है।

"तुम लोग कौन हो?" ड्रेको ने प्रश्न किया।

"हम लोग डॉ. होगबेन के शिष्य हैं। ड्रेको तुम्हारा जादू समाप्त हो चुका है... सीधी तरीके से तुम होगबेन के चुराए उपकरण टेलीपोर्ट यंत्र को लौटा दो, नहीं तो इस गार्ड की तरह तुम भी पल भर में ढ़ेर हो जाओगे।

ड्रेको ने बजाय उपकरण के बारे में बताने के एक बटन को दबाने की कोशिश की जो कि उसकी पोशाक पर स्थित था। लेकिन वह नीहारिका की पैनी आंखों से नहीं बच सका। नीहारिका ने भांप लिया कि वह उस बटन को द्बाकर तथा अदृश्य होकर क्षुद्रग्रहों के अन्य समूह में चला जाना चाहता है। पहले वह तरंगों में परिवर्तित होगा, फिर सशरीर दूर स्थित किसी अन्य स्थान पर उपस्थित होगा। तब उसे पकड़ पाना कठिन हो जाएगा।

स्पष्ट था कि टेलीपोर्ट यंत्र का संबंध उस बटन से था। निहारिका ने तुरन्त 'लेप्टो क्वार्क' पिस्तौल से फायर किया।

दूर से आती 'लेप्टो क्वार्क' किरणों ने ड्रेको की अंगुली को जला दिया। वह बटन दबा नहीं सका। लेप्टो क्वार्क किरण का असर अंतरिक्ष लुटेरे ड्रेकों पर हो चुका था। उसने आत्म समर्पण कर दिया।

अभ्र तथा उसके साथियों ने ड्रेकों तथा दल के अन्य सदस्यों से परिधान उतरवा लिए थे। अब वे हरे मानव नहीं रहे थे। प्रशान्त ने टेलीपोर्ट यंत्र को ड्रेको के परिधान से अलग किए।

डेक्टर पुलिस को पहले ही ट्रांसमीशन भेजा जा चुका था। वह धड़धड़ाती हॉल में दाखिल हुई। उसने अंतरिक्ष लुटेरे ड्रेको को गिरफ्तार कर लिया।

अभ्र तथा उसके साथी वैज्ञानिक होगबेन का उपकरण प्राप्त कर पुनः अंतरिक्ष यान पैगासस में पहुंचे।

अब यान का रुख पुनः पृथ्वी की ओर था। उन्होंने पृथ्वी को ड्रेको के कहर से बचा लिया था।
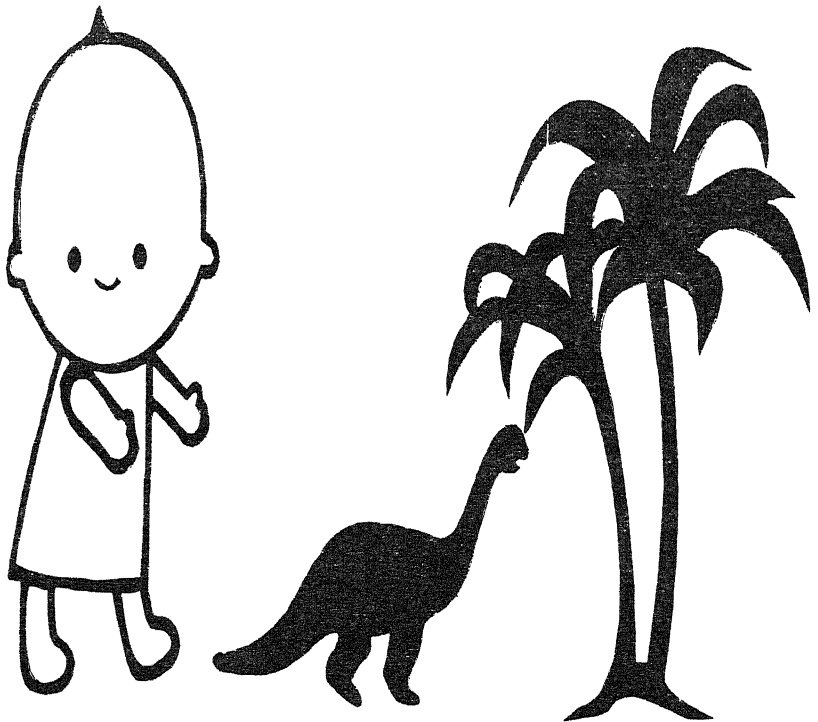
बदली हुई आदत

दिनेश पाठक 'शशि'

सोनू और मोनू दोनों भाई हैं। दोनों में सुबह देर तक सोने की बुरी आदत है। अपनी इस बुरी आदत के लिए कई बार, मम्मी–पापा की डांट भी खा चुके हैं।

अभी कल की ही बात है दोनों भाई अपनी आदत के अनुसार देर से जागे। जागते ही जल्दी–जल्दी स्कूल की तैयारी करने लगे। पर ये क्या! वो स्कूल ड्रेस पहन भी नहीं पाये थे कि स्कूल बस ने हॉर्न देना शुरू कर दिया।

"ओफ्फो, ये स्कूल बस आज कितनी जल्दी आ गई।" सोनू झुंझलाया।

"और मेरा तो अभी बस्ता भी तैयार नहीं हुआ।" मोनू रूआंसा हो गया।

"बस जल्दी आई है या तुम लोग आज फिर देर से जागे हो, दीवार घड़ी की ओर तो देखों, कितने बजे हैं?" लंचबॉक्स थमाते हुए माँ ने कहा।

दोनों ने जैसे–तैसे भागकर स्कूल बस पकड़ी और प्रतिज्ञा की कि कल से जल्दी जागेंगे। गड़बड़ी की सारी जड़ देर से जागना ही है। इसीलिए सारे काम पिछड़ जाते हैं।

पर अगले दिन फिर वही लेट–लतीफी। दोनों ही भूल गए कि

कल हमने प्रतिज्ञा की थी। और याद भी आया तो सुबह की मीठी–मीठी नींद ने बिस्तर नहीं छोड़ने दिया।

"अरे! कैसे विद्यार्थी हो तुम दोनों, जिन्हें पढ़ाई–लिखाई की कोई चिन्ता ही नहीं। बिना जगाए तो जागते ही नहीं।" माँ की आवाज़ सुनते ही दोनों उठकर तैयार होने भागे। उनकी लदर–पदर को देख, माँ को हँसी आ गई। पर दूसरे ही क्षण वह ये सोचकर चिंतित हो उठी कि इनमें, सुबह को जल्दी जागने की आदत कैसे डाली जाय।

बच्चों के स्कूल जाते ही वह प्रतिदिन की भांति अखबार उठाकर पढ़ने लगी। तभी उसकी नज़र एक समाचार पर पड़ी, "हेल–बोप्प नाम का धूमकेतु सुबह के साढ़े पांच बजे से सूर्य निकलने से पहले तक नंगी आँखों से देखा जा सकता है। यह तारा आठ अप्रैल तक दिखाई देगा।" पढ़कर वह मन ही मन मुस्कराई। सोनू–मोनू को अंतरिक्ष विज्ञान में बहुत आनन्द आता है। उनके स्कूल से वापस आते ही माँ ने दोनों को समाचार पढ़ने को दिया जिसे पढ़कर दोनों प्रसन्नता से उछल पड़े, "या हू... हम भी देखेंगे हेल–बोप्प।"

पर दूसरे ही क्षण दोनों उदास हो गए। ये सोचकर कि वे दोनों तो सूर्य निकलने के बाद ही जाग पाते हैं। जब कि हले–बोप्प सूर्य निकलने से पहले ही देखा जा सकता है। उन्होंने माँ से चिरौरी की, "माँ, आप हमें सुबह पाँच बजे जगा सकती हो?"

"नहीं भई, तुम दोनों को जगाना मेरे बस की बात नहीं।

सोते–सोते ही हूँ–हाँ करते रहते हो, पर जागने का नाम नहीं लेते।"

"पर माँ, अब हम कह रहे हैं न। हम आपकी एक आवाज़ सुनते ही जाग जायेंगे। हमारी अच्छी माँ।"

"अच्छा–अच्छा, अब ज्यादा मक्खनबाजी नहीं। सुबह को एक आवाज़ दूंगी। जागना हो तो जाग जाना।" कहकर वह मन ही मन मुस्कराई।

रात को सोते समय सोनू–मोनू ने, सुबह को जल्दी जगाने के लिए माँ को एक बार फिर से याद दिलाई। वे हेल–बोप्प देखने के लिए इतने उत्सुक थे कि कब रात बीते और कब वो छत पर जाकर हेल–बोप्प का नजारा देखें। सोनू ने तो अपने पापा की बुकसेल्फ से अंतरिक्ष की जानकारी देने वाली एक पुस्तक खोजकर निकाली और उसे पढ़ने लगा।

"माँ–माँ इस पुस्तक के अनुसार तो हमारे देश के अंतरिक्ष विज्ञानी वाराह मिहिर ने १५२१ वर्ष पहले ही अपने ग्रन्थ बृहदसंहिता में इस धूमकेतु के बारे में लिख दिया था कि १५०० वर्ष बाद काश्यप श्वेतकेतु, आकाश के प्रथम चौथाई हिस्से में उदित होगा और दक्षिण की ओर वामवर्त दिशा में बढ़ेगा। जिसे नंगी आँखों से देखा जा सकेगा। फिर इसका नाम हेल–बोप्प कैसे पड़ गया?" सोनू ने जिज्ञासा प्रकट की।

"बेटे, हमारे देश का अंतरिक्ष विज्ञान बहुत प्राचीन है। हो सकता है अभी दो वर्ष पहले ऐलेन हेल और थॉमस बोप्प ने शौकिया तौर पर इसका अध्ययन करके अपने नाम पर इसका नाम हेल–बोप्प रख दिया हो।" माँ ने अनुमान लगाया।

"बिल्कुल ऐसा ही होगा, माँ।" सोनू ने उत्सुकता से कहा, "हम सुबह देखकर तुलना करेंगे।"

"ठीक है, अब तुम सो जाओ।" कहकर माँ ने लाइट बन्द कर दी। सुबह को जागकर उसने सोचा कि सोनू–मोनू को जगा दिया जाय। नहीं तो जागकर शिकायत करेंगे। जैसे ही उनको आवाज़ दी, दोनों एक साथ बोल पड़े, "हाँ माँ, हम दोनों भाई आंगन में हैं। देखो, आज तो हम आप से भी पहले जाग गए न?"

"अरे, वाह, आज तो कमाल हो गया।" माँ प्रसन्नता से बोली।

छत पर चढ़कर, एक घन्टे तक वो दोनों, धूमकेतु को देखते रहे। "अरे ये तो बिल्कुल वैसा ही लग रहा है जैसा पापा की किताब में, अंतरिक्ष विज्ञानी वाराह मिहिर के धूमकेतु के बारे में लिखा था।"

छत के ऊपर, सुबह की शुद्ध वायु में दोनों को बहुत आनन्द आ रहा था। धूमकेतु देखने के बाद वे नीचे उतर आए और स्कूल जाने की तैयारी करने लगे। आज वे स्कूल बस के आने से बहुत पहले ही तैयार हो गए।

अब तो उन्होंने प्रतिदिन ही जल्दी जागकर धूमकेतु देखने का कार्यक्रम बना लिया। इस बहाने उन्हें, जल्दी जागने की आदत पड़ गई। जाने कब ८ अप्रैल बीत गई पर उन्होंने सुबह जल्दी जागना बन्द नहीं किया। सच तो यह था कि उन्हें सुबह की ताजी हवा खाने में आनन्द आने लगा था।

सोनू-मोनू की बदली हुई आदत को देख माँ प्रसन्न हो उठीं और उन्होंने, दोनों को अपनी बाहों में भरकर चूम लिया।
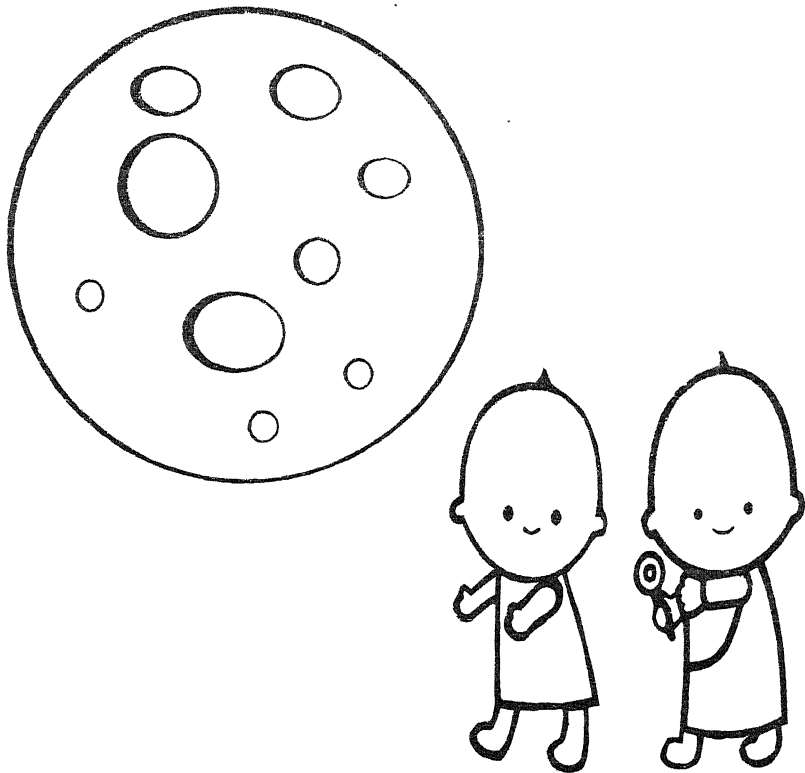
पिकनिक

बीना कानोडिया

बंटी, नीता और सौरभ आज बहुत खुश थे। पहली खुशी तो इस बात की थी कि आज स्कूल में छुट्टी थी। और दूसरी खुशी इस बात की थी कि आज पिता जी ने सबको चिड़ियाघर ले जाने का वायदा किया था। रात से ही तीनों अपनी तैयारियों में लगे थे। बैड़मिन्टन का रैकेट, फ्लाइंग डिश, लूडो, थरमस सब ढूँढ़ा जा रहा था। बंटी, नीता एक ओर थे और सौरभ अलग। सौरभ तीनों में सबसे बड़ा था इसलिये बात–बात में दोनों छोटे भाई बहनों पर रौब गांठ रहा था। यह लाओ, वह लाओं। जूतें पालिश करो। जीन्स प्रेस करो। गेंद ढूंढ़ कर लाओ। बंटी और नीता दौड़–दौड़ कर सारे हुक्म बजा रहे थे।

मां चिड़ियाघर में खाने के लिये पूरियां तल रही थीं। पिता गाड़ी में तेल भरवाने गये थे।

"सौरभ, बंटी, नीता, बेटा जल्दी करो।" मां ने आवाज़ लगाई। "तुम्हें ही तैयार होने में सबसे ज्यादा वक्त लगेगा।"

तीनों फटाफट मुंह हाथ धोनें गुसलखाने में जा घुसे। मां ने पूरियां बना कर मिठाई के डिब्बों में रखी तब तक तीनों तैयार होकर बाहर भी आ गये। पापा आ गये थे। उन्होंने मां से कहा "जल्दी करो, खाना बन गया न। चलो, तुम भी तैयार होकर आ जाओ।" मां भी जल्दी से तैयार होने भागी।

नौ बजते–बजते सब लोग चिड़ियाघर पहुंच गये। पिताजी ने जब तक गाड़ी पार्किंग में लगाई तब तक तीनों भाग कर दो बार चिड़ियाघर के गेट तक हो आये। नन्हीं नीता तो गेट से झांक कर चिल्लाने ही लगी "भइया–भइया वह देखो हिरन।" सौरभ ने जोर से कहा, "अरे तो क्या हुआ। चिल्ला क्यों रही है। अभी भीतर चलेंगे तो सब देख लेना।" नीता ने मुंह चिढ़ा दिया।

पापा ने टिकट खरीदे और सब बड़े गेट से होकर भीतर आ गये। अन्दर बड़ी भीड़ थी। हजारों बच्चे इधर उधर दौड़ रहे थे। बायीं ओर हिरनों का बाड़ा था। सुन्दर काली आंखों वाले हिरन मस्ती में घास चर रहे थे। उनके छोटे मृगशावक इधर से उधर कुलांचे भर रहे थे। नीता तो मुंह फाड़े उन्हें देखे ही जा रही थी। बंटी पिंजरे के पास खड़ा हुआ तो एक हिरन आकर उसका हाथ चाटने लगा। बंटी डर गया और भाग कर मम्मी के पास चला आया। सब जोर से हंसने लगे।

फिर बारी आई भेड़िये, हाथी, और भालू की। बंटी ने नीता से कह दिया था कि यह सब जानवर आदमी को खा जाते हैं। अतः वह तो मम्मी से सटी ही चल रही थी। सौरभ ने समझाया "अरे! डरती क्यों है। हाथी के तो दांत ही नहीं होते। खायेगा क्या।" पापा ने समझाया "नहीं ऐसा नहीं है। हाथी के खाने के दांत और दिखाने के दांत अलग–अलग होते हैं। पर हाथी मांस नहीं खाता। जबकि भेड़िया और भालू मांसाहारी हैं।" नीता और दुबक गई। पापा ने उसे गोद में उठा कर कहा, "पर तुम क्यों डरी जा रही हो। यह तो पिंजरे में बन्द हैं। तुम्हें खाना तो दूर यह तो तुम्हें छू भी नहीं सकते। हां, जंगल की बात दूसरी होती है। वहां यह खुले होते हैं तो खतरनाक होते हैं। पर यह भी अकारण किसी पर हमला नहीं करते। यह भी आदमियों से उतना ही डरते हैं जितना आदमी इनसे।" सौरभ ने ऐसे सिर हिलाया जैसे सब पहले से ही जानता हो।

शेर अपने पिंजरे में आराम कर रहा था। वह कभी–कभी अपनी

आंख खोल कर देख लेता और फिर नींद में खो जाता। बंटी ने उसे खूब आवाज़ें दीं पर वह नहीं जागा। वे बड़ी देर तक उसे देखते रहे। पर वहां मांस की दुर्गन्ध आ रही थी इसलिये सब आगे बढ़ गये। आगे चिड़ियों का तालाब था। तरह–तरह के पक्षी थे यहां। हारिल, मोर, बतख, हंस, कबूतर, सुर्खाब और भी जाने कितने तरह के तोते, बटेर, फाख्ता इत्यादि। कुछ लोग बन्दरों के बाड़े के आगे खड़े उन्हें मूंगफली खिला रहे थे। सौरभ ने भी मूंगफली का एक दाना उछाला तो पापा ने रोक दिया, बोले "नहीं, इन्हें कोई चीज़ नहीं देनी चाहिये। ये बीमार हो जाते हैं। इन्हें इनकी खुराक के हिसाब से खाना दिया जाता है।"

फिर सब गैंड़ा और चीता देखने गये। चीता पिंजरे में चक्कर काट रहा था। लगता था अभी बाहर आ कर चीर डालेगा। नीता तो उसकी गुर्राहट से इतना डर गई कि उसने उधर देखा ही नहीं और जल्दी मचाने लगी कि यहां से चलो। अब तक सब थक गये थे। वे पार्क में आकर बैठ गये। उन्होंने अपना डिब्बा खोला और पूरियों पर जुट गये।

बच्चों ने जल्दी ही खाना चट कर डाला और खेलने भागे। बंटी सौरभ ने बैड़मिंटन सम्हांला तो नीता झूले पर जा चढ़ी। सहसा पापा ने आवाज़ दी। सौरभ भागा हुआ आया तो पापा ने खाली मिठाई के डिब्बे, अखबार का टुकड़ा सब मोड़ कर उसे पकड़ा दिया और दूर बने कूड़ेदान में फेंक आने को कहा। सौरभ खेल छोड़ कर आया था। अतः उसने कहा "पापा, यहीं रहने दीजिये न। सब तो यहीं फेंक रहे हैं।" पर पापा नहीं माने उन्होंने कहा "जरूरी नहीं कि जो सब करते हों वही हम भी करें। हम जो कूड़ा यहां बिखराते हैं उससे गंदगी फैलती है। फिर उसे हमारे ही जैसे किसी आदमी को साफ करना पड़ता है। यही गंदी आदत है। इससे जानवर तो बीमार होते ही हैं हमें भी लोग लापरवाह समझते हैं।" सौरभ समझ गया और कूड़ा उठाकर कूड़ेदान में डाल आया।

खेलते हुए जब काफी देर हो गई तो पापा ने फिर आवाज़ लगाई

बोले, "खेलते ही रहोगे या दरयाई घोड़ा भी देखने चलोगे?" "दरियाई घोड़ा। यह क्या होता है पापा।" बंटी ने आश्चर्य से पूछा। पर उत्तर दिया सौरभ ने "अरे! बुद्धू, वह घोड़ा जो दरिया में रहता है। नदी में, उसे दरियाई घोड़ा कहते हैं।" मां को हंसी आ गई। बोली "तुम दोनों ही बुद्धू हो। दरियाई घोड़ा तो उसका नाम है बस। न तो वह घोड़ा है और न भाग सकता है। सब लोग अभी खुद ही देख लेना।" बातें करते करते वे दरियाई घोड़े तक आ पहुंचे। वह पानी में खड़ा अपना मुंह फाड़ रहा था। पिताजी ने बताया "इतना बड़ा मुंह होने के बाद भी यह एक ब्रेड़ से ज्यादा कुछ नहीं खा सकता। यह भी शाकाहारी जानवर है और घास पत्ती पर गुजारा करता है।"

वहां से आगे बढ़कर वे बाहर सिंगो के बाड़े तक जा पहुंचे। सौरभ ने पूछा "पापा, यह दौड़ते भागते क्यों नहीं। हमें देख कर छुप क्यों नहीं जाते।" पापा ने कहा, "यह जानते हैं कि ये कैद मे हैं। बहुत दूर से लाये गये हैं। ये ही क्यों, शेर, भालू, चीता, मगर, गैंड़ा सभी तो बन्द हैं यहां। खुले जंगल मे होते हैं तो बात ही और होती है। वहां तो इनके झुंड़ हवा से बातें करते हैं। पर अपने मनोरंजन के लिये हमने इन्हें कैद कर रखा है। जरा सोचो, अगर तुम्हें कोई पिंजरे में बन्द कर दे और यह बंदर तुम्हें चिढ़ाये तो कैसा लगेगा।"

बंटी ने पूछा, "पापा, तो क्या सरकस में भी यह बंदी होते हैं। वहां तो यह खुले भी होते हैं।" पापा ने कहा, "वहां तो इनकी कैद और भी बुरी होती है। इन्हें मार–मार कर वह काम करना सिखाया जाता है जो इनकी आदतों में शामिल ही नहीं होता। क्या जंगल में कभी शेर स्टूल पर बैठता है? क्या भालू साइकिल चलाता है। वे यह सब रिंग मास्टर से डर कर करते हैं। उन्हें कई–कई दिन भूखा रखा जाता है। पेट भर खाना भी नहीं दिया जाता। सर्कस से तो चिड़ियाघर अच्छा। कम से कम सर्कस वाला काम तो नहीं करना पड़ता। वैसे तो कैद, कैद है बच्चों। क्या सर्कस की और क्या चिड़ियाघरों की।"

"उन कौवों को देखो जो आज़ाद हैं। यहां से वहां उड़ते फिर रहे हैं। और वे परिंदे जो पिंजरों में थे। वह शेर, वह चीता देखा था तुमने। उसकी आंखों में झांक कर देखते तो उसकी बेबसी का अहसास होता तुम्हें। कैद में रहने का दुख क्या कम होता है? ये तो बेचारे निरीह प्राणी हैं।"

सौरभ ने पूछा "पापा, हम भी कुछ कर सकते हैं क्या इन निरीह जानवरों के लिये" "हां—हां" पापा बोले, "बस अपने आसपास देखो। अनायास किसी जानवर को मत छेड़ो। उसकी दुम न खीचों। पिंजरे में मत बन्द करो। अगर किसी के यहां पिंजरे में है भी तो उसे तीलियां मत चुभाओ। और जब भी बड़े हो जाओ तब भी इनके प्रति दयाभाव रखो। यह तुम्हें कभी भी हानि नहीं पहुंचायेंगे।"

शाम हो रही थी। दिनभर खूब घूमे थे सब, अब थक गये थे। धीरे—धीरे चलते हुये वे बाहर आ गये। जानवरों की उछल कूद कम हो गई थी वे उदास—उदास आंखों से सबको जाता देख रहे थे। सौरभ, बंटी और नीता गुमसुम थे। घर आते ही सौरभ ने छोटी लाल चिड़ियों का पिंजरा खोल दिया। पहले तो चिड़ियां कुछ समझी नहीं फिर एक लाल उड़ी और दूसरी और फिर तीसरी। सारी चिड़ियाँ उड़ गईं। नीता ने खुशी से ताली बजाई। बंटी ने गुस्से से मुंह फेर लिया और पिताजी ने प्यार से सौरभ के गाल थपथपा दिये। लाल चिड़ियां कुछ देर तो कमरे के भीतर चक्कर काटती रहीं फिर खिड़की के रास्ते दूर कहीं उड़ गईं।
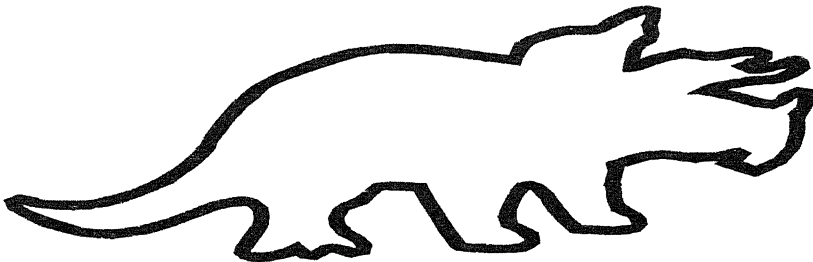
बिल्ली रास्ता काट गई

डॉ० हरिकृष्ण देवसरे

"चलो–चलो, जल्दी चलो।" पंड़ित सखाराम ने पंड़ितानी से कहा। उन्होंने कंधे पर रुमाल डाला और जूते पहनकर तैयार हो गए।

पंड़ितानी अपने आठ बरस के लल्लू को तैयार कर रही थीं। लल्लू तैयार हुआ तो वह खुद तैयार होने लगीं। उधर पंड़ित सखाराम की बेचैनी बढ़ती जा रही थी।

"अरी भागवान! बस का टेम हो गया। ये निकल गई तो दूसरी बस दो घंटे बाद मिलेगी।"

"तो क्या करूँ? तुम्हें तो सवेरे से पूरी–कचौरी के सपने आ रहे हैं। मुझे तो घर के दस काम भी निपटाने पड़ते हैं।" पंड़ितानी ने कुछ झुँझलाकर कहा।

पंड़ित सखाराम चुप रह गए।

वहाँ से बीस मील दूर नया गाँव था। वहाँ के जमींदार के पोता हुआ था। इस खुशी में भोज था। पंड़ित सखाराम सपरिवार आमंत्रित थे।

आखिर पंड़ितानी तैयार हुईं। पंडित सखाराम, लल्लू और पंड़ितानी के साथ घर से चले। तभी स्कूल के हेडमास्टर घनश्याम दास मिल गए। आसपास के गाँव में घनश्याम दास की बड़ी इज्जत थी। उन्हें भी जमींदार ने निमंत्रित किया था।

"आप भी नया गाँव चल रहे हैं न?" पंड़ित सखाराम ने पूछा।

"हाँ!" घनश्याम दास ने कहा।

वे लोग अभी चार–पाँच कदम ही आगे बढ़े थे कि अचानक एक काली बिल्ली सामने से रास्ता काटती हुई चली गई। पंड़ित सखाराम को जैसे एकदम ब्रेक लग गया।

पत्नी और बच्चे को हाथ से रोककर वहीं खड़ा कर दिया। पर घनश्याम दास नहीं रुके।

"अरे–अरे! क्या कर रहे हैं हेडमास्टर जी? देख नहीं रहे हैं, कितना बड़ा अपशकुन हुआ है। बिल्ली... वो भी काली बिल्ली रास्ता काट गई है!"

"तो क्या हुआ?" घनश्याम दास ने कहा।

"रुकिए और लौट चलिए...कुछ देर बाद चलेंगे।" पंडित जी ने कहा।

"मैं इन बातों को नहीं मानता...मैं जा रहा हूँ।"

सखाराम सपरिवार लौट पड़े।

"पर दूसरी बस तो दो घंटे बाद मिलेगी!" पंड़ितानी ने कहा।

"कुछ भी हो! अपशकुन हो जाने पर मैं नहीं जा सकता। घर वापस चलो। दो घंटे बाद चलेंगे, तब तक अपशकुन का दोष मिट जाएगा।" पंड़ित सखाराम घर लौट आए। उस समय बारह बज रहे थे।

घर में आकर उन्होंने पंचांग देखा, माथे पर बल पड़ गए।

"सुनती हो भागवान! अच्छा किया जो हम लौट आए। इस समय ऐसे नक्षत्रों का योग है कि यात्रा करना बड़ा ही अशुभ है।"

"और दो घंटे बाद?"

"हाँ...तब बहुत ही शुभ योग है।" पंड़ित सखाराम मुस्कुराकर बोले, "बेचारे हेडमास्टर...नहीं माने। अशुभ का फल भोगेंगे।"

पंड़ित सखाराम ने अपनी गादी पर लोट लगा ली। थोड़ी देर में नथुने बजने लगे। पंड़ितानी पड़ोस में चली गईं। लल्लू अपने दोस्तों के

साथ खेलने लगा।

पंड़ित सखाराम को इतनी गहरी नींद आई कि जब आँख खुली तो तीन बज रहे थे। पंड़ितानी भी पड़ोसिन के साथ ऐसी मग्न हुईं कि उन्हें भी पता न चला कब तीन बज गए। लल्लू तो अभी गुल्ली–डंड़ा ही खेल रहा था।

पंड़ित सखाराम हड़बड़ाकर उठे। घर में किसी को न देखकर बाहर आए। पंड़ितानी उन्हें देखकर पड़ोसिनों की जमात छोड़कर घर आ गईं।

"कहाँ चली गई थी? घड़ी देख रही हो? तीन बज गए। दो बजे की बस भी निकल गई।" पंड़ित सखाराम झल्लाए।

"तुम खर्राटे लेने लगे, तो मैं क्या करती? ऊबकर पड़ोस में चली गई।"

"अच्छा–अच्छा, अब जल्दी करो। शुभ मुहूर्त निकला जा रहा है।"

पंड़ितानी ने लल्लू को बुलाया। पंड़ित जी ने झटपट जूते पहने और वे सब घर से निकल पड़े। अब तीनों प्राणियों को भूख भी सताने लगी थी।

कहीं कोई अपशकुन फिर न हो जाए, इसलिए पंड़ित सखाराम तेजी से चलते हुए पीपल की छाँव में आकर खड़े हो गए। बस यहीं से मिलती थी।

चार बजे की बस का इंतजार करते–करते पाँच बज गए। भूख से तीनों का बुरा हाल हो रहा था। लेकिन एक उम्मीद थी। भोज तो शाम तक चलता रहेगा। बस किसी तरह पहुँच जाएँ।

तभी एक ट्रक आता दिखा। पंड़ित जी ने उसे बहुत हाथ दिखाया, पर वह रुका नहीं।

"लगता है, बस खराब हो गई है।" पंड़ितानी ने कहा।

"तू कभी शुभ–शुभ न बोलना!... बस को आज ही खराब होना था!"

पंड़ित सखाराम झल्लाए।

"अब यहाँ कब तक खड़े रहोगे? वहाँ तो भोज खत्म हो रहा होगा। चलो अब घर लौट चलो।"

"मैं कहता हूँ तू थोड़ी देर चुप नहीं रह सकती? वहाँ की गरमागरम पूरी–कचौरी छोड़कर, तेरे टिक्कड़ खाने घर चलूँ?" पंड़ित सखाराम पंड़ितानी पर बरसे।

"बापू! वो देखो..." लल्लू ने दूर से आ रहे ट्रक की तरफ इशारा किया।

पंडित सखाराम उसे रोकने के लिए दूर से ही हाथ हिलाने लगे। ट्रक–ड्राइवर भला था, उसने ट्रक रोक दिया। उसने पूछा "कहाँ जाना है?"

"बस नया गाँव तक। भइया, हमें ले चलो...बड़ी कृपा होगी। आज अभी तक बस नहीं आई।" पंड़ित सखाराम गिड़गिड़ाकर बोले।

"बस तो पीछे खड़ी है...खराब हो गई है। चलो, बैठो जल्दी से! पर गाँव के बाहर उतार दूँगा।" पंड़ित सखाराम ने उसकी आखिरी बात तो सुनी ही नहीं। वो तो झटपट ट्रक के पीछे से चढ़ गए। हाथ पकड़कर पंड़ितानी और लल्लू को भी चढ़ा लिया। ट्रक चल दिया।

पंड़ित सखाराम ने कंधे पर टँगे अंगोछे से माथे का पसीना पोंछा। फिर इस तसल्ली से पंड़ितानी और लल्लू को देखा कि अब तो पूरी–कचौरी खाने को मिलेगी ही।

नया गाँव आने पर ट्रक रुका। पंड़ित सखाराम सपरिवार उतरे। वहाँ से जमींदार का घर एक किलोमीटर दूर था। पड़ित जी ने लल्लू का हाथ पकड़ा और तेजी से कदम बढ़ाते चल दिए। पीछे–पीछे पंड़ितानी भी चलीं।

"बापू! भूख लगी है।" लल्लू ने कहा।

"अरे चुप रह! तुझे ही भूख लगी है? मैं तो जैसे हलवा खाकर आया हूँ।" भूखे सखाराम ने लल्लू को झिड़क दिया।

"बच्चे को क्यों डाँट रहे हो? देर तो तुम्हारे कारण हुई है।"

"अब तू अपना मुँह न खोल! चुपचाप चली आ।"

"पर धीरे तो चलो!" पंड़ितानी ने कहा।

भूख से व्याकुल हो रहे सखाराम के चेहरे पर गुस्सा उभर आया। पर वह उसे पी गए। चुपचाप चलते रहे।

जब वे जमींदार के घर के निकट पहुँचने लगे, तो दूर से ही जूठे पत्तलों का ढ़ेर देखकर उनका दिल बैठ गया। वह समझ गए कि भोज समाप्त हो गया है।

जमींदार उस समय घर के सामने पेड़ की छाया में चारपाई पर लेटे थे। पास ही हेडमास्टर घनश्याम दास और गाँव के कुछ बड़े लोग बैठे थे। जमींदार ने पंडित सखाराम को आते देखा तो हैरान रह गए।

"पंड़ित जी, इस वक्त?"

"वो दरअसल बिल्ली रास्ता काट गई थी।" हेडमास्टर जी ने कहा "अपशकुन देखकर पंड़ित जी लौट गए थे। अब शुभ मुहूर्त देखकर आए हैं।"

यह सुनकर सब लोग हँस पड़े। पंड़ित सखाराम एक तो भूख से परेशान थे, दूसरे घनश्याम दास ने जले पर नमक छिड़क दिया। उन्होंने चिढ़ाकर कहा, "आपने तो भोजन कर लिया होगा?"

"हाँ! मैं तो बिल्ली का रास्ता काटकर आ गया था न! लगता है, मेरी वजह से बिल्ली को अपशकुन हुआ होगा।" घनश्याम दास जी की बात पर एक बार फिर लोग हँस पड़े।

पंड़ित सखाराम उस समय बड़े दीन–हीन हो रहे थे। जमींदार को उन पर दया आ गई। उसने कहा "अच्छा बैठिए, मैं देखता हूँ कि आपके भोजन के लिए क्या हो सकता है।" कहकर जमींदार घर के अंदर चले गए।

घनश्याम दास ने फिर चुटकी ली, "पंड़ितजी! आपने तो मेरे लिए कहा था कि घोर विपत्ति आएगी, पर मुझे तो यहाँ भरपेट मालपुए खाने को मिले। आपका शुभ–अशुभ विचार लगता है कहीं गड़बड़ हो गया है।"

जवाब में पंड़ित सखाराम ने कुछ न कहा। वह शर्म से सिर झुकाए

बैठे थे।

हेडमास्टर घनश्याम दास अब गंभीर होकर उनके पास आए "पंड़ितजी! आप तो ज्ञानी हैं, विद्वान हैं, लोग आपकी बात मानते हैं, फिर उन्हें अंधविश्वास का मार्ग क्यों दिखाते हैं?"

पंड़ितानी ने कहा, "हेडमास्टरजी, आप ठीक कह रहे हो। आज तो ये अंधविश्वास के चक्कर में ही मारे गए वरना हम तो आपके साथ ही आ जाते। अगर बिल्ली के रास्ता काटने से कुछ होता तो आपको क्यों न हुआ?"

"और क्या! बस्ती–मुहल्ले में बिल्लियाँ इधर–उधर फिरती ही रहती हैं। उनका शुभ–अशुभ कैसा? अब आप ही बताओ... मेरे साथ तो कुछ भी अपशकुन न हुआ...तो मानते हो न कि ये सब बेकार की बातें हैं?"

"हाँ, हेडमास्टर जी! आज तो मैं अपने ही जाल में फँस गया।" पंड़ित सखाराम ने कहा।

"तो अब आप प्रतिज्ञा कर लीजिए कि गाँव वालों को भी आप अंधविश्वास के जाल से मुक्त करेंगे।" हेडमास्टरजी ने कहा।

"आइए पंड़ितजी! भोजन तैयार है।"

जमींदार की इस आवाज़ ने पंड़ित सखाराम के मुरझाए चेहरे पर मुस्कान बिखेर दी "आपकी बात मान गया हेडमास्टरजी!" कहते हुए वह सपरिवार भोजन के लिए उठे।

तभी उधर से एक बिल्ली आती दिखी। किसी ने चुटकी ली, "पंड़ित जी, बिल्ली...!"

"हुँह...भाड़ में जाए बिल्ली!" भूख से व्याकुल सखाराम भोजन के लिए तेजी से कदम बढ़ाते घर के अंदर चले गए।

किसी ने कहा "इस समय सौ बिल्लियाँ भी रास्ता काट जाएँ, तो भी पंड़ितजी रुकने वाले नहीं। भूख के सामने सारे विश्वास टूट जाते हैं।"

सब लोग हँस पड़े।

अविश्वास

भगवती प्रसाद द्विवेदी

आज बबलू की खुशी का ठिकाना न था। वह मम्मी और पापा के साथ वाराणसी की यात्रा पर निकलने जा रहा था। दोस्तों से वह कई दिनों से पूछताछ करता रहा था कि वाराणसी में घूमने–फिरने और देखने लायक कौन–कौन सी मशहूर जगह हैं। गंगा और उसके तट, विदेशी पर्यटक, विश्वनाथ मंदिर, मैदागिन, लहुरावीर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आदि न जाने किन–किन स्थानों की चर्चाएं होती रही थीं। बबलू ने यह तय कर रखा था कि वहां से लौटकर वह काशी पर एक यात्रा–संस्मरण जरूर लिखेगा।

अभी वे लोग यात्रा की तैयारी कर ही रहे थे कि पापा के एक दोस्त रांची से आ धमके थे और समय न होने पर भी उन्हें थोड़ी देर उनके साथ औपचारिक रूप से बैठना ही पड़ा था। बातों ही बातों में काफी देर हो गयी थी और स्टेशन पर पहुंचते ही ट्रेन के आने का वक्त हो चला था। फिर तो कुली को साथ लेकर वे लोग सीधे प्लेटफार्म की ओर ही बढ़ गये थे।

तभी ट्रेन आकर रुकी थी। प्लेटफार्म पर लोग खचाखच भरे हुए थे। किसी प्रकार कुली ने उन्हें एक डिब्बे में जगह दिलवायी। फिर उसने उनके सामान को ऊपर की बर्थ पर चढ़कर व्यवस्थित कर दिया। पापा उस किशोर कुली को बस देखते ही रह गए। कैसी फुर्ती से उसने

उन्हें प्लेटफार्म पर पहुंचा दिया था और चलती ट्रेन में ही भीतर घुसकर जगह बना दी थी। मगर दूसरे ही क्षण, उस किशोर को कुली का काम करते हुए देखकर पापा का भावुक हृदय करुणा से भर गया था।

एकाएक पापा को इस बात का ख्याल आया कि टिकट तो लेना वह भूल ही गए। "अब कैसे होगा" पापा ने चिंतित होकर मम्मी को यह बात बतायी, मम्मी को भी कोई उपाय नहीं सूझ रहा था।

तभी उस किशोर कुली ने कहा था, "घबराने की कोई जरूरत नहीं, साहब! मैं अभी गया और टिकट लेकर आपके सामने हाजिर हुआ।"

पापा ने फटाफट उसे एक सौ का नोट थमाया। वह हिरण सा कुलांचता हुआ बुकिंग काउंटर की ओर बढ़ा। पापा ने तनिक राहत की सांस ली।

बबलू ने अचरज से पापा की ओर देखते हुए कहा, "पापा, क्या आप उस कुली को पहचानते हैं?"

"नहीं तो! मगर बात क्या है?" पापा ने सवाल किया।

"आपने उसे सौ रुपए का नोट दे दिया, जबकि आप उसे जानते तक नहीं?" बबलू मुंह बिचकाकर बोला।

"हां जी, बबलू ठीक कह रहा है," मम्मी ने नाराजगी जाहिर करते हुए कहा, "ऐसे लड़के चोर–उचक्के होते हैं। पहले विश्वास जीतते हैं, फिर हाथ साफ करते हैं। मगर आप तो बगैर सोचे–समझे किसी भी ऐरे–गैरे नत्थू–खैरे पर विश्वास कर लेते हैं।"

"हां मम्मी!" बबलू ने कहा, "एक हफ्ता पहले ही मैंने देखा था कि एक लफंगा कुली एक बुढ़िया का सामन लेकर नौ–दो–ग्यारह हो गया था और बेचारी बुढ़िया बस रोती–बिलखती रह गयी थी।"

"तो क्या, तुमने उस बुढ़िया की मदद की थी?" पापा ने प्रश्न किया।

"मैं? मुझे तो स्कूल जाने की जल्दी थी। फिर मैं भला कर भी क्या

सकता था!" बबलू ने उत्तर दिया।

अभी उन तीनों में तर्क–वितर्क चल ही रहा था कि एक बगलगीर ने दखलंदाजी करते हुए कहा "ये लोग ठीक ही कह रहे हैं भाई साहब! वह लड़का तो अब आने से रहा। सौ रुपए आपने जान–बूझकर पानी में बहा दिये। इस स्टेशन पर ऐसे उचक्के–लफंगे भरे पड़े हैं। अब आप गार्ड से कहकर टिकट बनवाने की व्यवस्था कीजिये।"

तभी ट्रेन की सीटी गूंजी, पापा ने खिड़की से झांककर पीछे की ओर देखा। गार्ड हरी झंडी दिखा रहा था, अब ट्रेन छूटने ही वाली थी।

पापा का विश्वास भी डिगने लगा। अब कैसे टिकट की व्यवस्था हो पाएगी? फिर उन्होंने अंतिम निर्णय लिया कि जो भी होगा आगे चलकर देखा जाएगा।

ट्रेन ने दूसरी सीटी दी और आहिस्ता–आहिस्ता आगे सरकने लगी। तभी वह लड़का एकाएक हांफता हुआ प्रकट हुआ। उसने दौड़कर तीन टिकट तथा बाकी के पैसे पापा को थमा दिये। पापा ने जब कुली भाड़े के अलावा पांच रुपए उसे और देना चाहा तो उसने एक पैसा भी अधिक लेने से साफ इंकार कर दिया। ट्रेन की गति काफी तेज हो चुकी थी और हड़बड़ी में पापा उसे धन्यवाद देना भी भूल गये थे।

रुपए को जेब में रखते हुए पापा ने गर्व से मम्मी और बबलू की ओर देखा।

अचानक बबलू के दिमाग में एक आशंका कौंधी और उसने कहा, "पापा, जरा टिकट देखें।"

पापा के हाथ से टिकट लेते ही उसने गौर से कुछ देखा, फिर कहा "पापा, इन पर तारीख तो है ही नहीं, कहीं ऐसा तो नहीं कि ये टिकट किसी दूसरे दिन के हों?"

"नहीं बेटे, कभी–कभी टिकट पर मशीन से तारीख स्पष्ट नहीं उगती" पापा ने समझाया।

"मगर भाई साहब!" बगलगीर ने फिर फरमाया, "यहां जाली

टिकटों की बिक्री खूब धड़ल्ले से होती है। जरूर उस छोकरे ने धोखाधड़ी की होगी और बैक डेट के टिकट दे दिये होंगे। इन लोगों का कोई भरोसा नहीं, साहब!"

"तभी तो मैं सोच रही थी कि वह शख्स आ कैसे गया और आया भी तो आपका बख्शीश क्यों नहीं लिया। उसने तो टिकट में ही पचहत्तर–अस्सी रुपए मार लिये होंगे, फिर अलग से क्या लेता!" मम्मी ने तुनककर कहा।

पापा अजीब पशोपेश की स्थिति में आ फंसे थे। ताड़ से गिरे तो खजूर पर अटके! मगर जब तक कोई टिकट चेकर नहीं आता, भला असलियत का पर्दाफाश कैसे होता।

अगले स्टेशन पर जब एक काली वर्दीधारी टिकट चेकर कंपार्टमेंट में घुसा तो पापा के हृदय की धड़कन एकाएक तेज हो गयी। टिकट जाली साबित होने पर, पता नहीं क्या हो? कहीं ऐसा न हो कि टिकट चेकर जुर्माना लेने से इंकार कर दे और इस चार सौ बीसी के लिए जेल की हवा खिला दे! पापा, मम्मी और बबलू को जुर्माने की रकम और जेल दोनों एक साथ नजर आने लगे। नाते–रिश्तेदार, मित्र–शुभचिंतक, जो भी सुनेगा, उनकी बात पर अविश्वास करते हुए सोचेगा, कि शायद वह सपरिवार बेटिकट ही चल रहे हों। कैसा अविश्वास का युग आ गया है।

तभी टिकट चेकर ने सन्नाटा तोड़ा "भाई साहब, टिकट?" और पापा ने कांपते हाथों से बबलू से टिकट लेकर टिकट चेकर को थमा दिये। उसने तीनों टिकटों को गौर से देखा, फिर पेन से तीनों पर सही निशान लगाकर उन्हें पापा को वापस लौटा दिया।

पापा का चेहरा विजय और गर्व से खिल उठा। उन्होंने मम्मी और बबलू की ओर देखा। उन दोनों के चेहरे पर पश्चाताप की रेखाएं स्पष्ट झलक रही थीं।

"पापा, उस भले कुली पर हमने नाहक शक किया।" बबलू दुखी होकर बोला।

"तुमने उस दिन सब्जी मंडी में भी एक गरीब सब्जी वाले पर शक किया था न!" पापा ने सवाल किया।

बबलू को याद आया, उसने सब्जी बेचने वाले पर आरोप लगाया था कि उसने डंडी मारकर कम तोल कर सब्जी दी थी। मगर सब्जी वाले ने बाट उतारकर डंडी दिखा दी थी। दोनों ही पलड़े संतुलित थे। बबलू ने जब खुद हाथ में तराजू लेकर तौली हुई सब्जी दुबारा तौली तो पाया कि सब्जी तो वजन से भी कुछ ज्यादा ही थी। पापा ने जब मुस्कुराकर उस वक्त बबलू की ओर देखा था तो सब्जी वाले ने कहा था, "बाबूजी, गरीबी और गरीब को लोग हरदम अविश्वास की नजर से ही देखते हैं।"

"हां पापा!" बबलू ने उत्तर दिया, "उस रोज सब्जी वाले ने बहुत ही अच्छी बात कही थी, हमें गरीबों पर अविश्वास करने का कोई हक नहीं।"

पापा ने मुस्कान बिखेरते हुए कहा, "इस दुनिया में अच्छे–बुरे लोग हर जगह हैं, बेटे! मगर कहा गया है– विश्वासं फलदायकम! जब तक कोई जायज कारण न हो, कोई ठोस सबूत न हो, किसी के प्रति भी गलत धारणा बना लेना कतई उचित नहीं है।"
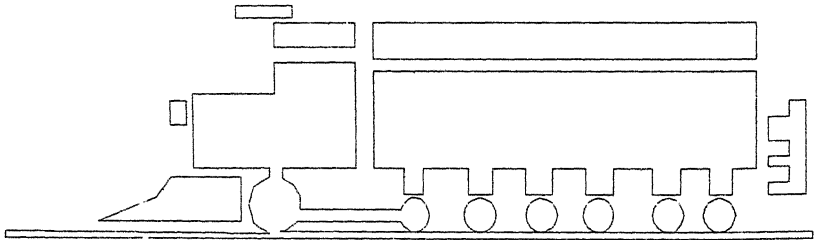
जादुई फिरन

क्षमा शर्मा

मिन्नी पढ़ने–लिखने में बहुत होशियार थी। जो बात एक बार बताई जाती उसे हमेशा के लिए याद हो जाती। लेकिन उसे कथाएं गढ़ने का बहुत शौक था।

कथा बनाकर वह उस कहानी के पात्रों के साथ मौज मनाने लगती। फिर अगले दिन अपनी सहेलियों को उस घटना को बढ़ा–चढ़ाकर सुनाती। कई सहेलियां उस पर भरोसा करतीं तो कई उसकी खिल्ली उड़ातीं।

एक दिन मिन्नी ने अपनी सहेलियों को बताया कि बीती रात वह सौ मंजिला इमारत की सीढ़ियां चढ़–चढ़कर उतरती रही।

"एक–दो भी नहीं पूरी सौ मंजिल की इमारत और उसकी सीढ़ियां चढ़कर कई बार उतरी तू।" एक सहेली ने मज़ाक में कहा।

"हां–हां, यकीन नहीं आता तो मेरी आंखों की तरफ देख लो। रात भर न सोने से लाल पड़ी हुई हैं।" सचमुच मिन्नी की आंखें लाल थीं। तभी दूसरी सहेली ने कहा, "मगर मिन्नी, वह इमारत है कहां? तुमने कहां देखी?"

मिन्नी जवाब देती उससे पहले ही सारी सखियां बोलीं, "सपने में सपने में। हमारी मिन्नी ऐसे सपने बहुत देखती है।"

सहेलियों की बात सुन मिन्नी वहां से भाग गई। वह रुआंसी हो

आई थी। आखिर कोई उसकी बात पर यकीन क्यों नहीं करता। मिन्नी अपने घर की तरफ जा रही थी कि सामने से उसे राजू आता दिखाई दिया। राजू उस मोहल्ले का सबसे शैतान लड़का था। वह एक लम्बा सा कोट पहने था।

"राजू, यह कोट तो बहुत अच्छा है। कहां से आया?" मिन्नी ने पूछा।

"यह सीधा स्वर्ग से आया है।" राजू बोला।

"स्वर्ग से। भला कैसे? स्वर्ग जाकर तो कोई वापस नहीं आता।" मिन्नी की समझ में नहीं आया।

"अरे पागल, तो मैं कौन–सा उस ऊपर वाले स्वर्ग की बात कह रहा हूँ। मैं तो इस धरती के स्वर्ग के बारे में कह रहा हूं। धरती का स्वर्ग यानी कि कश्मीर।" राजू बोला, "और इसे कोट नहीं फिरन कहते हैं।"

मिन्नी का कल्पनाशील दिमाग दौड़ने लगा।" क्या कहा राजू फिरन? अरे हां, मुझे याद आया। मेरी मम्मी के पास भी एक ऐसा फिरन था।"

"अच्छा।"

"तुम्हें पता है वह जादुई फिरन था।" मिन्नी बोली।

"जादुई, वह कैसे?" राजू ने पूछा।

"मालूम, मेरी मां सर्दी में उसे खूब पहनती थीं। फिर जब गर्मियां आतीं तो वह धोकर उसे ट्रंक में नहीं रखती थीं।"

"तो फिर?" राजू बोला।

"वह उसे दोनों तरफ से बांधकर उसमें गेहूं भरकर रख देती थीं। गेहूं उसमें काफी सुरक्षित रहते थे। एक बार क्या हुआ कि मां को याद ही नहीं रहा। सर्दी के दिनों में मां ने वैसे ही बिना धोए फिरन को पहन लिया। उसकी बाजुओं में कुछ गेहूं के दाने अटके पड़े थे। शरीर की गरमी पाकर वे उग आए। मां जब घर से बाहर निकलीं तो उनकी बाजुओं पर गेहूं के पौधे लहलहा रहे थे। उन पर बालियां लटकी हुई

थीं।"

राजू की आंखें आश्चर्य से खुली रही गई, "फिर क्या हुआ?"

"मेरी मां को लोगों ने बताया तो वह जल्दी से घर वापस आ गईं। घर आकर उन्होंने गेहूं की बालियां तोड़नी चालू कीं। वह बालियां तोड़तीं कि बालियां फिर उग आतीं। अब घर में जिधर देखो उधर गेहूं की बालियां ही बालियां दिखाई देतीं। जो सुनता तो आश्चर्य करता।" मिन्नी रुकी तो राजू बोला, "मगर यह किस्सा तो मेरे माता-पिता को भी मालूम होगा। उन्होंने तो कभी नहीं सुनाया।"

"हो सकता है भूल गए हों।" मिन्नी ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखें मटकाते हुए कहा।

"तो अब वह फिर कहां है?" राजू ने पूछा।

"अरे, मत पूछो। उसका भी बड़ा मजेदार किस्सा है। मां के फिरन की बात पूरे शहर में मशहूर हो गई थी कि एक दिन कुछ लोग घर पर आ गए। वे समाज सेवा करने वाले थे। उन्होंने बताया कि एक जगह अकाल पड़ा हुआ है। वहां गेहूं की जरूरत थी। सरकार के भंडार में गेहूं खत्म हो चुका था। उन्होंने मेरी मां से प्रार्थना की कि यदि वह फिरन उन्हें दे दें तो बहुत लोगों की मदद हो सकती है। मां ठहरीं दयालु उन्होंने फौरन वह फिरन उतारकर दे दिया।"

अब तक मिन्नी का घर आ चुका था। राजू को उसकी मां दिखीं तो राजू बोला, "आंटी, काश मैं भी जादुई फिरन को देख पाता।"

"जादुई फिरन कौन-सा भला?" मां ने पूछा।

"वही न आंटी जिसमें गेहूं उगते थे और आपने उसे अकाल पीड़ितों को दे दिया था।" राजू ने कहा।

"जरूर यह ऊटपटांग कहानी तुझे मिन्नी ने सुनाई होगी। आ गया न तू भी उसकी बातों में।" कहती हुई मिन्नी की मां अंदर चली गईं। राजू ने मुड़कर देखा, मिन्नी भी वहां से नौ-दो ग्यारह हो चुकी थी।

*

दूसरा होमवर्क

डॉ० श्रीप्रसाद

अतिमा कक्षा नौ में पढ़ती है और नौ में ही अंशुल भी पढ़ता है। अतिमा और अंशुल दोनों जुड़वाँ भाई बहन हैं। अंशुल और अतिमा के माता–पिता बहुत पढ़े–लिखे हैं। इनके पिता मुख्यमंत्री के सचिव हैं और माँ राजमती महिला महाविद्यालय में पढ़ाती हैं।

उनकी माँ अच्छी कवियत्री भी हैं। उनकी कविताएँ अखबारों और पत्रिकाओं में छपती हैं और रेड़ियो पर प्रसारण भी होता है।

ऐसे पढ़े–लिखे माता–पिता का संस्कार बच्चों में आना ही था। दोनों भाई–बहन पढ़ने में बहुत तेज हैं, शायद शहर के सबसे तेज यही बच्चे हैं।

अतिमा खाना बना रही थी और अंशुल बेसिन पर हाथ धो रहा था। तभी वह अतिमा के पास आया, "मुझे जल्दी से खाना परस दो।" खाना खाकर होमवर्क कर लूँ।"

"अच्छा, अभी परोसती हूँ। थाली दो।"

खाना देते देते अतिमा मज़ाक में बोली, "तुझे तो एक ही होमवर्क करना है, पर मैं तो दो–दो होमवर्क करती हूँ।"

"दो–दो होमवर्क।" अंशुल आश्चर्य से बोला। "दो–दो होमवर्क कैसे?"

"क्यों, दो होमवर्क नहीं करती? एक होमवर्क स्कूल का करती हूँ

और एक होमवर्क यह है, जो मैं कर रही हूँ।''

अंशुल हँसा, ''इस समय कौन सा होमवर्क कर रही हैं?''

''यह'', रोटी और दाल–सब्जी की ओर संकेत करते हुए अतिमा बोली। ''होम माने घर और वर्क माने काम। घर का काम। खाना बनाने का घर का काम कितना जरूरी है। सुबह अपने और माँ के कपड़े धोये। यह भी घर का काम है, यह भी होमवर्क है।''

अतिमा फिर हँसी, ''मेरा होमवर्क दूना हुआ कि नहीं? तुम्हारा तो सिर्फ स्कूल का ही होमवर्क है। खाना खाकर मैं भी स्कूल का होमवर्क करूँगी।''

अंशुल ने अतिमा की बात को महत्व नहीं दिया, ''रोटी खत्म हो गई। थोड़ी दाल भी दे दे'' कहते हुए वह बहस करने लगा, ''खाना बनाना, कपड़े धोना या घर में झाडू लगा देना कोई होमवर्क नहीं है। यह तो घर में लड़कियाँ और महिलाएँ करती ही हैं। माँ भी तो इस तरह के काम करती हैं, चाय बनाती हैं, खाना भी बनाती हैं। पापा तो ये काम नहीं करते। पापा तो सिर्फ नौकरी करते हैं।''

''माँ भी तो नौकरी करती हैं।'' अतिमा बोली।

''इससे क्या, पर पापा अपना काम करते हैं और माँ अपना काम करती है। इसमें किसी तरह की बहस तो है नहीं'' अंशुल ने फिर कहा।

''नहीं, बहस है, अगर तुम सोच पाओ'' अतिमा भी बहस पर उतर आई। ''पुरुष अपना काम करते हैं, यह सही है। महिलाएँ भी अपना काम करती हैं, यह भी सही है। पर तुम्हारे विचार पुराने हैं। तुम उस जमाने की बात कर रहे हो जब पुरूष केवल नौकरी करते थे और महिलाएँ केवल घर का काम करती थीं। आज महिलाएं भी नौकरी करने लगी हैं, इसलिए उनका दूना काम हो गया।''

''तू बहुत बहस करती है। देख, तेरी रोटी जल गई।'' अंशुल रोटी की ओर इशारा करते हुए बोला। रोटी सचमुच जल गई थी।

''ओह!'' बहस में वाकई रोटी चल गई। अतिमा को रोटी जल

जाने का अफसोस था। पर वह अंशुल से अपनी बात मनवा लेना चाहती थी और अंशुल था कि बात मानना ही नहीं चाहता था।

अतिमा ने फिर कहा, "देखो अंशुल, इस तरह सोचो, मैं कक्षा नौ में पढ़ती हूँ। पढ़ती हूँ कि नहीं, बोलो।"

"पढ़ती हो।"

"तुम भी कक्षा नौ में पढ़ते हो। पढ़ते हो कि नहीं, बोलो।"

"पढ़ता हूँ।"

"तो मेरा और तुम्हारा काम हुआ पढ़ना। पढ़ने में मैं और तुम, दोनों बराबर हैं, न कोई छोटा, न कोई बड़ा। संयोग से हम लोगों की कक्षा भी एक ही है।"

अंशुल ने "हाँ" कर दी।

"अब देखो अंशुल" अतिमा बोली, "पढ़ाई में मैं और तुम बराबर हैं। पर मैं घर का कभी–कभी खाना भी बनाती हूँ। यह मेरा अतिरिक्त काम है। यह मेरा दूसरा होमवर्क हुआ। यही मैं कहना चाहती हूँ।"

"यह तो ठीक है, पर..."

"नहीं, पर वर कुछ नहीं" अतिमा को लगा कि अंशुल उसकी बात स्वीकार कर रहा है, बहस यहीं खत्म कर दी जाय। फिर भी बात को उसने और बढ़ाया, "पुरूष अपने काम को अधिक महत्व देते रहे हैं, महिलाओं के काम को कम या बिल्कुल नहीं। तुम भी ऐसे ही सोचते हो। लेकिन मैं तो यह भी कहूँगी कि जो महिलाएँ पढ़ी–लिखी नहीं हैं और केवल घर में काम करती हैं, बाहर कोई काम नहीं करतीं, उनका काम भी महत्वपूर्ण है। यदि महिलाएँ काम बंद कर दें तो घर एक कदम भी आगे न चले।"

अतिमा जितनी पढ़ने में तेज है, उतनी ही बहस में भी। स्कूल की वाद–विवाद प्रतियोगिताओं में वह बराबर भाग लेती है और पुरस्कार भी पाती है। एक बार तो उसने मुख्यमंत्री जी से एक ऐसी बात कही कि मुख्यमंत्री जी भी उसकी प्रशंसा कर उठे। मुख्यमंत्री जी के जन्मदिन पर

उसके पिता जी उन्हें बधाई देने गये थे। अतिमा भी साथ में थी। मुख्यमंत्री जी अतिमा की योग्यता से परिचित थे। सब लोग बात कर रहे थे। अतिमा मुख्यमंत्री जी से बोली, ''अंकल, मैं एक बात कहना चाहती हूँ।''

''कहो, कहो'' मुख्यमंत्री जी बोल पड़े।

''आपकी सरकार में एक विभाग है महिला और बाल कल्याण विभाग। अपने प्रदेश में लगभग सोलह करोड़ की आबादी है, जिसमें लगभग सात करोड़ बच्चे हैं और नौ करोड़ बड़े लोग। आपके बहुत से विभाग हैं जो लगभग आधी आबादी के लिए काम करते हैं और बालकों के लिए केवल एक विभाग है। उसमें भी आधा महिलाओं का, बालकों का आधा विभाग। क्या लगभग आधी आबादी वाले बालकों के लिए पूरा एक विभाग नहीं हो सकता? यह तो प्रदेश में बच्चों की उपेक्षा है।''

मुख्यमंत्री जी और दूसरे लोग अतिमा की बातें सुनकर सन्न रह गये। उसके पापा को लगा कि मुख्यमंत्री जी कहीं उसकी बात को सुनकर नाराज न हो जायं। बड़ी नम्रता से बोले, ''सर, बच्ची है, ऐसे ही कहती रहती है। आप इस पर ध्यान मत...।''

''नहीं, नहीं साहब, बच्ची ने मेरी आँखें खोल दीं, मुझे एक बहुत अच्छा विचार दिया है। देश में बच्चों की लगभग आधी जनसंख्या है। हर प्रदेश में भी बच्चों की आधी जनसंख्या है। मुझे इस पर विचार करना है। मैं दिल्ली में प्रधानमंत्री जी से भी इस विषय में बात करूँगा और अपने प्रदेश के लिए भी अपने मित्रों से बात करूँगा।''

मुख्यमंत्री जी अतिमा की बात सुनकर सचमुच खुश थे। उन्होंने अतिमा की पीठ ठोकी और अपने पी०ए० से कहा, ''इस बात को नोट कर लो। बाद में मुझे याद दिलाना।''

अतिमा के पिता अपनी बेटी की समझदारी देखकर गदगद हो गये।

वह अतिमा अपने भाई से भला बहस में कैसे हार जाती। फिर वह

सही ढंग से तर्क कर रही थी। अंशुल भी सोचने में कमजोर न था, पर वह अतिमा की बात को फिर भी महत्व नहीं दे पा रहा था। शायद इसका कारण उसका पुराना संस्कार ही था।

अतिमा ने फिर एक बार समझाने की कोशिश की, "भैया, तुम पड़ोस में ही देख लो। सक्सेना आंटी सेंट्रल स्कूल में पढ़ाती हैं। सुबह पाँच बजे उठती हैं। अंकिता और प्रफुल्ल के लिए नाश्ता बनाती हैं। उन्हें तैयार करती हैं। फिर बच्चों को दूध देती हैं। अपने और चाचा जी के लिए चाय बनाती हैं। चाचा जी बेड टी पीते हैं। पर वे बेड टी लेने के बाद फिर लेट जाते हैं। इधर आंटी जी स्कूटर से बच्चों को स्कूल छोड़ती हैं। फिर घर आकर तुरंत तैयार होती हैं और पढ़ाने जाती हैं।"

अतिमा आगे बोली, "मैं किसी की आलोचना नहीं कर रही हूँ। पर यह बात मैं देखती हूँ कि सक्सेना आंटी जितना काम करती हैं, उतना काम चाचा जी को नहीं करना पड़ता। यदि उन्हें इतना काम करना पड़े तो वे निश्चित रूप से बहुत परेशान हो जायँ।"

छुट्टी का दिन था। अंशुल खाना खा चुका था, पर बहस के नाते ही उठ नहीं रहा था और उधर बात भी पूरी नहीं हो रही थी।

"ट्रिंग, ट्रिंग।" इसी समय फोन की घंटी बजी। अंशुल ने फोन उठाया। उसकी माँ जो किसी काम से महाविद्यालय गई थीं, उन्हीं का फोन था, "अंशुल बेटे, तुम्हारी मौसीजी की तबियत एकाएक खराब हो गई है। मैं वहीं जा रही हूँ। शाम तक घर आऊँगी। अपने पापा से कहो कि वे मौसीजी के यहाँ तुरंत पहुँचें।"

अंशुल घबड़ा गया। उसकी मौसीजी बहुत अच्छी हैं। दोनो भाई बहनों को बहुत प्यार करती हैं। उसने तत्काल अपने पापा को सूचना दी। पापा बोले, "तुम दोनों घर पर रहो। मैं जा रहा हूँ।"

"मैं भी चलूँगी मौसी जी के पास।" अतिमा रुआँसी होकर बोली।

"अंशुल, तुम घर पर रहो।" उसके पापा बोले। "तुमको शाम को ले जाऊँगा।"

अतिमा और उसके पापा चले गये।

अंशुल अपने होमवर्क में लग गया। होमवर्क समाप्त करके सो गया।

चार बज रहा था, जब अंशुल जागा। इस समय वह चाय पीता था। वह चौके में गया। पर चौके में चाय कहाँ थी? चाय बनाना उसे आता नहीं था। रसोईघर में रखे मसाले और दूसरे सामानों के बीसों डिब्बों में चाय और चीनी का डिब्बा खोजना उसके लिए मुश्किल भी था। यह काम तो अतिमा ही कर सकती थी या उसकी माँ।

वह आकर धूप में कुरसी पर बैठ गया।

तभी वह सोचने लगा, "उसे तो चाय भी बनानी नहीं आती। यदि उसे भूख लगती तो क्या होता? वह खाना भला कैसे बनाता? ये काम, जिन्हें स्त्रियाँ या लड़कियाँ करती हैं, कितने महत्वपूर्ण हैं। इन कामों को आदमी छोटा भले ही कहे, पर इन कामों का महत्व है बहुत। आदमी इन कामों को महत्व नहीं देता, पर महत्व देना चाहिए। अतिमा ठीक ही कहती है, "यदि महिलाएँ काम बंद कर दें तो घर एक कदम भी आगे न चले।" अतिमा से आज उसने बेकार बहस की। अतिमा की सारी बातें सही हैं। वास्तव में वह दो होमवर्क करती है, घर का काम और स्कूल का काम, जबकि वह तो सिर्फ एक ही होमवर्क करता है। इस आधार पर अतिमा को अधिक महत्व मिलना चाहिए।

"टन, टन, टन।" दरवाजे की घंटी बजी। अंशुल ने जैसे ही दरवाजा खोला, उसके पापा, माँ और अतिमा सामने खड़े थे।

"कैसी तबियत है मौसीजी की?" अंशुल ने पूछा।

"ठीक है। इसीलिए तो हम लोग चले आये।" उसकी माँ बोली।

घर में अंदर आते ही अतिमा चौके में गई और चटपट चाय का पानी रखकर उसमें चीनी डालने लगी। अंशुल भी उसके साथ ही गया।

"अतिमा, सुबह मैंने तुझसे व्यर्थ बहस की। तेरी सब बातें सही थीं।" अंशुल बोला।

"सुबह की बहस तेरे दिमाग में कहाँ से आ गई। चल, पापा के पास बैठ, मैं अभी चाय लाती हूँ।" अतिमा बोली।

"नहीं, तेरी सब बातें सही हैं। तू वास्तव में दो होमवर्क करती है।" वह फिर बोला, "आदमी महिलाओं के घरेलू कामों को महत्व नहीं देता, यह ठीक नही है। घरेलू कामों का बड़ा महत्व है।"

अतिमा हँसने लगी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि अंशुल में यह परिवर्तन कहाँ से आया। पर उसे यह पता कहाँ था कि अकेले में अंशुल क्या–क्या सोचता रहा है?

अतिमा और अंशुल, दोनों मिलकर चाय लाये और फिर सब लोग बैठकर चाय पीने लगे।
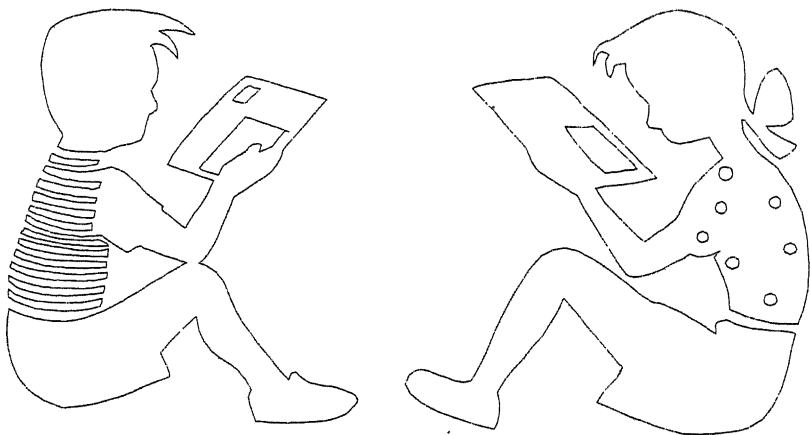
कबूतर उड़ गया

डॉ० शोभनाथ 'लाल'

कूड़े के ढ़ेर पर दो बालक कबाड़ा का सामान बीन रहे थे। उनके कपड़े मैले--कुचैले और जगह--जगह फटे हुए थे। बदन पर मैल के धब्बे साफ दिखाई दे रहे थे। दोनों प्लास्टिक की एक टूटी चप्पल के लिए झगड़ने लगे। दोनों ही अपना--अपना दावा कर रहे थे। छत पर खड़े कुछ लोग उनकी तकदीर पर तरस खा रहे थे। झगड़े की आवाज़ सुन वीरू (वीरेन्द्र) तथा रोली भी कमरे से बाहर छतपर निकल आये। उनकी पढ़ाई डिस्टर्ब हो रही थी।

तभी एक जंगली कबूतर अचानक कूड़े के ढ़ेर पर आ बैठा। दोनों लड़के झगड़ना छोड़ उधर लपके। कबूतर ने उड़ने की कोई कोशिश नहीं की। एक ने उसे दबोच लिया। दूसरा उसका मुंह ताकने लगा। एक के हाथ टूटी चप्पल लगी, दूसरे के हाथ कबूतर। वह बड़ा खुश हुआ। खूब बढ़िया गोश्त पकेगा। उसके मुँह में पानी भर आया। वह कूड़े से उतरकर घर जाने को हुआ। कौन जाए अब रद्दी सामान बीनने में समय गँवाने?

सीढ़ियों से उतरता हुआ वीरू उसके पास दौड़ गया। रोली ने आवाज़ लगाई "भैया! जल्दी जाओ, कहीं वह कबूतर सहित भाग न जाए।" कबूतर उस छोकरे के हाथों में हाँफ रहा था।

कबूतर कूड़े के ढ़ेर पर यूँ ही आकर नहीं बैठ गया था। वह

निरुपाय था, उड़ने में एकदम असमर्थ। वीरू ने डाँट–डपटकर उस लड़के से कबूतर छीन लिया। छतपर खड़े वीरू–रोली के मम्मी–पापा ने भी जोर से डाँटा। वह लड़का हक्का–बक्का कबूतर सौंपकर सबका मुँह ताकने लगा। जैसे, उसने कोई अपराध कर लिया हो। उसने उसे खाने के उद्देश्य से उठाया था न! यही उसका अपराध था। इससे अधिक उसने कुछ सीखा ही नहीं था। वह बड़ा उदास हुआ। चप्पल भी गयी, कबूतर भी हाथ नहीं लगा। वीरू तथा रोली बहुत खुश हुए।

कबूतर छोकरे के हाथ से वीरू के कब्जे में आ गया था। वह बहुत डरा हुआ और सकपकाया हुआ था। उसे क्या मालूम कि इन दोनों में से कौन उसका जानी दुश्मन और प्राणरक्षक है?

कमरा बन्द कर वीरू ने उसे आहिस्ते–आहिस्ते मेज पर रखा। कहीं यह उड़ न जाए। कबूतर से पहली बार आदमी से भेंट हुई थी। उसकी सिट्टी–पिट्टी गुम हो गयी थी। वह मजबूर था। उड़ नहीं सकता था। मगर क्यों? यह हैरानी की बात थी। छेड़ने पर भी उसने कोई हरकत नहीं दिखाई। चुपचाप बैठा रह गया। दो–चार कदम चल लेने के अलावा पंख फड़फड़ाने की भी कोशिश नहीं की। वीरू ने सोचा, शायद पालतू है। प्यार पाकर चुपचाप बैठा है। हाथों में लेकर उसके सुकोमल पंखों को सहलाने लगा।

वीरू के पिताजी को कबूतर का गुमसुम बैठे रहना अस्वाभाविक लगा। उन्होंने उसे वीरू के हाथों से ले लिया। उसके डैनों को बारी–बारी से फैलाकर सूक्ष्मता से निरीक्षण करने लगे। यह क्या, उसके बाएँ डैने के नीचे छाती में गहरे घाव का निशान था। किसी निर्दयी शिकारी के निशाने से घायल होकर कूड़े पर आ गिरा था। इसी कारण वह गुमसुम था। उसकी मजबूरी थी। कहीं रख दो, चुपचाप बैठा रहता। न कुछ खाता, न पीता था। सामने सरसों के दाने तथा कप में रखा हुआ पानी धरा का धरा रह जाता।

खुले आसमान का स्वतंत्र पक्षी कमरे की दीवारों में घिर गया था।

यह जगह उसके लिए अजीब और अजनबी थी। इसलिए वह उदास था। घाव के कारण डैने हिलने–डुलने में असमर्थ थे। चोट का कष्ट तो उसे था ही। वह अपने समुदाय से बिछड़ गया था। अपने जोड़े से विलग हो जाने का भी उसे दुख था। भला चारा–पानी क्या अच्छा लगता! लेकिन भूखा–प्यासा भी वह कब तक रहता? एकान्त पाकर दो–चार दाने चुग लेता, दो–चार घूँट पानी गटक लेता। धीरे–धीरे वह आश्वस्त हो गया कि ये लोग दयालु हैं, हितैषी हैं। इनसे कोई नुकसान नहीं पहुँच सकता।

कबूतर वीरू के परिवार का नया सदस्य हो गया था। दिन में कोई बात नहीं थी। रात में बिल्ली से उसकी सुरक्षा जरूरी थी। वीरू ने खूब मन लगाकर मोटी दफ्तियों का एक बड़ा–सा दरबा बना डाला। उसमें जगह–जगह गोल–तिकोने छेदकर झरोखे बनाये। आने–जाने के लिए चौकोर दरवाज़े का इंतजाम किया। ऊपर से मोटी–मज़बूत दफ्ती का कपट लगा दिया। वीरू के पापा ने खुली हवा में इसे दरवाज़े के ऊपर खूँटियों पर टाँग दिया। हो गयी सुरक्षा की व्यवस्था। सभी संतुष्ट थे। वीरू अत्यन्त प्रसन्न था। अब बिल्ली कुछ नहीं बिगाड़ सकती। रोली के हृदय में खुशी के मारे गुदगुदी उठ रही थी। लोग समझते थे कबूतर इस दरबे में सुख से है।

जब से यह नया प्राणी घर में आया था, सबका काम बढ़ गया था। कोई दरबे की सफाई करता, कोई उसे चारा–पानी देता, कोई उसकी तीमारदारी करता और हर कोई उसकी सुरक्षा के प्रति सजग रहता। कुछ दिनों के बाद वह स्वयं खाने–पीने लगा। घर के लोगों की उसके प्रति आत्मीयता क्रमशः प्रगाढ़ होती गयी। वीरू के पापा उसके घाव पर एक नजर रोजाना अवश्य डाल लेते।

कबूतर का घाव भरने का नाम ही नहीं लेता था। वीरू के पापा ने अपनी सूझ का इस्तेमाल किया। टेरामाइसिन कैप्सूल को तोड़, थोड़ी दवा चम्मच में घोलकर उसे ड्रापर से पिलाने लगे। कड़वी दवा भला वह

क्यों पीता? बड़ी मुश्किल से चोंच खोलकर दो–तीन बूँदें उसके गले में उतारनी पड़तीं। ऊपर से घाव पर मरहम भी लगाया जाने लगा।

दवा प्रभावकारी साबित हुई। कबूतर पहले से अधिक चुस्त दिखने लगा। अब वह छज्जे पर गुटर–गूँ, गुटर–गूँ करके नाचता और बिना संकोच के दाने भी चुग लेता था। लोग उसकी मजबूरी को अपने स्नेह का फल समझकर खुश थे। वीरू–रोली को विश्वास हो गया कि कबूतर उनका पालतू बन गया है। पर, कबूतर इस प्यार के बन्धन को मानता है या नहीं, यह वही जानता था। हाँ, कभी–कभी छज्जे पर पाँखें अवश्य फड़फड़ा लेता था। किन्तु मजबूर था। उड़ान अभी उसके बूते के बाहर की बात थी। पर, सभी लोगों की यही शुभकामना थी कि उसे फिर से उड़ना आ जाए।

पड़ोस के बच्चों के लिए यह कबूतर शुरू से ही आकर्षण का केन्द्र बन गया था। छोटा विकास और नन्ही लक्ष्मी उसे देख–देखकर खुश होते, किन्तु पास जाने से डरते। बड़े–बूढ़े लोग कबूतर के प्रति पूरे परिवार का सेवा–भाव देख दंग थे। कई लोग यह कहते हुए सुने जाते थे "असहाय पक्षी की जान बचाकर आप लोगों ने बड़ी दया की है। ईश्वर इसका सुफल अवश्य देंगे।"

प्रातः काल दरबे में से निकालकर छज्जे पर रखना और सायंकाल उसे दरबे में बन्द कर देना वीरू की दिनचर्या हो गयी थी। छज्जे पर पहुँचते ही कबूतर अपने पंख फड़फड़ाकर न केवल आलस्य दूर करता बल्कि डैनों की ताकत भी आजमा लेता। कभी–कभी वह छज्जे से उड़ने का प्रयास भी करता। किन्तु कभी दो मीटर, कभी चार मीटर और कभी रेलिंग तक ही उड़ कर जा पाता था। और तब बड़ी आसानी से पकड़कर उसे पुनः छज्जे पर रख दिया जाता। कोई छूने की कोशिश करता, तो गर्दन के बाल फरफरा कर काटने को लपकता। मानो, छज्जे और दरबे पर उसका एकाधिकार हो।

एक दिन कबूतर ने खूब जोर लगाकर उड़ान भरी। उसे अपनी

ताकत का अभी सही अंदाज़ नहीं था। कूड़े के उस ढ़ेर पर जा गिरा जहाँ से पहले दिन पकड़ लाया गया था। मोहल्ले का एक अन्य लड़का उसे पकड़ने के लिए दौड़ा। वीरू ने सीढ़ियों से खटखट उतरकर शीघ्र ही उसे पकड़ लिया। लड़का उसे माँगता ही रह गया। वीरू ने डाँटकर उसे भगा दिया ''जा, जा, चला है कबूतर लेने। हम लोग हफ्तों से इसका इलाज कर रहे हैं, इन्हें खाने को दे दें।'' लड़का अपना—सा मुँह लिये चला गया।

कबूतर पुनः मृत्यु के मुँह से निकल आया। यह शांति का पक्षी माना जाता है। चाचा नेहरू अपने जन्मदिन पर एक सफेद कबूतर आसमान में जरूर उड़ाते थे। यह कबूतर भी तो कबूतर ही था न!

बच्चे इसे छू—छूकर बड़े खुश होते थे। उसकी सुन्दरता के क्या कहने! रेशम जैसे सुन्दर, चिकने काले—भूरे—सिलेटी पंख कितने मोहक थे! गर्दन के नीले चमकीले बाल, दो लाल—लाल मासूम आँखें, लाल—लाल सुकोमल पाँव कितने भले लगते थे! भोले—भाले इस पक्षी को भला वीरू किसी को खाने के लिए कैसे दे देता! कितने बच्चे इसी के कारण वीरू के दोस्त बन गये थे।

कबूतर अब पूरी तरह तन्दुरुस्त हो गया था। छज्जे पर बैठे—बैठे आसमान में उड़ते कबूतरों को वह बड़ी ललक से देखता रहता। काश, वह भी नीले आसमान की ऊँचाई को छू लेता!

...और एक दिन प्रातः काल जब कबूतर दरबे से बाहर छज्जे पर आया तो कुछ अधिक फुर्ती से ही पंख फड़फड़ाने लगा। यह तो उसका रोज—रोज का काम था। कोई नयी बात नहीं थी। वीरू ने समझा, वह अपना आलस्य ही दूर कर रहा है, दूसरे ही क्षण कबूतर उचक कर उड़ा तो उड़ता ही गया। छत की रेलिंग, पुराना कूड़े का ढ़ेर, सामने वाला मकान, नीम तथा बरगद के पेड़ों, सबको पार करता हुआ आँखों से ओझल हो गया। आँखों ने दूर तक उसका पीछा किया। पर निराश होकर लौट आयीं। एक ओर पूरे परिवार का पक्षी—प्रेम था, दूसरी ओर

पक्षी की स्वातंत्र्य–प्रियता। खुले आसमान में एक बार फिर कबूतर को उड़ाने भरने की आज़ादी मिल गयी थी।

वीरू हाथ मलता रह गया। रोली की आँखें डबडबा गयीं। दोनों भाई–बहन उदास हो गये। उनके माता–पिता का भी हृदय टीसने लगा। मानो, कोई प्रियजन परदेश चला गया हो। दरबा सूना और छज्जा उदास था। फिर भी भारी मन से उसके लौटने की प्रतीक्षा शेष रह गयी थी। लोग रह–रह कर उसकी चर्चा कर लिया करते थे।

अगले कई दिनों पड़ोस की छतों पर साँझ समय वह आकर बैठा दिख जाता था। शायद दरबे का कुछ मोह खींच लाया हो। प्राण बचाने वालों से शायद उसका किंचित लगाव हो गया हो। पर, पुनः इस बन्धन में बँधना उसे नहीं भाया। सबका दिल कचोटता रह गया। वीरू, संदीप और शोभित ने उसे पकड़ने के कई प्रयास किये, हर बार वह फुर्र हो गया। फिर भी पूरे परविार को घायल पक्षी की जान बचाने का संतोष–सुख तो था ही।

तब से दरबा सूना–सूना टँगा हुआ है। सरसों के दाने बिखर गये हैं। कप का पानी सूख गया है। वीरू–रोली की रोती आँखें आज भी कबूतर के लौट आने की बाट जोहती हैं। आसमान में उड़ते हुए किसी भी जंगली कबूतर की ओर उनके नेत्र बरबस ही उठ जाते हैं। साँझ होते ही प्रतीक्षारत नेत्र अक्सर पास–पड़ोस की छतों पर जा टिकते हैं। शायद वह पुनः लौट आये। पर, किसी पक्षी को बाग–वन छोड़कर सोने का पिंजड़ा भी क्या कभी भाया है?
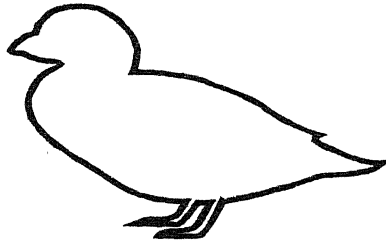
मन के दीप

कमलेश भट्ट 'कमल'

तिमाही परीक्षा का परीक्षाफल घोषित हुआ तो प्रशान्त ईर्ष्या और क्षोभ से भर उठा। कारण था कि विवेक को प्रशान्त से अधिक नम्बर मिले थे, जो कक्षा में पढ़ाई के मामले में प्रशान्त का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी था। कालेज के मैनेजर का लड़का होने के कारण प्रशान्त को इस बात का गलत अभिमान था कि उससे अधिक नम्बर किसी और लड़के को नहीं मिल सकते। लेकिन परीक्षाफल आने के बाद उसका मोहभंग हुआ था और अब वह अपने को अपमानित महसूस करने लगा था।

तीन महीने पहले जब विवेक ने नवीं कक्षा में प्रवेश लिया था तो वह कक्षा में प्रवेश लेने वाला आखिरी छात्र था। आठवीं तक गाँव के स्कूल में पढ़े विवेक को पहले तो लड़कों ने भोंदू ही समझा था—शायद उसके ढीले—ढाले पहनावे और बिखरे—बिखरे बालों को देखकर। लेकिन बाद में जब लड़कों को पता चला कि विवेक अपने स्कूल का टापर है और उसे गणित तथा विज्ञान समेत पाँच विषयों में विशेष योग्यता मिली है तो वे विवेक को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे थे। प्रशान्त भी उन्हीं लड़कों में से था लेकिन वह मन ही मन विवेक से कटा रहता था। क्योंकि उसके नम्बर विवेक से थोड़े कम थे और सच कहा जाय तो तभी से प्रशान्त के मन में यह आशंका भर गयी थी कि कहीं विवेक

उससे बाजी मार न ले जाय। फिर बाद में परीक्षाफल आने पर हुआ भी वही। प्रशान्त को विवेक से पूरे पचास नम्बर कम मिले थे।

परीक्षाफल आने से पहले तक प्रशान्त की विवेक से बोलचाल थी। लेकिन अब प्रशान्त ने चुप्पी साध ली थी। दो–चार बार विवेक ने प्रशान्त से बातचीत शुरू करने की पहल भी की, लेकिन प्रशान्त ही कन्नी काट जाया करता। हार कर विवेक भी प्रशान्त की तरफ से उदासीन होता चला गया। लेकिन जहां प्रशान्त की चुप्पी उसकी कुण्ठा के कारण थी, वहीं विवेक का मौन उसकी विवशता थी। अब प्रशान्त किसी ऐसे षड्यन्त्र के बारे में सोचा करता था कि वह विवेक को पीछे ढकेल कर स्वयं उससे आगे निकल जाय।

कई दिन बीत गये लेकिन प्रशान्त ऐसी कोई युक्ति नहीं निकाल पाया। आखिर एक दिन जब सभी छात्र विज्ञान के प्रैक्टिकल में व्यस्त थे, प्रशान्त लघुशंका के बहाने कक्षा में चला आया। उसने चुपचाप विवेक के बैग से उसके विज्ञान व गणित के नोट्स बाहर निकाले और उन्हें अपने बैग के हवाले करके पुनः प्रैक्टिकल में लग गया।

शाम को कालेज बन्द होने पर विवेक भी और लड़कों की तरह अपना बैग लेकर घर चला गया।

दूसरे दिन कालेज वापस आने पर विवेक ने कक्षा के छात्रों से अपने नोट्स खो जाने की बात कही तो एक–एक कर सभी ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर दी। अलबत्ता, विवेक से बोलचाल न होने के बावजूद भी, उससे सहानुभूति व्यक्त करने वाला प्रशान्त पहला लड़का था। इससे विवेक को प्रशान्त पर थोड़ा बहुत जो शक था वह भी समाप्त हो गया। बाद में विवेक ने क्लास टीचर से शिकायत भी की लेकिन कोई हल नहीं निकला। हल निकलता भी कैसे! प्रशान्त ने तो वे नोट्स फाड़कर अपने घर के सामने वाले गन्दे नाले के हवाले कर दिये थे।

इस घटना ने विवेक को बहुत परेशान कर डाला। वह मानसिक

रूप से खिन्न रहने लगा। एक तो गरीब माँ–बाप का लड़का ऊपर से महीनों की मेहनत पर पानी फिर गया था। उसका मन पढ़ाई से भी उचटता जा रहा था। लेकिन अध्यापकों द्वारा समझाये जाने पर उसने फिर से पढ़ाई में मन लगाना शुरू कर दिया। हाँ, वे नोट्स जो चोरी चले गये थे, उन्हें फिर से बनाने की बात उसने फिलहाल टाल रखी थी।

धीरे–धीरे विवेक फिर से पढ़ाई में रम गया, हालांकि उसे पिछले नोट्स की चिन्ता लगी ही रहती थी। लेकिन अब प्रशान्त मन ही मन कुटिल हंसी हंसा करता था। तभी अचानक प्रशान्त को पीलिया की बीमारी ने आ जकड़ा। स्वस्थ और चुस्त दिखने वाला प्रशान्त पीला पड़ने लगा और एक दिन बिस्तर से जा लगा। एक सप्ताह की लगातार दवा के बाद उसका रोग काबू में आ सका। लेकिन कमजोरी के कारण डाक्टरों ने घर पर ही रहकर आराम करने की सलाह दे डाली। प्रशान्त इस बन्धन से छटपटा कर रह गया, क्योंकि एक ओर जहां उसे पढ़ाई की चिन्ता सता रही थी, वहीं दूसरी ओर वह इस बात से परेशान था कि विवेक फिर उससे आगे निकल जायेगा। लेकिन वह कुछ कर भी तो नहीं सकता था।

इधर प्रशान्त दो सप्ताह की छुट्टी के बाद कालेज जाने की तैयारी में था और उधर कुछ स्थानीय समस्याओं को लेकर छात्रों द्वारा किये जा रहे संघर्ष के कारण नगर के सारे स्कूल कालेज दीवाली की छुट्टी से चार दिन पहले ही एक सप्ताह के लिए बन्द कर दिये गये। प्रशान्त इस अचानक की छुट्टी से और भी कुढ़ उठा, क्योंकि घर पर रहते–रहते उसका जी ऊब गया था। साथ ही वह यह भी सोच रहा था कि यदि एक दिन भी स्कूल जा पाता तो किसी से नोट्स लेकर इस छुट्टी में अपने नोट्स तो तैयार कर लेता!

ठीक दीवाली के दिन जब रंगाई–पुताई के बाद प्रशान्त अपने कमरे की सजावट में व्यस्त था, घर की कालबेल घनघना उठी। स्वयं

प्रशान्त ने उठकर दरवाजा खोला तो सामने विवेक को खड़ा पाकर वह हड़बड़ा सा उठा। लेकिन न चाहते हुए भी उसने विवेक को लाकर अपने कमरे में एक कुर्सी पर बिठा दिया। ''कैसी तबियत है प्रशान्त?'' विवेक ने बात शुरू की।

''बिल्कुल ठीक हूँ...तुम कैसे हो?... तुम्हारी पढ़ाई कैसी है? अब तक तो बहुत पढ़ा दिया होगा!'' अन्तिम वाक्य कहते–कहते प्रशान्त मायूस हो उठा।

''हाँ, पढ़ा तो बहुत दिया गया। पन्द्रह दिसम्बर से हमारी परीक्षा की तारीख भी घोषित कर दी गयी है। लेकिन तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जिस दिन से मैंने तुम्हारी बीमारी की बात सुनी थी, अपने नोट्स बनाते समय मैं उनकी कार्बन कापी भी बनाता गया था कि तुम्हारे काम आयेगी।'' विवेक ने नोट्स का एक छोटा सा पुलिन्दा प्रशान्त की मेज पर रखते हुए कहा और बिना उसकी प्रतिक्रिया की कोई प्रतीक्षा किये यह कहता हुआ उठ गया कि उसके पिता की तबियत खराब है और वह बाज़ार से दवा लेने जा रहा है।

प्रशान्त जब तक स्थिति को समझ पाता, विवेक दरवाजे से बाहर जा चुका था। अब प्रशान्त बुरी तरह छटपटा उठा। उसे लगा कि विवेक अपने छोटे कद में भी कितना महान है और वह स्वयं एक सुन्दर व्यक्तित्व का स्वामी होते हुए भी कितना क्षुद्र है।

शाम तक प्रशान्त अजीब सी उधेड़बुन में पड़ा रहा। उधर घर के चारों ओर बिजली की झालरें और रंग–बिरंगे बल्ब जगमगा रहे थे और प्रशान्त के मन में अंधेरा घिरता जा रहा था। उस अंधेरे में उसे सिर्फ एक ही प्रकाश दिखायी दे रहा था और वह था विवेक का मासूम चेहरा। तभी अचानक उसके पाँव विवेक के घर की ओर चल पड़े और वह तेज कदमों से तब तक चलता रहा जब तक कि विवेक के घर नहीं पहुंच गया। घर क्या, एक छोटा सा कमरा था जिसमें विवेक अपने पिता के साथ रहता था।

विवेक घर की छत पर मोमबत्तियां सजा रहा था। प्रशान्त को पहली बार अपने घर पाकर वह चहकते हुए बोला "प्रशान्त दीवाली मुबारक!.. लेकिन तुम इस समय और यहां, कोई खास बात तो नहीं?"

"हाँ विवेक, तभी तो आना पड़ा" प्रशान्त सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ छत पर आ गया था। वह रेलिंग से टिककर विवेक से बोला "विवेक तुम्हें याद है कि एक दिन संस्कृत वाले मास्टर साहब ने कहा था कि त्यौहार इसलिए नहीं आते कि हम सिर्फ मिठाइयाँ खायें, पटाखे छुड़ाएँ और सिनेमा देखकर मौज मस्ती करें। बल्कि त्यौहारों का महत्व तभी है कि हम ऐसे अवसरों पर मन का मैल साफ करके दूसरों की भलाई सोचें और उनकी खुशियों में हाथ बँटायें, हम खुद भले बनें और दूसरों को भी भला बनने की प्रेरणा दें।" विवेक बातचीत का सन्दर्भ पकड़ ही नहीं पा रहा था। उसके पास चुपचाप सुनते जाने के अलावा कुछ सूझ नहीं रहा था। प्रशान्त ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा "विवेक आज दोपहर में जब तुम अपने नोट्स लेकर मेरे पास आये तो अचानक मेरी आँखें खुल गयीं। मैं तो तुम्हें अपना दुश्मन मान बैठा था और तुम थे कि सदा मेरी भलाई की बात सोचते रहे। इसीलिए मुझे लगा कि जब तक मैं अपने मन के अंधियारे को नहीं मिटा लेता तब तक मेरे लिए इस दीवाली का कोई मतलब नहीं रह जाता।"

विवेक प्रशान्त की उपदेश जैसी बातों से उकता रहा था लेकिन प्रशान्त था, उसे कुछ बोलने ही नहीं दे रहा था "विवेक तुम्हें आश्चर्य होगा कि तुम्हारे नोट्स की चोरी मैंने की थी कि तुम्हें अगली परीक्षाओं में पीछे कर सकूँ। मैं नहीं कह सकता कि मुझे इस बात का कितना दुख है कि वो नोट्स मैंने फाड़कर गन्दे नाले में बहा दिये थे। लेकिन आज के दिन इस रोशनी की कसम खाता हूँ कि जब तक पिछले नोट्स की कापी बनाकर तुम्हें न दे दूँगा, उन्हें मैं भी नहीं पढूंगा। तुम मेरा विश्वास करो कि इस कालेज में हम जब तक पढ़ेंगे तब तक एक दूसरे से मिल जुलकर पढ़ेंगे। आज से तुम मुझे अपना दोस्त बनाना स्वीकार कर

लो।" इतना लम्बा वक्तव्य देते–देते प्रशान्त अधीर हो उठा। उसका गला भर्रा आया।

विवेक प्रशान्त की बातें सुनकर एक बारगी हैरान रह गया लेकिन प्रशान्त में आये परिवर्तन ने उसे गदगद कर दिया था। उसने प्रशान्त का हाथ अपने हाथ में ले लिया था और उसे कमरे में लाकर मिठाई की प्लेट उसके आगे कर दी।
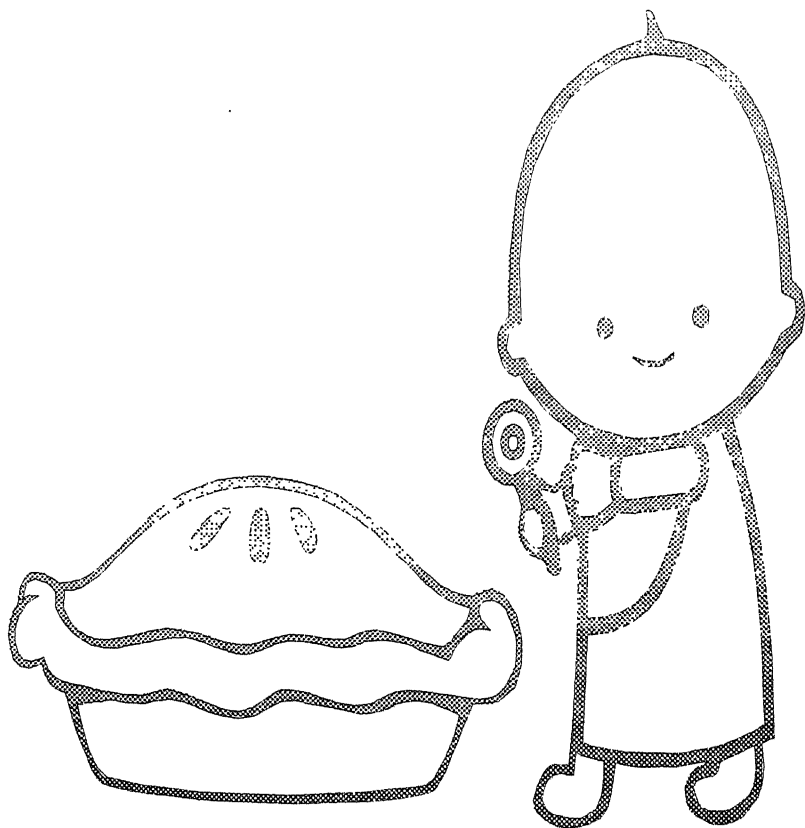
चाह को राह

नागेश पांडेय 'संजय'

गांव के लोग उसे रामकेसन या किसनुआ कहते थे। वैसे उसका सही नाम रामकृष्ण था। प्रचलन में आने के कारण उसका सही नाम दब गया। स्कूल में भी रामकेसन ही लिखा था। स्कूल पांचवीं तक था। हर कक्षा में बारह–तेरह के हिसाब से साठ बच्चे थे।

साठ बच्चे और एक अध्यापक। प्रधानाचार्य से चपरासी तक के सारे काम उनके नाम। शायद इसीलिए छोटी–मोटी बातों पर सोचने की फुर्सत नहीं रहती थी और कई रामकृष्ण रामकेसन हो गए थे। खैर, इससे क्या? नाम से थोड़े ही कुछ होता है, काम से होता है।

अध्यापकजी मन से पढ़ाते थे। कभी–कभी कहते, "लगन से पढ़ो। हां, पांचवीं जमात तक ही पढ़ के न रह जाना। शहर जाकर पढ़ना और बढ़ना। खूब पढ़ोगे तो लकीर टूटेगी, नहीं तो इस गांव में तो भेड़चाल का हिसाब है।"

पढ़ने से लकीर कैसे टूटेगी, यह बात रामकेसन के अलावा किसी के समझ में नहीं आती थी। शायद तभी पांचवीं कक्षा पास करके रामकेसन ने घर वालों से लोहा लिया तो पिता ने कहा, "क्या करेगा रे और पढ़ के? कौन सी नौकरी करनी है तुझे। खेती–बाड़ी है, इसे कौन संभालेगा।"

रामकेसन ने कहा, "बापू, पढ़–लिखकर खेती–बाड़ी नहीं की जा

सकती क्या? और क्या जरूरी है, जो पढ़ते हैं, नौकरी के लिए ही पढ़ते हैं...। बापू, पढ़ लिखकर खेती–बाड़ी के बारे में और अधिक जानकारी मिलेगी। उन्नत बीजों के बारे में पता चलेगा। नए तौर–तरीकों से पैदावार भी तो बढ़ेगी।"

"बड़ा आया पैदावार बढ़ाने वाला।" बापू बड़बड़ाते।

"पढ़ लेने दो" अम्मां पक्ष लेकर कहतीं लेकिन बापू का नपा–तुला जवाब होता "नहीं।"

रामकेसन को इन बातों की परवाह न थी। वह छोटा जरूर था लेकिन बातें बड़ी सोचता था। अब अच्छे और बड़े काम के लिए संघर्ष तो करना ही पड़ता है। उसने विजय पाने के लिए घर छोड़ दिया। हां, एक जोड़ी कपड़े और अपने बचत के पैसे के सिवाय कुछ न ले गया। यह बात उसने एक चिट्ठी में लिख दी थी। चिट्ठी में यह भी लिखा था–

"मुझे पढ़ना है। लकीर तोड़नी है। पढ़–लिखकर वापस गांव आ जाऊँगा। मुझे खोजना नहीं। नहीं तो...।"

आगे और कुछ नहीं लिखा था। खोजने पर कहीं कुछ ऐसा–वैसा न कर बैठे, यह सोच घर वाले कलेजे पर पत्थर रख बैठ गए। हां, उन्होंने क्या सारे गांव वालों ने अध्यापकजी को जमकर कोसा। बच्चों को भड़काने के लिए उन्हें बुरा–भला कहा।

रामकेसन इलाहाबाद चला गया था। वहां का शैक्षिक वातावरण उसे रुचा। वह एक स्कूल में गया। अपने प्रवेश की बात कही तो प्राचार्य ने झिड़का, "बिना किसी अभिभावक की अनुमति के कैसे ले लूं? फीस, ड्रेस, किताबों के पैसे कहां से लाओगे तुम? और फिर क्या पता तुम पढ़ने ही आए हो या चोरी करने?"

"मैं चोर नही हूं।" रामकेसन का दिल रोने को हो आया। उसका रुआंसा चेहरा उसकी सच्चाई का प्रमाण पत्र नहीं था और फिर प्राचार्य की विवशता भी ठीक ही थी। रामकेसन चुपचाप वहां से चल दिया।

परिस्थितियों की परीक्षा कठिन थी लेकिन रामकेसन ने भी हिम्मत हारने के लिए घर नहीं छोड़ा था। वह गांव का था। मजदूरी कर सकता था। बढ़ने की ललक व्यक्ति को साहसी बनाती है। मजदूरी करके रामकेसन के पास कुछ पैसे जमा हुए तो उसने कक्षा छः की किताबें खरीद लीं। दिन भर मजदूरी करता और शाम को खम्भे के नीचे बैठ बल्ब की रोशनी में पढ़ता और वहीं सो जाता। इस पढ़ाकू बाज मजदूर को देख उसके साथी भी उत्साहित हुए। किताबों में उनकी रुचि हुई। यद्यपि उनकी मंजिल अक्षर पहचानने तक ही सीमित थी।

जुलाई से अक्टूबर होने को आया। रामकेसन यह सोचकर परेशान था कि उसे परीक्षा में बैठने को तो नहीं मिलेगा।

भाग्य और कर्म में बड़ा जो भी हो लेकिन कर्म करने वाले का साथ भाग्य एक न एक दिन देता अवश्य है। रामकेसन को खंभे के नीचे बैठ पढ़ता देख बालेन्द्र "बालक" जी देखा करते थे। बालकजी बच्चों के प्रतिष्ठित लेखक थे। उनकी कहानियों की कई किताबें छप चुकी थीं। उन्होंने एक दिन रामकेसन के पास बैठकर उसकी संघर्ष गाथा सुनी तो प्रभावित हुए बिना न रहे। सहसा ही उनके मुख से निकला, "चलो, तुम मेरे घर रहो। मैं तुम्हारा नाम लिखा दूंगा। आराम से पढ़ना।"

रामकेसन की आंखें भीग गईं। चाह को राह मिल गई। स्कूल में उसका नाम लिख लिया गया। वह मेहनत और लगन से पढ़ाई में जुट गया।

समय मिलने पर वह 'बालक' जी की किताबें पढ़ता। उसे गर्व होता है कि वे बच्चों के सच्चे लेखक हैं। जैसा लिखते हैं, वैसा करते हैं।

बालकजी के अपना कोई बच्चा न था। उनकी पत्नी भी गुजर चुकी थीं। शाम होते ही ढ़ेर सारे बच्चे उनके घर आ धमकते, "चाचा, चाचा! सुनाओ कहानी।"

इस बहाने रामकेसन की दोस्ती अच्छे परिवार के अच्छे बच्चों से

हो गई। उसके मन पर संकोच की जो केंचुली चढ़ी थी, धीरे–धीरे उतरती गई। 'बालक' जी की कहानियों से उसके जीवन को पर्याप्त प्रेरणा मिलती। वक्त कितनी जल्दी बीतता है, इसका अंदाजा नहीं। रामकेसन को इलाहाबाद आए सात साल हो रहे थे। वह अपने गांव भी छः सात बार हो आया था। अब घर वाले उससे नाराज नहीं थे। बापू की सोच में भी बदलाव आ गया था। रामकेसन की भेजी चिट्ठियां वे खुद पढ़ लेते थे।

रामकेसन अब इण्टर में पढ़ रहा था। वह केवल पढ़ता ही नहीं, पढ़ाता भी था। उससे पढ़ने वाले बच्चों में ज्यादातर गांव के असुविधाग्रस्त बच्चे थे। वह उनमें उत्साह भरता। उनका संकोच मिटाता। उसे लगता था कि शैक्षिक स्तर से हम लोग कितने भी परिपक्व क्यों न हो जाएं, व्यवहार की दृष्टि से पीछे रह जाते हैं। हम बात करने से हिचकते हैं। हिचकिचाहट के कारण हम अपनी सही बात भी प्रमाणित नहीं कर पाते। किताबों के बाहर की कोई दुनिया है, हमें नहीं मालूम। कूप–मंडूक रहने की स्थिति रामकेसन हटा रहा था।

रामकेसन पढ़े लिखे लोगों से मिलता तो खूब बतियाता। उनका व्यावहारिक अनुभव और ज्ञान प्राप्त करता।

उसने सोच रखा था कि आगे चलकर उसे अध्यापक बनना है। वह अध्यापन के लिए प्रतियोगिता–परीक्षाओं के बारे में काफी जानकारी हासिल करता रहता।

दिन बीतते गए। इधर रामकेसन ने बी.ए. पास किया, उधर उसका चयन बी.एड. के लिए हो गया। इलाहाबाद में ही रामकेसन ने बी.एड. की पढ़ाई की। उसके बापू बूढ़े हो चले थे। अब वह गांव जाकर उनकी सेवा करना चाहता था। आगे और पढ़ेगा लेकिन स्वयंपाठी छात्र के रूप में। वह चाहता था कि 'बालकजी' उसके साथ चलकर रहें, किन्तु यह संभव न था।

बालकजी ने ऊपरी मन से रामकेसन को जाने की आज्ञा दी। वह

गांव चला अया। उसकी नियुक्ति एक स्कूल में हो गई। रामकेसन ने अध्यापन और अध्ययन साथ–साथ करने की चुनौती स्वीकारी। एम.ए. अच्छे अंकों से करने के बाद वह शहर के एक कालेज में नियुक्त हो गया।

वह प्रशंसा का वास्तविक अधिकारी और प्रेरणा का अक्षय स्रोत बन गया।

डूबने से पहले

रंजना सक्सेना

रोहित आज बहुत गुस्से में था। उस के स्कूल में 'फेट' लग रही थी, जिस में वह भी एक स्टॉल लगाना चाहता था। पर, पापा ने यह कह कर उसे इंकार कर दिया कि अभी वह बहुत छोटा है, बड़ा होने पर ही वह स्टॉल लगा सकता है।

रोहित तीसरी क्लास में पढ़ता है। अभी उस की उम्र मुश्किल से आठ नौ साल होगी, किन्तु उसे लगता है कि वह बहुत बड़ा हो गया है। उसके कई दोस्त 'फेट' में स्टॉल लगा भी रहे थे। स्कूल पहुंच कर भी उसका मन किसी चीज़ में नहीं लग रहा था। जो लड़के स्टॉल लगा रहे थे, खुशी–खुशी एक दूसरे से अपनी की गई तैयारियों की बात कर रहे थे। रोहित को गुमसुम सा बैठा देख सबने उससे बोलने की बहुत कोशिश की। परंतु असफल हो सब अपने–अपने काम में लग गए।

स्कूल से लौटते–लौटते उसने निश्चय कर लिया था कि वह कोई ऐसा काम कर दिखाएगा कि लोग मान जाएंगे कि वह भी अब बड़ा हो गया है। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह करे तो क्या करे? अचानक उसके दिमाग में आया कि बड़े लोग ही हमेशा घर में पैसे लेकर आते हैं। पापा, चाचा ही पैसा ला कर घर का खर्च चलाते हैं, शायद पैसा कमाने से ही लोग बड़े बनते हैं। मैं भी पैसे कमा कर दिखाऊंगा उसने मन ही मन निश्चय किया।

रोहित के घर के पास ही रहने वाला एक लड़का दीपक ज्यादातर उसे खूब पैसे लाकर दिखाता था। "चलो, उससे ही पूछा जाए।" सोच कर रोहित दीपक के पास पहुंच गया। दीपक उसे घर के बाहर ही मिल गया। उसकी समस्या सुन कर वह हंसते हुए बोला, "अरे, पैसा कमाना तो बहुत आसान काम है। देखो, मेरे पास कितने पैसे हैं?"

"पर, तुम्हारे पास इतने पैसे आते कहां से हैं? क्या तुम्हारे पापा देते हैं?" रोहित ने पूछा तो दीपक बोला, "नहीं, यह तो मैंने खुद कमाए हैं।"

"अच्छा!" हैरत भरी आवाज में रोहित ने कहा, "क्या मैं भी तुम्हारी तरह पैसे कमा सकता हूं?"

"क्यों नहीं?" दीपक फुसफुसाते हुए बोला, "चलो मेरे साथ"

"कहां?"

रोहित के पूछने पर वह बोला, "चलो तो।"

दीपक बाज़ार के बीच में ही एक दूकान में उसे ले गया, जहां जगह–जगह पर लोग लॉटरी के निकट बेच रहे थे। भीड़ होने के बावजूद दीपक उसे किसी तरह लॉटरी स्टॉल तक ले ही गया।

"पैसे हैं?" दीपक ने पूछा

"क्यों?"

रोहित के पूछने पर दीपक मुस्कुराते हुए बोला, "यही तो है वह जगह, जहां से पैसे कमाए आते हैं। अगर तुम एक रुपया लगाओगे तो पूरे दस रुपए या इससे भी ज्यादा तुम्हें मिल सकते हैं।"

थोड़ी देर सोचने के बाद रोहित ने दीपक को वह रुपए निकाल कर दे दिए जो पापा ने उसे किताबें खरीदने को दिए थे। टिकट खरीद कर उस के हाथों में देकर दीपक बोला, "अब देखना, कल सुबह तुम्हारे पास कितने सारे रुपये होंगे।"

सारी रात रोहित यह सोच–सोच कर खुश होता रहा कि जब कल पापा को ढ़ेर रुपए देगा, तो वह भी मान जाएंगे कि मैं बड़ा हो गया हूं।

सुबह पेपर देखकर उस के होश उड़ गए। उस के एक भी टिकट को इनाम नहीं मिला था। इतने में पापा की पुकार सुन वह चौंक उठा। उसे देखते ही पापा ने उससे सवाल किया "कल तुम लॉटरी स्टॉल गए थे?" वह चौंक उठा, पापा को कैसे पता चला? "बोलो! क्या बगल वाले शर्मा जी ठीक कह रहे हैं कि कल उन्होंने तुम्हें वहां देखा था?" पापा की तेज़ आवाज़ सुन कर उसकी झूठ बोलने की हिम्मत न हुई। उस का डरा हुआ चेहरा देख कर पापा ने प्यार से उससे कहा कि अगर वह सच बोलगा तो वह उसे कुछ नहीं कहेंगे।

हिम्मत जुटा कर उस ने सच उगल दिया। थोड़ी देर पापा उसे खामोशी से देखते रहे, फिर उसे अपने पास खींच कर बोले, "बेटा! अगर तुम वास्तव में बड़े बनना चाहते हो तो तुम्हें अपनी पढ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। कुछ पाना चाहते हो तो मेहनत भी करो। यह लॉटरी वाले सब को लूटते हैं। यह तो एक प्रकार का जुआ है, जिसमें हार हमेशा टिकट खरीदने वाले की ही होती है।"

"दीपक के पास फिर इतने रुपए कहां से आते हैं?" रोहित ने अपने पापा से प्रश्न किया। रोहित का सवाल सुन पापा ने उसे समझाते हुए बताया, "दीपक खुद लॉटरी नहीं खरीदता। वह तो तुम जैसे भोले–भाले लोगों को वहां तक बहका कर ले जाता है, और लॉटरी स्टॉल वालों से कमीशन वसूल करता है।"

रोहित की आंखें शर्म से झुक गई। उसने पापा को वचन दिया कि वह आगे से कोई भी ऐसा काम नहीं करेगा। पापा ने मुस्कुराते हुए कहा, "तुम फेट में स्टॉल लगाना चाहते हो न। ठीक है, मैं तैयार हूं। किंतु यह स्टॉल तुम अकेले नहीं लगाओगे। मैं भी वहां तुम्हारा हाथ बंटाऊंगा।"

"हुर्राऽऽ!" रोहित उछल कर पापा की गोद में चढ़ गया।

प्यारा चिरमी

हरिवल्लभ बोहरा 'हरि'

सुबह सूरज आसमान पर चमकता हुआ निकलता है, तो पीली रेत के कण झिलमिला उठते हैं। दोपहर होते–होते सूरज की गरमी रेगिस्तान के बाशिन्दों को चुभने लगती है। फिर सूरज डूबने लगता है और रेगिस्तानी बच्चे सोचते हैं सूरज उनके कोसने से नष्ट हो गया है। यह अन्तिम सूर्यास्त है। मगर ऐसा होता नहीं, दूसरे दिन सूरज फिर निकल आता है।

सोनो दादी की कही ऐसी अनगिनत बातें मुझे याद हो आती हैं जब–जब मैं ढाणी के एक कोने पर खड़ी लटा–लूंब जाल, उससे लगती आधी ढही हुई झोपड़ी और गारे से खड़ी धूल–धूसरित दीवार को देखता हूं। इसी दीवार के सहारे बैठा करती थी सोनो दादी, जो हमें भागकर या रेंगकर इधर–उधर चले जाने से रोकने के लिए किस्से कहानियां सुनाया करती थीं। मुझे याद है एक बार जब हम सोनो दादी को घेरकर बैठे उनकी बातें सुन रहे थे, उसी समय मेरे बब्बा चाचा ऊंटों का रेवड़ हांककर वापस लौटे थे। ऊंटों के रेवड़ को 'बरग' कहा जाता है। लाली बुआ ने हमेशा की तरह उनके आगे छाछ की तासली और बाजरे की मोटी–मोटी दो रोटियां रख दीं। साथ में गुड़ की एक डली थी। बब्बा चाचा ने बेमन से छाछ पी और रोटी खाई। गुड़ तो उन्होंने छुआ भी नहीं। मैंने देखा उनके चेहरे पे बहुत थकान जाहिर हो रही

थी।

सोनो दादी के पूछने पर उन्होंने बताया कि आज एक ऊंटनी अचानक खो गई। उसको ढूंढ़ने में बहुत दूर–दूर तक भटकना पड़ा। ऊंटनी तो मिली भी नहीं, मगर हां देखो आज यह क्या हाथ लगा है। बब्बा चाचा कुछ भूली चीज़ याद करते उठे और अपने बड़े सारे झोले में से बिल्ली जैसा रोंयेदार जीव निकालकर ले आए। मुझे बताया गया कि वह खरगोश का बच्चा था, जो ऊंटनी ढूंढ़ने निकले बब्बा चाचा को एक झाड़ी में दुबका हुआ मिला था। शायद उसकी मां किसी मुसीबत का शिकार हो चुकी थी या फिर मर चुकी थी।

उन्हीं दिनों हमारी एक बकरी, जिसका नाम गोरल था, ने बच्चे दिए थे, परन्तु दुर्भाग्यवश वे बच्चे जीवित नहीं बचे। गोरल के थनों में से रह–रहकर गाढ़ा दूध टपक उठता था। मेरी मां ने उस खरगोश के बच्चे का मुंह गोरल के थनों से लगा दिया। गोरल पहले तो दो–चार बार इधर–उधर कूदी मगर आखिर में वह उस खरगोश को दूध पिलाने को राजी हो गई।

खरगोश, जिसे मैंने नाम दिया था, चिरमी। चिरमी मेरा पक्का दोस्त बन गया। वह रात मेरे साथ ही रजाई में दुबक कर सोता। दिन में जब मैं, भेड़–बकरियों को चराने जाता, तब वह नन्हां–सा खरगोश 'चिरमी' मेरे आगे पीछे कूदता, दौड़ता, चलता। मेरे दिन बड़े मजे से गुजर रहे थे। बसंत का मौसम बीता, गर्मियां गईं। बरसात के पीछे कड़कड़ाती सर्दी आई।

सर्दियों की एक रात हम अपने–अपने घरों में रजाइयों के अन्दर दुबके मीठी नींद सो रहे थे। हमारे जानवर बाहर बाड़ों में बन्द थे। तब बहुत जोर की बारिश हुई। ओले भी पड़े। हमारी बहुत सारी बकरियां तो बच गईं पर कुछ भेड़ों के साथ गोरल नाम की वह बकरी मर गई जो मेरे दोस्त चिरमी की धाय–मां थी। दूसरे दिन चिरमी दिन भर बिना खाये–पीये, आंखें मूंदे चुपचाप पड़ा रहा। जब हम बाड़े की सफाई करने

और मरे हुए पशुओं को हटाने में लगे हुए थे, चिरमी धीरे से उठा और जंगल में भाग गया।

एक तो हमारी भेड़—बकरियां मर गईं, ऊपर से मेरा दोस्त खरगोश भी चला गया। रोते रहने और देर रात तक जागते रहने से मैं बीमार पड़ गया। सोनो दादी ने मुझे सिगड़ी के पास बिठाकर ताप दिया और गुड़ काली मिर्च की कड़वी उकाली पिलाई। तभी मुझे लगा अन्दर वाले कमरे में कुछ 'खट्—खट्' हो रही है। जाकर देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मेरा दोस्त चिरमी, पलंग पर रखी रजाई के नीचे दुबकने का प्रयास कर रहा था।

चिरमी को देखकर मेरी जान में जान आई। मैंने सोचा अगर यह दुबारा जंगल में दौड़ गया तो हो सकता है वापस ही न आए या फिर किसी जंगली जानवर या मेरे पड़ोसी माखन के हत्थे चढ़ जाए। मैंने चिरमी के गले में पट्टा डाल दिया और उसे डोरी से बांध दिया।

मैं नहीं जानता था कि जिस चिरमी को "भाग न जाए" के डर से मैं बांध रहा हूं, एक दिन उसे मैं स्वयं जंगल में भगा दूंगा। हुआ यूं था कि एक दिन हमारी ढाणी में बी.एस.एफ. का एक बड़ा अफसर आया। उसकी बब्बा चाचा से जान—पहचान थी। चाचा ने उससे कहा, "कल मैं आपको खरगोश का मीठा मांस खिलाऊंगा।" हमारी ढाणी में आने वाले मेहमानों को बढ़िया चीज़ खिलाने की परम्परा है।

रात को जब मैं अपने बिस्तर पर सोने गया तो रह—रह कर मेरे कानों में बब्बा चाचा की अफसर से कही हुई बात गूंज उठती। मैंने चोर नज़र से चिरमी को देखा। चिरमी भी शिकायत भरी नज़रों से मुझे देख रहा था। मुझे लगा, चिरमी मुझसे पूछ रहा था "क्यों, मैं क्या इसी दिन के वास्ते तुम्हारे घर में लाया गया था?" मैं, ज्यादा देर तक चिरमी से नज़रें नहीं मिला सका। मैंने निगाहें फेर लीं। पर निगाहें फेर लेने से कोई मन का बोझ हल्का थोड़े ही हो जाता है। मैंने सोचा यदि उस दिन जंगल में भाग कर गया हुआ चिरमी वापस नहीं आता, तो बब्बा चाचा

अपने दोस्त को क्या खिलाते? और सोचते–सोचते ही मुझे समाधान मिल गया।

निर्णय करके मैं उठा। आंखें मूंदकर निश्चिन्त पड़े चिरमी को हल्के से थपथपाकर जगाया। उसकी डोरी खोल दी। गले में बंधा पट्टा भी उतार लिया। हौले–हौले कोठे का दरवाजा खोला। विदाई की घड़ी में मैंने चिरमी के सिर पर हाथ फिराया, उसे चूमा और अपने हृदय से लगा लिया। मैंने साफ–साफ सुना, उसका हृदय भी जोर–जोर से "धक्–धक्" कर रहा था– बिल्कुल रेल के दौड़ते इंजन की तरह। मैंने उसे डबडबाई नजरों से देखा।

उसकी आंखों के कोर भी गीले थे। हृदय पर पत्थर रखकर मैंने चिरमी को रेत के धोरे पर खुला छोड़ दिया। कुछ ही देर में अपने पैरों से हल्की–हल्की धूल उड़ाता मेरा प्यारा खरगोश चिरमी आंखों से ओझल हो गया। चिरमी से विदा लेकर मैं वापस मुड़ा, तो देखा दरवाजे की ओट में एक जोड़ी आंखें मेरी ओर ताक रही हैं। उन नजरों में मेरे लिए प्रशंसा और शाबासी थी। हां, वो नजरें मेरी मां की थीं। मां का सम्बल पाकर मेरे मन का बोझ हल्का हो गया। मैं, मां से लिपट कर रो पड़ा। आंखों से आंसुओं का झरना बह निकला।
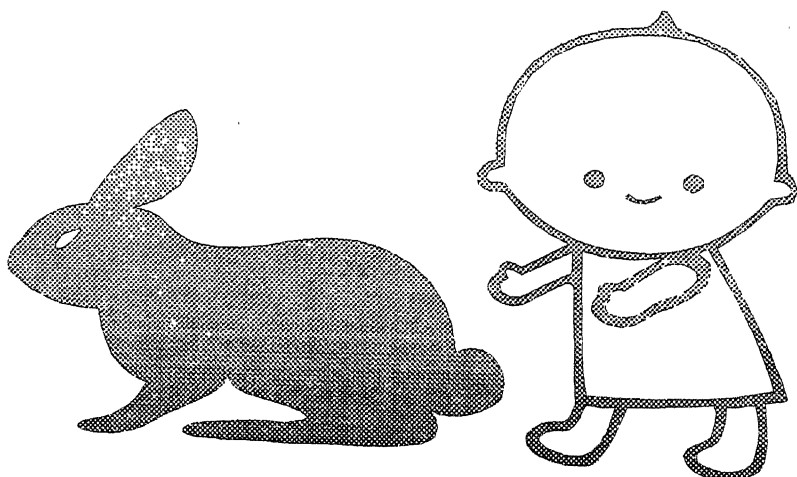
चोरी की सज़ा

डॉ० रोहिताश्व अस्थाना

रविवार का दिन था। रानी अपनी मम्मी से पूछकर स्कूल का काम कर रही थी। उसकी मम्मी ने बस्ते में एक नयी पैंसिल देखकर कहा, "अरी, तू यह नयी पैंसिल कहां से ले आयी?"

रानी सकपका गयी। हड़बड़ाकर बोली, "मम्मी, कल शनिवार था न। मैंने बाल–सभा में एक कविता सुनाई थी। उसी पर इनाम में मिली है।"

मम्मी ने कहा, "ठीक है। इसे घर पर रख दे। यह रानू के काम आयेगी।"

"हां मम्मी", कहकर उसने वह पैंसिल मम्मी के हाथों में थमा दी। वह तो स्वयं ही उस पैंसिल को स्कूल नहीं ले जाना चाहती थी, क्योंकि वह चोरी की थी।

इसी बची दीपावली की छुट्टियाँ आ गयीं। कक्षा में दीदी ने लड़कियों को समझाया, "देखो, दीपावली के तुरन्त बाद छमाही परीक्षा होगी। इसलिए तुम सब छुट्टियों में खूब पढ़ना।"

छुट्टी की घंटी बजी और सभी लड़कियां स्कूल से एक–दो–तीन होकर सड़क पर आ गयीं। रानी के साथ उसके मोहल्ले की सहेलियां रमा और रजिया भी घर आ रहीं थीं।

रानी ने कहा, "कौन पढ़ेगा दीवाली के रंग–बिरंगे मौसम में।"

रमा बोली, "देखो, रानी यह बाज़ार कैसा सजा है। मिठाइयां,

पटाखे, कंदीलें और खिलौने कितने प्यारे लगते हैं। मैं तो मम्मी–पापा के साथ खूब घूम–घूमकर बहुत सारा सामान खरीदूंगी।"

रजिया ने कहा, "पर मेरे घर तो दीवाली होती नहीं। मुझे तो पढ़ना ही पड़ेगा। फिर पढूंगी नहीं तो पास कैसे होऊंगी।"

रमा बोली, "पढ़ाई के पीछे पगली हुई है, रजिया। तेरे घर दीवाली नहीं होती तो मेरे घर आ जाना।"

रजिया बोली, "पर पढूंगी नहीं, तो पास कौन करेगा?"

"उसकी दवा मेरे पास है," रमा ने धीरे से कहा।

रानी और रजिया के कान खड़े हो गये! दोनों बोलीं, "हमें भी बता न। पास होने की दवा मिल जाये, फिर भला, कौन पढ़ेगा।"

रमा ने कहा, "दीवाली की रात काली मन्दिर को तेल के दीपकों से सजाया जाता है। कहते हैं कि कोई आदमी अगर उनमें से जलता हुआ दीपक चुराकर अपने घर ले जाये तो उसके मन की इच्छा पूरी हो जाती है।"

रजिया बोली, "ना, बाबा ना, यह मुझसे न होगा।"

बातों बातों में उसका घर आ गया और रमा व रानी अपनी गली में मुड़ गयीं।

दीपावली के दिन रानी ने अपने पापा से कहा, "पापा, सुना है काली माता के मन्दिर में रोशनी की खूब सजावट होती है। वहां रात को चलेंगे ना।"

"हां, बेटी, जरूर चलेंगे। घर में रोशनी जलाकर वहां चलेंगे। तुम्हारी मम्मी और रानू को भी ले चलेंगे। रानू अपने पटाखों में मस्त था। छत पर उसने कंदील लटका रखी थी। रानी भी बाज़ार से खूब खिलौने लायी थी। धीरे–धीरे शाम हुई और रात आ गई। भार्गव साहब ने अपने परिवार को साथ बैठाकर लक्ष्मी–गणेश का पूजन किया और पास–पड़ोस के लोगों में मिठाईयां बांटीं। रानू पटाखे और अतिशबाजी छोड़ने में लग गया। रानी सारे घर में दीपक जलाती फिर रही थी। चारों ओर दीपावली की धूम मची हुई थी। पटाखों से कान फूटे जा रहे

थे। रात के नौ बजने वाले थे।

भार्गव साहब अपनी पत्नी सुनीता तथा दोनों बच्चों रानी व रानू के साथ रोशनी की सजावट देखने निकल पड़े। रंग–बिरंगे बल्बों, मोमबत्तियों, मिट्टी के दीपकों और कंदीलों से सारा शहर जगमगा रहा था। चलते–चलते भार्गव साहब काली माता के मन्दिर में आ गये।

मन्दिर के चारों ओर मिट्टी के दीपक झिलमिला रहे थे। लोग आते, रोशनी देखते और काली माता के दर्शन कर आगे बढ़ जाते। भार्गव साहब भी मन्दिर के अन्दर बढ़ गये। परन्तु रानी का ध्यान चबूतरे पर रखे दीपकों पर था। उसने हाथ में डंडा लिये हुए मोटे पुजारी को भी देखा, जो बच्चों को डरा–धमकाकर दीपकों की रखवाली कर रहा था।

रानी को रमा की बात याद आ गयी। इनमें से अगर एक दीपक मिल जाये तो, बस, समझो कि पलक मारते पास। पर यहां दीपक चुराना टेढ़ी खीर थी। वह सोचती रही। अचानक उसके मुख पर चमक आ गयी। उसने दिल को कड़ा किया। इधर, उधर देखा। पुजारी दूसरी ओर मुंह किये लड्डू गटक रहा था।

रानी ने बड़ी फुर्ती से एक जलता हुआ दीपक उठाकर अपने फ्रॉक में छिपा लिया। पर यह क्या, वह मंदिर की सीढ़ियां भी न उतर पाई थी कि चीख उठी। भार्गव साहब, उनकी पत्नी व रानू भी आवाज़ सुनकर लौट पड़े। रानी का सारा फ्रॉक जलने लगा। पुजारी और आसपास के सारे लोग वहां एकत्र हो गये।

सब ने मिलकर आग बुझायी, पर नायलॉन के फ्रॉक ने चिपक कर रानी के सारे शरीर को जला दिया था। वह बेहोश हो गयी। भार्गव साहब झटपट उसे लेकर अस्पताल दौड़े। वहां उसके घाव साफ किये गये और मरहम–पट्टी की गयी। उसके शरीर पर खाल का नाम–निशान न था। लगभग एक महीने तक इलाज चलता रहा, किसी तरह, बस, जान बच गयी। मगर अब रानी ने यह पक्का निश्चय कर लिया कि वह कभी चोरी नहीं करेगी। उसी की तो सजा मिली थी उसे।

गप्पी शिकारी

चित्रेश

यह मजेदार घटना गोड़े नामक गांव की है। फाल्गुन की चांदनी रात थी। गांव के बाहर वाली पंचायती चौपाल में बड़ी चहल–पहल दिख रही थी। क्योंकि उस रोज़ वहां तीन नये शिकारियों ने डेरा जमाया था। इनमें एक बेहद पतला–सा लंबा, दूसरा गंजे सिर का मोटा और तीसरा घुंघराले बालों वाला नटुल्ला व्यक्ति था।

सच कहा जाये तो ये शिकारी नहीं, चिड़ीमार थे। हिरन मारने के लिये भी मचान पर चढ़कर गोली दागते। मगर बेपर की उड़ाने में ऐसे माहिर कि जवाब नहीं। कहीं अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने का मौका पा जाते, तो खुद को तीस मार खां से कम बताते ही नहीं थे।

दोपहर में गांव वाले इनसे मिले थे, तब तीनों शिकारी लंतरानी हांकने में इतना आगे बढ़ गये थे कि लगा, सचमुच ये बड़े तीरंदाज हैं। यही कारण था, जो रात घिरते ही पंद्रह–बीस ग्रामीण रोमांचक शिकार कथायें सुनने चौपाल में आ धमके।

चौपाल के सामने बरगद की घनी छांव में एक अलाव जलाया गया था। वास्तव में उन दिनों गोड़े के चारों तरफ घने जंगल थे, जिसमें रहते थे सैकड़ों खूंखार जानवर। जंगली जानवर आग से डरते हैं, रोशनी के पास नहीं फटकते। इसीलिये अलाव की व्यवस्था थी, वरना सर्दी, एकदम उतार पर थी।

आग के एक तरफ आपस में सटे हुए गांव वाले बैठे थे, दूसरी तरफ आराम से टांगे फैलाये तीनों शिकारी। तेज उजाला देने वाली एक लालटेन भी रखी थी। चर्चा चल पड़ी थी शेर के शिकार की। नाटा शिकारी अपने घुंघराले बालों पर हाथ फेरते हुए बोला, "शेर तो मैंने बहुत मारे, लेकिन बेतवा के जंगल में जो साहसिक शिकार किया, वह बेमिसाल है।"

"सुना डालो भैया, क्या हुआ था?" एक ग्रामीण ने उत्सुकता से आग्रह किया।

"मैं राइफल लटकाये जंगल में घूम रहा था। एक मोड़ पार कर, थोड़ा खुले में आया तो देखता हूं, सिर्फ दस-पंद्रह कदम आगे पंजों के बल बैठा शेर। उसकी आंख मेरे ही ऊपर जमी थीं। खैर, पीछे मुड़ना मेरी आदत नहीं है। मैंने राइफल संभाली और शेर पर फायर कर दिया।" उसने आराम से बताया।

"ओह! फिर क्या हुआ?" कई सुनने वालों ने एक साथ पूछा।

गांव वालों की आश्चर्य से फैली आंखों में झांकते हुए उसने जवाब दिया, "हुआ यह कि दहाड़ता हुआ घायल शेर मुझ पर झपट पड़ा। मैं ठहरा पहले से सावधान! फुर्ती से कन्नी काट गया। शेर सीधा वहीं पहुंचा, जहां मैं क्षण भर पहले खड़ा था। घूमकर मेरी तरफ देखा, उछाल भरने के लिए सिकुड़ा। तभी मैंने दूसरा फायर कर, उसे हमेशा के लिये ठंडा कर दिया।"

"सच में कमाल का काम था। इतनी कम दूरी से आमने-सामने शेर मारना आसान नहीं।" श्रोता प्रशंसा में झूम उठे।

"मैंने इससे भी खतरनाक स्थिति में शिकार किये हैं।" दुबले-पतले लंबू ने गांव वालों को अपनी तरफ आकर्षित किया, "मैं तराई के जंगल में घूम रहा था। एक छोटी-सी ठेकरी के नीचे पहुंचा तो एक बार पैरों के नीचे से धरती खिसकने की नौबत सामने आ गई। ऐन सिर के ऊपर बैठे दो शेर मुझ पर घात लगा रहे थे। मैं चक्कर में पड़ गया, अब करूं

तो क्या?"

उसके जरा–सा रूकते ही ग्रामीण उकता गए, "भैया! इंतजार न कराओ। जल्दी से सुना डालो।"

उस सीकिया पहलवान ने गर्व से सीना फुलाते हुए कहा, "मेरे पास अपनी प्यारी दो नाली बंदूक पर भरोसा रखने के अलावा चारा ही क्या था? जरा दायें हटकर ऐसा निशाना लिया कि गोली एक शेर की गर्दन तोड़ती, दूसरे के पेट में जा घुसी। इसके तुरंत बाद मैंने क्या किया जानते हैं?... एक ऊंची छलांग लगा, जिस जगह शेर थे वहां पहुंच गया। इस बीच दोनों शेर अपनी भयानक दहाड़ से समूचा जंगल हिलाते, मुझे चबा डालने नीचे आ चुके थे। मुझे वहां न पाकर वे आस–पास नज़र दौड़ाते, इसका मौका मैंने दिया ही नहीं। वहां से कलाकारी भरा निशाना लेकर दूसरी गोली दागी, जो गर्दन टूटे शेर का पेट चाक करती दूसरे शेर के कान की जड़ के पास से भेजे में जा धंसी। बस, हो गया दोनों का काम तमाम।"

"गजब। सरगुजा के राजा साहब भी भैया तुम्हारे सामने कुछ नहीं।" सुनने वाले आश्चर्य से उछल पड़े।

उन दिनों देशी शिकारियों में सरगुजा के राजा साहब सबसे नामवर थे। किन्तु उनकी चर्चा से मोटा–ताजा गंजा शिकारी चिढ़ गया। बोला, "राजा साहब का बस नाम ही ना है। मैंने बिना कारतूस चलाये, तीन शेर मारे थे। है उनमें ऐसा कारनामा कर गुजरने का दम।"

लोग मुंह बाये गंजे को देखते रह गये। उसने अपनी बड़ी–बड़ी मूंछें उमेठते हुए गर्व से श्रोताओं को देखा, "आप सब को विश्वास नहीं हो रहा न।"

"ऐसी बात नहीं।" एक अधेड़ उम्र के ग्रामीण ने धीमे पड़ते अलाव में लकड़ियाँ डालते हुए सफाई दी, "दरअसल हम समझ नहीं पा रहे कि यह हुआ कैसे?"

"यह भी जान लो, मेरी देख–रेख में अंग्रेज शिकारियों का एक

दल मीरजापुर के जंगल में शिकार खेलने आया था। एक दिन की बात, मैं अपने कैंप से निकल कर जंगल में पहुंचा और रास्ता भटक गया। मैं अकेला और बियावान जंगल! मैं रास्ता तलाशता धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा था। तभी मुश्किल से पचास कदम दूर तीन शेर दिखाई पड़े। इसमें एक नर था, दूसरी मादा और तीसरा इनका बच्चा। यह शेर परिवार भूखा था और मुझे देखते ही तीनों पूंछ ऐंठते गुर्राकर खड़े हो गये।''

''फिर भैया कैसे बचे इनसे?'' एक श्रोता ने चट सवाल किया।

''निशाना लेकर बंदूक चलाना खतरनाक होता। इसलिये हवाई फायर कर मैंने शेरों को सामने से हटाने का फैसला किया। मैंने आसमान की तरफ बंदूक की नली उठाकर घोड़ा दबा दिया। सिर्फ ''खट्'' की आवाज़ होकर रह गई। तब मुझे ख्याल आया कि कैम्प से चलते समय मैंने बंदूक में कारतूस डाले ही नहीं थे। कारतूस की पेटी भी साथ लेना भूल गया। कोई दूसरा होता तो उसकी जान ही सूख जाती। किन्तु मैंने हिम्मत न हारी और अपने ऊपर झपट चुके शेर के मुंह... में बंदूक की नली घुसेड़ दी। पूरी शक्ति से नली में फंसे शेर को झटके से सिर तक उठाया और जोरों से शेरनी पर दे मारा, दोनों के वहीं कचूमर निकल गये।''

''कमाल कर दिया भाई।'' कई लोगों की निगाह उसके भारी भरकम शरीर पर जम गई थी।

एक ने झिझकते हुए पूछा, ''और भाई साहब! शेर का बच्चा...?''

''बेचारा मां–बाप की दर्दनाक मौत की दहशत से ही मर गया था।'' गंजे ने चुटकियों में उसकी बात उड़ा दी।

अभी ये शिकारी पता नहीं, कितनी देर बेपर की उड़ाते, लेकिन इसी बीच चौपाल के पिछवाड़े वाले महुआ के पेड़ों के नीचे कुछ खरखराहट और गुर्राने की आवाज़ सुनाई पड़ी। एक जानकार ने कहा, ''लगता है महुआ की महक पा, उधर भालू आ गये हैं।''

''भैया! दो–एक भालू के शिकार का सगुन भी अच्छा होता है।''

तीसरे ने अपने ढंग से प्रेरणा दी।

गांव वालों का आग्रह बढ़ता जा रहा था, पर शिकारी बगलें झांक रहे थे। आखिर जब टाल–मटोल से फुर्सत न मिली तो नाटा शिकारी बंदूक लाने चौपाल की कोठरी में चला गया। वहीं से चिल्लाया, "कारतूस किस बक्से में हैं?"

मोटू और लंबू कारतूस देने अंदर पहुंच गये और तीनों ने आनन–फानन में दरवाजा बंद कर लिया। फिर गांव वालों ने बड़ी कोशिश की। मगर अंदर बैठे शिकारी दरवाजा खोलने का साहस न कर सके। रात बीती। सबेरे इन गप्पियों की तलाश में लोग आते, इसके पहले ही तीनों बोरिया–बिस्तर गोल करके नौ–दो ग्यारह हो चुके थे।

वक्त बीता। गोड़े का जंगल उजड़ गया। गांव वालों ने खाली जगह में आंवले के बगीचे लगा लिये। अब यह गांव शिकारगाह के रूप में नहीं, अपने रसीले आंवले के लिये प्रसिद्ध है। पुराने लोग भी नहीं बचे हैं, पर इन गप्पियों की कहानी आज भी सबको मालूम है, और आंवले के बगीचों के रखवाले यह कहानी कह–सुनकर खूब हंसते–हंसाते हैं।
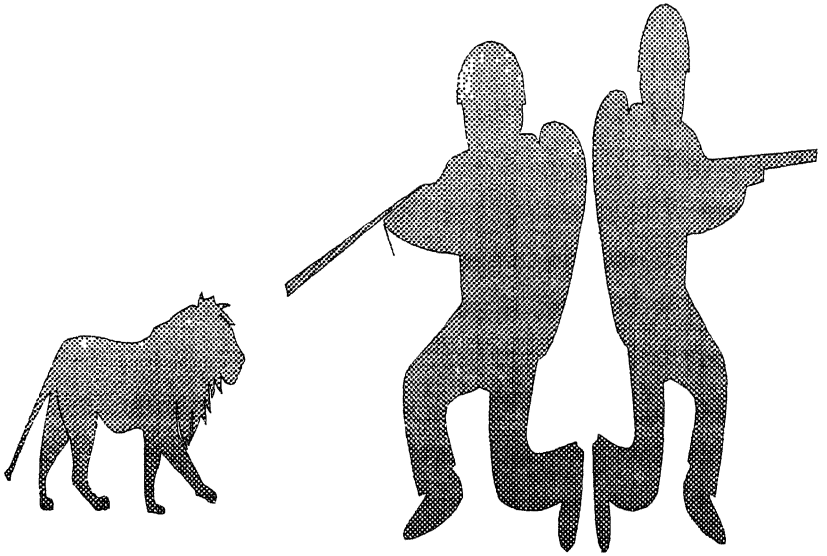
गुड़िया

साबिर हुसैन

दीपा धीरे–धीरे फुटपाथ पर चल रही थी। उसके स्कूल की छुट्टी हो गई थी। अनायास उसके पैर उस अलमारी के सामने आकर ठिठक गए जिसमें वह सुनहरे बालों वाली गुड़िया रखी थी। दीपा कुछ देर तक उस गुड़िया को ललचाई नजर से देखती रही, फिर धीरे–धीरे आगे चल दी। दीपा ने जिस दिन से गुड़िया देखी थी, उसी दिन से उसकी इच्छा गुड़िया लेने की होने लगी थी। लेकिन जब उसने उसकी कीमत दो सौ रुपये देखी तो उसे लगा कि गुड़िया इतनी महंगी है कि उसके मम्मी–पापा शायद ही खरीद सकें। उस दिन वह मम्मी के साथ बाज़ार आई थी, तब उसने मम्मी को गुड़िया दिखाते हुए कहा था, "मम्मी, मुझे यह गुड़िया ले दो।"

"अरे, इतनी महंगी गुड़िया, मैं कैसे खरीद सकूंगी?" मम्मी बोली थीं।

वह चुप रह गई थी। उसे लगा था मम्मी उसे गुड़िया खरीद कर देना नहीं चाहती हैं वरना जब सब काम चल सकते हैं तो उसके लिए भी गुड़िया खरीदी जा सकती है। जब वह सीमा के घर जाती है उसके खिलौने देखकर उसका मन ललचा उठता है कि काश उसके पास भी ऐसे खिलौने होते। उसके पापा एक कपड़े की दुकान पर साधरण सी सेल्समैन की नौकरी करते हैं और मम्मी घर में सिलाई का काम करती हैं, तब उसकी और वीरेन्द्र की पढ़ाई और घर का खर्च चल रहा है।

पहले उनके पास भी कपड़े की दुकान थी लेकिन मम्मी की बीमारी और उनके ऑपरेशन आदि के खर्च में उनकी दुकान बिक गई और उन्हें नौकरी करनी पड़ी।

दीपा ने बस्ता कमरे में रखा और हाथ–मुंह धोने चली गई। उसने देखा, वीरेन्द्र भी स्कूल से आ गया था।

आज जब वह कक्षा में बैठी थी तभी सीमा ने कहा था, "दीपा के मम्मी–पापा कंजूस हैं इसलिए उसे कुछ लेकर नहीं देते।"

सीमा की बात उसे बुरी लगी थी, उसने सोच लिया था कि वह यह गुड़िया जरूर लेगी।

"दीपा आओ, नाश्ता कर लो।" मम्मी ने उसे आवाज दी।

"मुझे भूख नहीं है।" दीपा बोली।

"क्यों, आज क्या स्कूल में कोई दावत थी?" कमरे में आती हुई मम्मी ने पूछा।

"माँ, मैं तब तक खाना नहीं खाऊंगी जब तक मैं वह गुड़िया नहीं ले लूंगी," दीवार की ओर मुंह किए हुए दीपा बोली।

"लेकिन बेटी वह गुड़िया तो...।"

"आप लोग लेकर देना नहीं चाहते इसलिए कह देते हैं कि महंगी है। सीमा के पास देखो, कितने अच्छे–अच्छे खिलौने हैं।" कहते हुए दीपा रो पड़ी।

"अच्छा चलो, नाश्ता कर लो, तुम कल गुड़िया ले आना।" दीपा के सिर पर हाथ फेरते हुए मम्मी बोली।

दीपा ने आंसू पोंछे और मम्मी के साथ चल दी। वह बहुत खुश थी कि अब उसे गुड़िया मिल जाएगी।

शाम को दीपा कमरे में बैठी अपना पाठ याद कर रही थी तभी उसने सुना, बाहर मम्मी पापा से रुपये के लिए कह रही थीं, "आप कल दुकान से पचास रुपये ले आना, मेरे पास डेढ़ सौ रुपये रखे हैं। दो सौ रुपये में दीपा की गुड़िया आ जायेगी।"

"डेढ़ सौ रुपये तो तुमने अपने चश्में के लिए रखे थे, कल तुम्हें

अपना चश्मा लाना है।'' पापा बोले।

''मैं राकेश भाई से कह दूंगी कि चश्मा मैं अगले महीने ले लूंगी। दीपा आज गुड़िया के लिए खाना नहीं खा रही थी, उसे कल गुड़िया ले दूंगी।'' मम्मी बोली।

दीपा अनायास ही आत्मग्लानि से भर उठी। उसे मालूम है मम्मी की आंखें कमजोर हो गई हैं। उस दिन वह मम्मी के साथ ही गई थी तब डॉक्टर ने चश्मा बनवाने के लिए कहा था। मम्मी अपने चश्मे का आर्डर दे आई थीं। दीपा को महसूस हो रहा था कि वह गलत है, उसे सीमा की बराबरी नहीं करनी चाहिए। वह तो अमीर है। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया और अपना पाठ याद करने लगी।

''मम्मी, आप मुझे एक सौ पचास रुपये ही दे दें। मैं दूसरी गुड़िया ले लूंगी, वह डेढ़ सौ रुपये की है।'' दीपा ने स्कूल जाते हुए मम्मी से कहा।

''पैसे संभाल कर रखना'' रुपये लाकर देते हुए मम्मी ने कहा।

दीपा ने पैसे अपने बस्ते में किताबों के बीच में रख लिए और स्कूल चली गई।

शाम को जब दीपा स्कूल से लौटी तब मम्मी कमरे मे ही थीं। उसे देखते ही बोलीं ''दीपा, गुड़िया ले आई?''

''हां'', कहते हुए दीपा ने एक छोटा सा डिब्बा मम्मी के हाथ पर रख दिया।

''अरे, इतना छोटा डिब्बा'' कहते हुए मम्मी ने डिब्बा खोला। उसमें उनका चश्मा रखा हुआ था।

''तुमने गुड़िया नहीं ली!'' मम्मी ने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

''मुझे माफ कर दो, मम्मी।'' कहती हुई दीपा रो पड़ी।

''अरे, चुप मेरी गुड़िया।'' कहते हुए मम्मी ने उसे अपने सीने से लगा लिया। उनकी आंखों से भी आंसू बह रहे थे।

कमरे के दरवाजे पर खड़े दीपा के पापा भी रूमाल से अपनी आंखें पोंछ रहे थे।

सोने का निवाला

बानो सरताज

राजा के पापा उसे लेकर दांतों के डॉक्टर के पास गए थे। डॉक्टर ने कड़े निर्देश दिए थे कि राजा को मीठा न खाने दिया जाए। उसके बहुत से दांत खराब हो गए थे। पर राजा किसी की सुनता, तब ना! वह तो मीठे का कीड़ा था। गुड़, चीनी, मिठाई, बिस्किट कोई चीज़ उसके हाथ से नहीं बचती थी।

मां परेशान हो जाती। वह भोजन करने बैठता तो दूध रोटी मांगता। नाश्ते में जलेबी की मांग करता। टिफिन में रोज मीठा परांठा रखने की जिद करता। यही नहीं उसे जेब खर्च के लिए जो पैसा मिलते, उससे भी इमरती—जलेबी खरीद कर खाता।

मां उसे अपने साथ कहीं ले जाना पसंद न करती। वह मीठी चीजों पर बढ़—चढ़कर हाथ साफ करता। परिणाम दांतों की सड़न के रूप में निकलना था, सो निकला। अब उसके मां—पिता को बहुत चिंता होने लगी। उन्होंने बहुत समझाया पर राजा पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

राजा की मां ने अपनी ओर से सावधानी बरतनी आरंभ की। घर में मीठा बनाना बंद कर दिया। मिठाई लाना छोड़ दिया। गुड़--चीनी के डिब्बे छिपाकर रखने लगीं। राजा के पापा ने उसका जेब खर्च बंद कर दिया। लेकिन बजाय सुधरने के राजा और बिगड़ गया। उसे चीज़ें मिलनी बंद हुईं, तो उसने खाना—पीना छोड़ दिया। रो—रोकर सबको

परेशान करता। फर्श पर गिरकर मचलने लगता। मां हार जाती। फिर पहले जैसी ही स्थिति हो गई। राजा मिठाई का कीड़ा बन गया।

राजा के पापा ने एक बार उसे हॉस्टल भेजने का भी निर्णय लिया पर मां आड़े आ गई। उन्हीं दिनों राजा के पापा को कार्यालय के काम से एक महीने के लिए इंडोनेशिया जाने का अवसर आया। उन्होंने एक युक्ति सोची और राजा की मां से कहा, ''अगले सप्ताह मुझे इंडोनेशिया जाना है तुम भी चलो घूम आएंगे।''

राजा ने खुश होकर कहा ''मैं भी चलूंगा पापा।''

''तुम कैसे चल सकते हो बेटा, पन्द्रह दिन बाद तुम्हारी परीक्षा है।'' पापा ने कहा।

''मैं नहीं चल सकती'' राजा की मां ने कहा ''परीक्षा के दिनों में राजा के पास किसी को तो होना ही चाहिए।''

''उसकी चिंता न करो। एक महीने मां–पिताजी फार्म से यहां आकर रहेगें।''

राजा के दादा जी सेना से निवृत्त हुए थे। शहर से बाहर फार्म पर ही मकान बनाकर रहते थे। राजा के मां–पिताजी के जाने के बाद वह शहर आ गए। दादीजी बीमार थीं। वह अधिक समय पलंग पर लेटी रहतीं। दादाजी राजा का साथ देते। उसका गृहकार्य कराते। स्कूल छोड़ने जाते। उसे तैयार करते और उसके साथ खेलते।

पहले दिन दादा जी ने फ्रिज खोला तो मिठाई के डिब्बे देखकर बोले ''अरे? ये सब क्या कर रखा है बहू ने? ये चीजें स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक हैं। बाई?'' उन्होंने महरी बुला कर कहा ''ये सब तुम ले जाओ।''

राजा की सांस ऊपर की ऊपर नीचे की नीचे रह गयी। वह चाहता था कहे कि दादाजी ये बेकार नहीं हैं, मां उसके लिए खासतौर से रख गई हैं, पर दादाजी के सामने कुछ न कह सका।

शाम को दादाजी बहुत सारे फल लेकर आए। राजा से कहा, ''जब भूख लगे फल खाना। बच्चों को फल खाना चाहिए। दिमागी मेहनत करनी पड़ती है न। फल ताकत देते हैं। मिठाई तो पल भर का

चटकारा है, उसके बाद तो हानि पहुंचती है।"

रात को जब दादा जी सोने के लिए लेट गए तो राजा दबे पांव रसोई–घर में पहुंचा। दादाजी ने खटका सुना तो शोर मचा दिया "चोर. .....चोर....चोर! " किराये मकान था। मकान मालिक और दो अन्य किरायेदार भी वहीं रहते थे। साझा आंगन था। चार–पांच लोग पलक झपकते आंगन में एकत्र हो गए। दादाजी ने बिजली जलाई। देखा, राजा के मुंह में गुड़ भरा था और हाथ में गुड़ का बड़ा सा टुकड़ा था। वह हक्का–बक्का सबको देख रहा था।

"वाह बेटा! वाह? तुमने हमारी नाक कटवा दी। चोरी करते हुए पकड़े गए।" दादाजी ने कहा तो राजा गुड़ फेंककर रोने लगा।

दूसरे दिन दादाजी पुस्तकें पोस्टरों की सहायता से राजा को प्रतिदिन समझाना शुरू कर दिया कि मीठा खाने से क्या–क्या नुकसान होते हैं और पोषक आहार लेने से स्वास्थ्य अच्छा कैसा रहता है।

राजा के मां–पिताजी इंडोनेशिया से वापस आए, तो राजा को बिलकुल बदला हुआ पाया। न वह मीठे के लिए जिद करता था न अधिक मीठा खाता था। दादाजी से इस चमत्कार का रहस्य पूछने पर वह बोले "बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा की जिम्मेदारी मां–पिता पर होती है। उसके लिये उन्हें पहले से ही सावधानी बरतनी चाहिए। मैंने राजा की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया। उस दिन चार लोगों के सामने उसे चुराकर गुड़ खाते देखा। मैंने इस पर बल दिया कि दूसरों से छिपाकर किया जाने वाला काम गलत होता है। गुड़ खाना कोई आवश्यकता तो नहीं थी जिसके लिए चोरी की जाती।"

"आप सच कहते हैं पिताजी" राजा ने सिर झुकाकर कहा।

"राजा को मीठे ने नहीं तुम्हारे लाड़–प्यार ने बिगाड़ा है। प्यार करना है तो एक सीमा तक करो। खिलाना है तो खिलाओ। ये कहावत ठीक ही है कि खिलाओ सोने का निवाला, पर देखो शेर की आंख से।"

सब हंसने लगे। राजा भी मुसकरा रहा था।

असली सहेली

श्यामकुमार दास

नेहा का आज स्कूल में पहला दिन था। कल उसकी मां ने मोहल्ले के सरकारी स्कूल में उसका दाखिला कराया था। दाखिले के बाद कक्षाध्यापिका ने नेहा को कॉपी किताबें लेकर अगले दिन से स्कूल आने के लिए कहा था।

नेहा आज सुबह से ही नहा–धोकर और साफ–सुथरे कपड़े पहनकर तैयार हो गई थी। कॉपी और किताबें उसने सस्ते लेकिन अपने नये बस्ते में रख लीं थीं।

जैसे ही आठ बजे, नेहा बस्ता कंधे पर लटकाये स्कूल की तरफ चल दी। वह सोचती जा रही थी कि पढ़–लिखकर वह किसी अच्छे पद पर नौकरी करेगी। वह अपनी मां के कष्टों को दूर करना चाहती थी।

नेहा देखा करती कि उसकी मां रोज़ सुबह कहीं से ढ़ेर सारे कपड़े ले आती हैं। शाम तक चश्मा आंखों पर चढ़ाये अपनी पुरानी सिलाई मशीन पर सीती रहती हैं।

नेहा के पिताजी आज से तीन साल पहले ही एक दुर्घटना में चल बसे थे। तब नेहा सात साल की थी। अब तो वह दस साल की हो गई है।

नेहा का कोई भाई भी नहीं था। वह अपनी मां की अकेली संतान थी। मां भी चाहती थी, नेहा पढ़–लिखकर कुछ बन जाये। इसीलिए

उसने नेहा को पहले छोटे स्कूल में पढ़ाया। अब राजकीय कन्या हायर सेकेन्डरी में दाखिला करवा दिया था। नेहा पढ़ने में तेज थी। पांचवीं में उसके नम्बर भी अच्छे आये थे। आसानी से सरकारी स्कूल में प्रवेश मिल गया।

स्कूल नजदीक आते ही नेहा फूली नहीं समा रही थी। वह तरह–तरह की कल्पनाएं करती हुई अपनी कक्षा में घुसी।

कक्षा में घुसकर नेहा ने इधर–उधर देखा। दूसरी लाइन में उसे जगह नज़र आई। वह वहां जाकर बैठ गई। लेकिन यह क्या? नेहा के बैठते ही दूसरी लड़कियां उससे दूर हट गईं। नेहा ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वह पढ़ती रही। और छुट्टी होने पर बस्ता कंधे पर लटकाये घर की ओर चल दी।

दूसरे दिन भी यही हुआ। नेहा जैसे ही दूसरी लाइन में बैठी, पास की लड़कियां दूर खिसक गईं। नेहा ने सोचा, हो सकता है मैं अभी नई हूं, मेरे कपड़े इन लड़कियों से सस्ते हैं, इसीलिए वे दूर सरक गई।

लेकिन रोजाना यही स्थिति देख नेहा उदास रहने लगी। स्कूल आते हुए उसे लगभग पन्द्रह दिन हो गये थे। अभी तक उसकी एक भी सहेली नहीं बनी थी।

वह जब किसी लड़की से बात करना चाहती, तो दूसरी लड़कियां उससे कन्नी काट जाती थीं। जब किसी के साथ खेलने पहुंचती, तो मना कर देती थी। और तो और "होमवर्क" के लिए उसे कॉपी भी कोई नहीं देती थी।

नेहा सोचा करती क्लास की दूसरी लड़कियां उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों करती हैं? उसे अपनी सहेली क्यों नहीं बनाती हैं? जब वह "इन्टरवल" में खेलने जाती है, तो दूसरी लड़कियां उसे मना क्यों कर देती हैं?

जब नेहा इन प्रश्नों के उत्तर स्वयं नहीं ढूंढ़ पाई, तो उसने एक दिन अपनी मां से पूछा, "मां, स्कूल में लड़कियां मुझे पास क्यों नहीं

बिठाती हैं? वह मुझे अपने साथ खेलने क्यों नहीं देतीं? मेरे बैठते ही दूसरी लड़कियां मुझसे दूर क्यों हट जाती हैं?"

नेहा की मां इन प्रश्नों को सुनकर तत्काल उत्तर नहीं दे पाईं। सोचने लगीं अपनी नन्हीं सी बिटिया को कैसे समझाये कि लोग उन्हें छोटी जाति का मानते हैं। उनके काम को छोटा समझते हैं।

अपनी मां को कुछ सोचते देखकर नेहा ने फिर पूछा, "मां, बताओ न लड़कियां मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों करती हैं? मुझे अपनी सहेली क्यों नहीं बनाती? मां मैं भी चाहती हूं, मेरी भी दो–चार सहेलियां हों। मैं उनके साथ खेलूं–कूदूं, हंसू–गाऊं।"

बार–बार पूछे जाने पर नेहा की मां चुप नहीं रह पाई। उसने दयनीय आवाज़ में कहा, "बेटी, लोग हमें छोटा समझते हैं।"

"छोटा क्यों समझते हैं मां? हमारे भी तो औरों की तरह ही दो हाथ, दो पैर, दो कान और आंखें हैं।"

"यह बात नहीं बेटी, वे हमारे काम को छोटा काम समझते हैं।"

"तो क्या, मां कपड़ा सीना छोटा काम है?"

"नहीं बेटी यह बात नहीं।"

"तो फिर क्या बात है? ठीक से बताओं मां, यदि तुम ठीक–ठीक नहीं बताओगी तो मैं कल से स्कूल नहीं जाऊंगी" नेहा ने धमकी दी।

अपनी बेटी की जिद के आगे मां को झुकना पड़ा। वह बोलीं "बेटी, हमारे पूर्वज सफाई का काम करते थे, जिसे समाज छोटा मानता है और हमें छोटी जाति का समझता है।"

"लेकिन मां, अब तो हम सफाई का काम नहीं करते। तुम दिन भर मेहनत करके कपड़े सीती हो और मैं भी साफ–धुले कपड़े पहनकर स्कूल जाती हूं।"

मां चुप रही। नेहा से क्या कहती।

धीरे–धीरे समय बीतने लगा। नेहा भी बिना किसी की परवाह किये पढ़ती रही। कोई लड़की उससे बात करती तो वह कर लेती, कोई

साथ खेलती तो खेल लेती। लेकिन अभी तक उसकी एक भी सहेली नहीं बनी थी। कभी–कभी यह सोचकर वह उदास हो जाती थी।

बरसात शुरू हो गई थी। बीच–बीच में "रेनी डे" भी हो जाता था। नेहा का स्कूल भवन काफी पुराना था और नेहा के क्लास रूम की हालत तो बहुत खराब थी।

एक दिन मूसलाधार पानी पड़ने लगा। कमरे की छतों से पानी टपकने लगा। पानी रूकने का नाम ही नहीं ले रहा था। कक्षा में सातवां घंटा चल रहा था। अध्यापिका ब्लैक बोर्ड के सामने खड़ी होकर इतिहास पढ़ा रही थी। सभी लड़कियों का ध्यान अध्यापिका की ओर था।

अचानक भरभराकर कमरे की छत गिर पड़ी। कमरे में चीख–पुकार मच गई। कई लड़कियों को गंभीर चोटें आईं। सौभाग्य से नेहा उस दिन दीवार के पास बैठी थी। उसे बिल्कुल चोट नहीं आई।

नेहा के क्लास की कई लड़कियों को अस्पताल में भरती कराया गया। इन घायल लड़कियों में रीता की हालत बहुत खराब थी। उसके सिर एवं हाथ–पैरों में काफी चोट थी। नेहा उस दिन दुःखी मन से घर वापस आई।

दूसरे दिन नेहा को पता लगा, रीता को खून की जरूरत है। जो लड़कियां रीता के पास बैठती थीं, उसके साथ खेलती–खाती थीं, कोई भी खून देने को तैयार नहीं हुई।

कक्षाध्यापिका ने कई–कई बार रीता की सहेलियों से खून देने को कहा, लेकिन सभी ने तरह–तरह के बहाने गढ़ दिये।

यह देखकर नेहा सोचने लगी, रीता उसे अपनी सहेली माने या न माने लेकिन वह रीता को अपनी सहेली मानती है। वह उसकी कक्षा की साथी है। ऐसे समय में उसे रीता की मदद करनी चाहिए। उसे अपना खून देकर रीता की जान बचानी चाहिए।

नेहा कक्षाध्यापिका से बोली, "मैडम, मैं रीता के लिए अपना खून देने को तैयार हूं।" लेकिन वह यह कहने के तुरन्त बाद उदास हो गई।

अध्यापिका ने जब उससे उदासी का कारण पूछा, तो वह भोलेपन से बोल पड़ी, "मैडम, समाज हमें छोटी जाति का समझता है। रीता के माता–पिता मेरा खून लेना स्वीकार करेंगे?"

"बेटी, खून छोटी–बड़ी जाति का अलग–अलग थोड़े ही होता है। खून तो खून है। फिर तुम तो अपना खून देकर रीता की जान बचाओगी। किसे इन्कार होगा।"

नेहा ने अस्पताल जाकर रीता को एक बोतल खून दे दिया था। खून मिलते ही रीता ठीक होने लगी थी। पूरी तरह ठीक हो जाने पर रीता को उसके माता–पिता ने बताया, नेहा ने अपना खून देकर उसकी जान बचाई है। यह जानकर रीता को नेहा के प्रति अपने व्यवहार पर बहुत दुःख हुआ।

वह नेहा से बोलती तक न थी। जब नेहा कभी रीता के पास आती, तो वह दूर हट जाती थी। कभी नेहा कुछ मांगती, तो वह झट मना कर देती थी। रीता को यह जानकर और भी दुःख हुआ कि जो लड़कियां उसकी सच्ची सहेलियां बनती थीं, वह उसे देखने अस्पताल तक नहीं आईं।

रीता जब स्कूल आई, तो नेहा को देखकर उसके प्रति श्रद्धा से भर गई। नेहा और दिनों की तरह से सबसे अलग–थलग एक किनारे बैठी थी। रीता नेहा के पास पहुंची। नेहा खड़ी हो गई। वह रीता की ओर देखने लगी। रीता ने आगे बढ़कर नेहा को गले लगा लिया। दोनों सहेलियों की आंखें बरसने लगीं।

रीता के आंसू नेहा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे थे। और रीता की स्वार्थी सहेलियां दोनों को दूर से निहार रही थीं।

कुछ देर बाद रीता सामान्य हुई, उसने नेहा को अपने पास ही बिठाया। रीता को एक सच्ची सहेली मिल गई थी। अन्य लड़कियों ने भी नेहा को अपनी सहेली बना लिया। अब नेहा भी बहुत खुश थी। कक्षा की अनेकों लड़कियां उसकी सहेली जो बन गई थीं। ✳

मेरा फर्ज

विमला रस्तोगी

बारह वर्षीय गोपाल एक लड़की का हाथ पकड़े भागा हुआ आ रहा था। घर के दरवाजे पर आकर ही रुका। दोनों बुरी तरह हांफ रहे थे। लड़की का हाल गोपाल से भी बुरा था। गालों पर आंसुओं की लकीरें थीं, एक गाल पर धूल लगी थी, लगता था कहीं गिरी है, घुटना भी छिल गया था। दोनों अभी भी हांफ रहे थे, तभी कुछ और बच्चे भागते हुए आते दिखायी दिये। किसी का बस्ता छूट गया था किसी के जूते। इन चीज़ों का होश किसे था।

गोपाल के घर में घुसने से पहले ही मां बाहर आ गयी, घबराई हुई बोली "आ गया बेटे! मुझे अभी–अभी पिछवाड़े वाली मदन की मां ने बताया कि दंगा–फसाद हो गया है। मेरा जी बहुत घबरा रहा था।" उसी क्षण मां की निगाह लड़की पर पड़ी।

"अरे! ये लड़की कौन है?" तपाक से मां ने पूछा।

"अंदर चलो बताता हूं।" कहकर गोपाल लड़की का हाथ पकड़े घर के अंदर आ गया, लड़की की आंखों से आंसू बह चले।

"बता न बेटे, ये लड़की कौन है?"

"यह रुखसाना है मां, मेरे स्कूल में पढ़ती है।"

"यह तो...."

"इसका घर वहीं है मां, जहां से दंगे शुरू हुए। खबर मिलते ही

स्कूल में अफरातफरी मच गयी, मास्टर जी की किसी ने न सुनीं।"

"रुखसाना घर कैसे जाती। ये रोने लगी, मैं इसे अपने घर ले आया।"

"अब इसे घर कैसे पहुंचाया जाएगा?" मां के चेहरे पर चिंता थी।

"अभी सोचते हैं।"

"तेरी दादी को पता चलेगा तो...?"

"कहां हैं वह?"

"पिछवाड़े बैठीं हैं।"

"अभी उनसे कुछ मत कहना, मैं समझा दूंगा।"

गोपाल की बात सुनकर मां पिछवाड़े जाकर बैठी ही थीं कि उसे अपने बड़े बेटे कमल का ध्यान आया, घबराई सी गोपाल के पास आयी, "कमल कैसे आएगा गोपाल?"

"आ जाएगा मां, उसके साथ और भी कई लड़के आते हैं।" गोपाल के समझाने पर भी मां को चैन नहीं आ रहा था। इस लड़की के घर में आने से उसकी चिंता और बढ़ गयी थी। मां कभी अंदर जातीं कभी बाहर आतीं। गली में चहल–पहल बढ़ गयी थी। सभी के चेहरों पर घबराहट थी, जितने मुंह उतनी बातें।

रुखसाना अभी भी उदास बैठी थी। गोपाल ने चाय बनायी, एक प्लेट में बिस्कुट और चाय, उसके सामने ले गया, "चाय पिओ रुखसाना", "मैं घर जाऊंगी। मुझे घर पहुंचा दो गोपाल" कहकर रुखसाना रोने लगी।

"पहले चाय पी लो, उसके बाद सड़क पर देख आऊंगा क्या हाल है।"

दोनों चाय पीने लगे।

गोपाल गली के नुक्कड़ तक गया। अजब हाल था। पुलिस कर्फ्यू का ऐलान कर रही थी, सड़क के उस पार से नारों की आवाजें आ रही थीं कभी–कभी पत्थर भी फेंके जा रहे थे। पुलिस ने लोगों को चेतावनी

दी, हवा में गोलियां चलायीं। गोपाल दबे पांव आ गया। मोहल्ले के पिछले रास्ते से छिपते—छिपाते पिता और भाई कमल भी घर आ गये थे। पिता ने गोपाल पर नीचे से ऊपर तक एक निगाह डाली। गोपाल बिना कुछ कहे अंदर चला गया।

रुखसाना कमरे के कोने में पड़ी तिपाई पर चुपचाप बैठी थी। गोपाल ने उसे सड़क के माहौल के बारे में बताया। रुखसाना का चेहरा उतर गया। "हिम्मत रखो रुखसाना, कोई और उपाय सोचते हैं।" गोपाल ने इतना ही कहा था कि दादी उसे अपनी तरफ आती दिखायी दीं। गोपाल उनकी तरफ लपका और उन्हें बराबर वाले कमरे में ले गया इधर—उधर की बातें करने लगा, तभी पड़ोस की काकी आ गयी। गोपाल को काटो तो खून नहीं, "यह तो चलता फिरता अखबार है।" उसी क्षण गोपाल ने एक तरकीब सोची। उसने काकी से कहा, "काकी पिछली गली के रघुवीर चाचा के मकान के सामने लोग जुटे हैं, जाकर पता लगाओ क्या बात है?" काकी उल्टे पांव ही उधर चल दी। गोपाल ने चैन की सांस ली। दादी, मां, पिताजी, काकी इन लोगों के दिमाग में हिन्दू—मुसलमान और लड़का—लड़की का इतना भेदभाव क्यों है? गोपाल समझ नहीं पा रहा था।

गोपाल का दिमाग रुखसाना के घर खबर पहुंचाने की उधेड़बुन में लगा था। उसे मस्जिद के पीछे खद्दर की दुकान करने वाले हाजी जी का ध्यान आया। उसने सुना था हाजी जी नेक इंसान हैं, सबकी मदद करते हैं। वह रहते भी मस्जिद के पास ही हैं।

"कैसे भी हो मैं उसके अब्बा को उसकी खैरियत की खबर पहुंचाऊंगा।" कहकर गोपाल घर से निकल गया। "बेटा सुन तो गोपू सुन तो" दादी और पिता जी कहते ही रह गये।

"इस लड़के का दिमाग घर भर से अलग है" पिता बोले।

"अरे! जाकर देख उसे, माहौल खराब है, पता नहीं कहां गया है। यह लड़की एक नयी मुसीबत बन गयी।" दादी के कहने पर पिता

गोपाल की तलाश में घर से निकल पड़े।

गोपाल भाग रहा था, पर चौकन्ना था, इधर–उधर देख लेता था। वह गलियों में होकर जा रहा था। मस्जिद के पास पहुंचने ही वाला था कि एक पत्थर उसके सिर में आकर लगा, खून बहने लगा, तुरन्त चार पांच लड़कों ने उसे घेर लिया। गोपाल घबरा गया, उसका चेहरा फक पड़ गया। उन सभी लड़कों के सिर पर खून सवार था। "मारो साले को" की आवाज़ के साथ एक लड़के ने डंड़ा ऊपर उठाया ही था कि "ठहरो" एक भारी भरकम आवाज़ आयी, उस लड़के का हाथ और डंडा वहीं रुक गया।

"नादानों! यह तुम क्या कर रहे हो? एक बेकसूर बच्चे की जान लेना चाहते हो, क्योंकि वह हिन्दू है। बड़े शर्म की बात है। तुम जैसे लोग ही धर्म को बदनाम करते हैं।" कहते हुए हाजी जी उन लड़कों के पास आ गये थे। लड़के एक तरफ हो गये। गोपाल की जान में जान आयी। "अरे! तुम्हारे सिर से खून बह रहा है, आओ पट्टी बांध दूं।"

गोपाल हाजी जी के पीछे चलने लगा, "तुम ऐसे माहौल में यहां क्यों आये?" हाजी जी ने अपनी दुकान पर पहुंचते ही पूछा।

"मुझे आपसे जरूरी काम था।" गोपाल ने कहा। "मुझसे?" हाजी जी चौंके। गोपाल ने उन्हें सारी बात बता दी।

"शाबाश! बरखुरदार (बेटे) मुझे तुम पर फक्र (गर्व) है।" हाजी जी ने गोपाल के सिर पर पट्टी बांधते हुए कहा।

"आप मेरी सहायता करेंगे न।" गोपाल के पूछने पर हाजी जी चुप रहे। गोपाल के चेहरे पर फिर चिंता आ गयी, उसने दबी आवाज़ में पूछा, "क्या सोच रहे हैं आप?"

"मैं सोच रहा हूं, रुखसाना को यहीं ले आएं।" हाजी जी ने अपनी दाढ़ी खुजलाते हुए कहा। "गोपाल बेटा, तेरे सिर पर चोट कैसी लगी? तू ठीक तो है न।" हांफती हुई आवाज़ में उसके पिता ने पूछा।

"मैं ठीक हूं, हाजी जी ने मुझे बचा लिया।" "आपका लड़का बहुत

हिम्मत वाला है। नेक ख्याल है, यह सही मानों में अच्छा इंसान बनेगा।" हाजी जी ने गोपाल के पिता को अपने पास बिठाते हुए कहा।

"दुआ है आपकी।" गोपाल के पिता ने इतना ही कहा। "हम सोच रहे हैं रुखसाना को यहीं ले आएं।" हाजी जी ने गोपाल के पिता से कहा।

"क्या आपको हम पर विश्वास नहीं। रुखसाना मेरी बेटी की तरह है, उसके अब्बाजान उसे हमारे घर से ही ले जाएंगे। आप उन्हें खबर करने में हमारी मदद कीजिए।" गोपाल के पिता ने कहा, गोपाल का चेहरा खिल गया।

"खबर हो जाएगी, आप बे फिकरी से घर जाइए।"

गोपाल पिता के साथ घर आ गया। उसने देखा, दादी रुखसाना को खाना खिला रहीं थीं, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। "ऐसे मुंह फाड़े क्या देख रहा है? क्या यह हमारी कोई नहीं लगती।" दादी का इतना कहना था कि गोपाल ने खुशी से अपनी दोनों बाहें उनके गले में डाल दीं। गोपाल ने रुखसाना को सारी बातें बतायीं, रुखसाना को तसल्ली हुई, उसने ठीक से खाना खाया।

रात होने से पहले ही एक कार गोपाल के घर के सामने आकर रुकी। उसमें से हाजी जी, रुखसाना के अब्बा और उनके एक दोस्त उतरे।

हाजी जी ने उन्हें गोपाल से मिलवाया, रुखसाना लपक कर अपने अब्बा के पास जाकर खड़ी हो गयी। "गोपाल बेटे, हम तुम्हारा यह अहसान जिंदगी भर नहीं उतार सकते।" रुखसाना के अब्बा ने गोपाल को शाबासी देते हुए कहा।

"यह अहसान नहीं, मेरा फर्ज था।"

"काश! सभी की सोच ऐसी हो जाए।"

अब्बा ने हाथ उठाकर दुआ मांगते हुए कहा।

रुखसाना जाने लगी तो दादी ने उसके हाथ में ग्यारह रुपये रखे

और कहा, "तू हमारे घर पहली बार आयी है न, हम बेटी को खाली नहीं भेजते।" दादी ने रुखसान को प्यार किया।

वहां हिन्दू–मुसलमान कुछ नहीं था, केवल इंसानियत थी, अपनापन था।

रुखसाना के जाने के बाद घर में खालीपन सा लगा, पर गोपाल के चेहरे पर संतोष भरी खुशी थी।

विपिन का अनशन

इंदरमन साहू

राहुल ने पूछा, "विपिन, आज दो तारीख है ना?" विपिन बोला, "हां, तो?"

"तो आज मेरे बाबूजी को तनख्वाह मिलती है। तनख्वाह लेने वह शहर जाते हैं और मेरी मनपसंद चीज़ें लाते हैं। जानते हो, आज उन्होंने क्या लाने का वायदा किया हुआ है?"

विपिन कहीं खो गया। राहुल बोले जा रहा था।

विपिन के पिताजी को भी २ तारीख को वेतन मिलता था और वह भी वेतन लेने शहर जाते थे। लेकिन वे विपिन की मनपसंद चीज़ें नहीं लाते थे। विपिन को कोई खुशी नहीं होती थी, उल्टे वह और उसकी मां दुखी हो जाते थे। दरअसल विपिन के बाबूजी को शराब पीने की बुरी लत थी और वह २ तारीख को तनख्वाह मिलने की खुशी में बहुत अधिक शराब पीकर घर आते थे। मां से झगड़ा करते और उन्हें पीटते थे।

विपिन की आंखों में आंसू आ गए। राहुल ने पूछा, "हे, क्या हुआ?" तभी पीरियड़ की घंटी बजी। दोनों क्लास रूम की ओर लपके।

शाम को छुट्टी के बाद विपिन घर आया। अभी उसने बस्ते को अलमारी में रखा ही था कि लड़खड़ाते झूमते बाबूजी आ गए। आते ही मां को डांटने लगे, "अरी ओ सुनीता, कहां मर गई हो?"

"चिल्लाते क्यों हो, आ तो रही हूं, "बाबूजी की हालत देखकर मां की जुबान कड़वी हो गई थी। बाबूजी को यह बुरा लगा। उन्होंने उनके बाल पकड़ लिए, "चलो, ये अंड़े फ्राई कर दो।"

बाबूजी ने तीन अंड़े टेबल पर इतने जोर से रखा कि एक अंड़ा फूट गया। मां का आज व्रत था और वह इस दिन आशा रखतीं थीं कि घर में सात्विक भोजन बने। उन्होंने विरोध किया तो बाबूजी ने पीट–पीटकर उन्हें अधमरा कर दिया। वह खुद रसोई में अंड़े को पकाने लगे।

व्रत के बाद भोग के लिए प्रसाद बन चुका था। विपिन मां के पास गया और बोला, "मां, चलो, कुछ खा लो।" मां को याद आया, विपिन भी स्कूल से आने के बाद कुछ नहीं खाया था। उन्होंने विपिन को भोग के लिए बना हलुवा परोस दिया।

विपिन मां से बोला, "मां, तुम पहले खाओ, तुम्हारा आज व्रत है और भोग का समय भी हो गया है।" "तुम खा लो बेटा, मेरा पेट ऐसे ही भर गया" सिर गड़ाकर मां रोने लगीं।

मां की सिसकियों ने विपिन को हिलाकर रख दिया। वह उठकर अपने कमरे में चला गया। वह सोचने लगा, "क्या मां के भोजन न करने से बाबूजी शराब पीना छोड़ देंगे?" ऐसा तो कई बार हुआ था। मां नियमित व्रत भी रखतीं थीं और संभवतया उनका व्रत भी बाबूजी के शराब से विरक्त होने की मन्नत को लेकर था। यदि सचमुच बाबूजी व्रत रखने से शराब पीना छोड़ देंगे, तो वह भी मां के साथ है। और विपिन ने एक निर्णय ले लिया।

दूसरे दिन सब कुछ सामान्य हो गया। मां, बाबूजी हंस–हंस कर बातें कर रहे थे। लेकिन विपिन के दिलोदिमाग में कुछ और ही चल रहा था। नाश्ता करके बाबूजी दफ्तर चले गए। विपिन ने कहा, "मां, मुझे भूख नहीं है।" वह बिना खाए स्कूल चला गया।

बिना खाए वह स्कूल तो आ गया था, लेकिन ११ बजते–बजते दूसरे पीरियड़ में भूख से उसकी अंतड़ियां कुलबुलाने लगीं। मास्टरजी

की बात भी उसे समझ नहीं आ रही थी। उस के चारों ओर दाल–भात और रोटी सब्जी नाचने लगे थे।

रिसेस में वह दोस्तों के साथ बाहर निकला। सड़क किनारे एक आदमी भूने चने बेच रहा था। विपिन ने जेब में हाथ डाला। ५० पैसे का सिक्का हाथ आया। चने वाले की ओर उसके कदम बढ़ गए। कुछ दूर चलकर वह ठिठक गया। वह अपने निर्णय पर अटल रहना चाहता था।

लांग रिसेस में भी वह खाना खाने नहीं गया। बस एक गिलास पानी पीकर रह गया। अब वह अपनी भूख को दबाने का भरसक प्रयास कर रहा था। शरीर निठाल हुआ जा रहा था।

शाम को छुट्टी होने पर विपिन घर पहुंचा। थककर वह धप्प से कुर्सी पर बैठ गया। मां इंतजार कर रही थी। बस्ता एक ओर रखकर वह उसके जूते मोजे उतारने लगीं, "बेटा, तू रिसेस में खाना खाने क्यों नहीं आया?"

"बस ऐसे ही मां" कहते हुए विपिन हाथ मुंह धोने चला गया। मां ने खाना परोस दिया था। विपिन ने खाने से इंकार कर दिया। मां उसके हाथ पैर को छूने लगीं। घबराकर पूछने लगीं, "क्या हुआ, बेटे? थके–थके लग रहे हो? क्या बात है?"

"मां, घबराने की कोई बात नहीं है। मैं अनशन पर हूं," विपिन ने सहज ढंग से कहा।

"अनशन!! किसलिए, बेटे?" मां का चेहरा पीला पड़ गया।

"जब तक बाबूजी शराब नहीं छोड़ेंगे, मेरा अनशन जारी रहेगा। मैं उनसे बात भी नहीं करूंगा," विपिन ने कहा।

"नहीं विपिन, मेरे लाल, तुम ऐसा नहीं करोगे।" विपिन को छाती से भींचकर मां रोने लगीं।

"मां, मैं मरकर तेरी ही कोख से जन्म ले लूंगा, लेकिन बाबू जी को कुछ हो गया तो मैं दूसरा बाबूजी कहां से लाऊँगा। मुझे पूरा यकीन है, मेरे बाबूजी शराब छोड़ देंगे, "कहकर विपिन अपने कमरे में चला गया।

उसने अंदर से दरवाजा बंद कर दिया।

रात को मां ने बाबूजी से विपिन के अनशन की बात बताई तो बाबूजी सकते में आ गए। दौड़कर वह विपिन के पास पहुंचे, बोले, "विपिन बेटा, लो, मैंने आज से शराब पीना छोड़ दिया। बेटा चलो, खाना खा लो।"

"पिताजी, सुबह खा लूंगा, अभी आप आराम कीजिए। काम से थके होंगे," विपिन ने बाबूजी को वहां से भेज दिया। बाबूजी ने ऐसे ही कितनी बार शराब छोड़ देने का वायदा किया था। और कसम खाई थी। लेकिन वह अपना वादा निभा नहीं सके थे और उन्होंने कसमें तोड़ दी थीं।

दूसरे दिन भी सुबह विपिन बिना खाए पीए स्कूल चला गया। मां रोती रह गईं।

शाम को बाबूजी को पता चला कि विपिन का अनशन जारी है। उन्होंने शराब पी रखी थी। विपिन के घर आने पर पूछा, "गलत बात विपिन, तुमने अनशन तोड़ देने का वादा किया था, लेकिन तू अपना वादा निभा नहीं सका।"

विपिन ने एक परची लिखकर बाबूजी के सामने रख दिया। परची में लिखा था, "बाबूजी, जब आप शराब छोड़ देने का वादा निभा नहीं सके तब मुझसे वादा निभाने की आशा आप कैसे रख सकते हैं।" बाबूजी आवेश में आ गए। वह वहां से चले गए और शराब पीने लगे।

अनशन से विपिन की हालत बिगड़ती गई।

मां ने एक व्यक्ति को विपिन के दादाजी के पास भेज दिया। दादाजी पास के गांव में रहते थे। वह विपिन को बहुत चाहते थे। खबर पाकर वह सिर के बल दौड़े चले आए।

उनके पहुंचने तक विपिन को अस्पताल में भर्ती करा दिया गया था। मां ने उन्हें अस्पताल का पता दे दिया। दादाजी अस्पताल की ओर दौड़ पड़े। मां अपने ठाकुर जी के सामने हाथ जोड़कर घुटनों के बल

खड़ी हो गईं।

अस्पताल में विपिन जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा था। डॉक्टरों की पूरी सहानुभूति उसके साथ थी। वे उसे ठीक करने के लिए जीजान से प्रयास कर रहे थे। कोने के एक बेंच पर बाबूजी सिर लटकाए बैठे थे। दादाजी ने झकझोर कर उन्हें खड़ा कर दिया, "तूने, यह क्या कर दिया, बीजू? क्या कोई पिता अपने बच्चे की भी हत्या कर सकता है? यदि विपिन को कुछ हो गया तो वह हत्यारा तुम होगे। और यदि दुर्भाग्य से ऐसा हुआ तो मैं अपने हाथों से तेरा गला घोंट दूंगा। मैंने तुझे जीवन दिया है तो तुझे मौत भी दे सकता हूं" दादाजी क्रोध से कांपने लगे।

बाबूजी रोने लगे, "बाबूजी, मेरे विपिन को कुछ नहीं होगा। वह मेरा शराब छुड़ाना चाहता था ना, तो मैंने अब से शराब छोड़ दी। यदि मैंने सच्चे हृदय से शराब छोड़ने की शपथ ली है तो मेरे विपिन को कुछ नहीं होगा। और यदि उसे कुछ हो गया तो मैं खुद उसके पास चला जाऊंगा, बाबूजी।" दादाजी उन्हें गोद में लेकर सांत्वना देने लगे।

दादाजी नास्तिक थे। पुराने जमीनदार थे, सभी जरूरत की चीजें बिन मांगे और बिन प्रयास के उपलब्ध हो जाती थीं। इसलिए उनके स्वभाव में अकड़ थी। जमीनदारी जाने के बाद भी उनके और दादी जी के गुजारे लायक बहुत कुछ रह गया था। देवी देवताओं से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। परन्तु आज वह हृदय से भगवान का स्मरण कर रहे थे और मन्नत मांग रहे थे, "हे ईश्वर! यदि मैंने जीवन में कोई पुण्य किया हो तो उसका फल मेरे पोते विपिन को मिले। तू मेरी जिंदगी ले ले, भगवान, पर मेरे विपिन को बचा ले। मेरी आस्था तुम पर कायम रहे, ईश्वर। मैं आपके चारों धामों की यात्रा कर आपके चरणों में माथा टेकूंगा।"

मां की प्रार्थना, दादाजी की मन्नत, बाबूजी के विश्वास और डॉक्टरों के प्रयास से विपिन को होश आ गया। वह दादाजी से लिपट

गया, "दादाजी, आप कब आए?" वह मां को पूछने लगा। पूछने लगा, "मैं यहां अस्पताल में कैसे हूं। ये डॉक्टर और नर्स क्या कर रहे हैं?" दादाजी कहने लगे, "बेटे, अपने बाबूजी के बारे में कुछ न पूछोगे? पूछो, उसने शराब छोड़ी अथवा नहीं? उससे बात करो, बेटे।"

विपिन बाबूजी को देखने लगा। बाबूजी की आंखों से आंसू झर रहे थे। उन्हें लगने लगा था कि उनके कारण ही उस नन्ही सी जान पर बन आई थी। पश्चाताप के उन आंसुओं ने सब कुछ कह दिया और विपिन ने सब कुछ सुन लिया। वह दौड़कर बाबू के पास पहुंचा और उनसे लिपट गया।

विपिन को छाती से लगाकर बाबूजी आनंद में डूब गए।
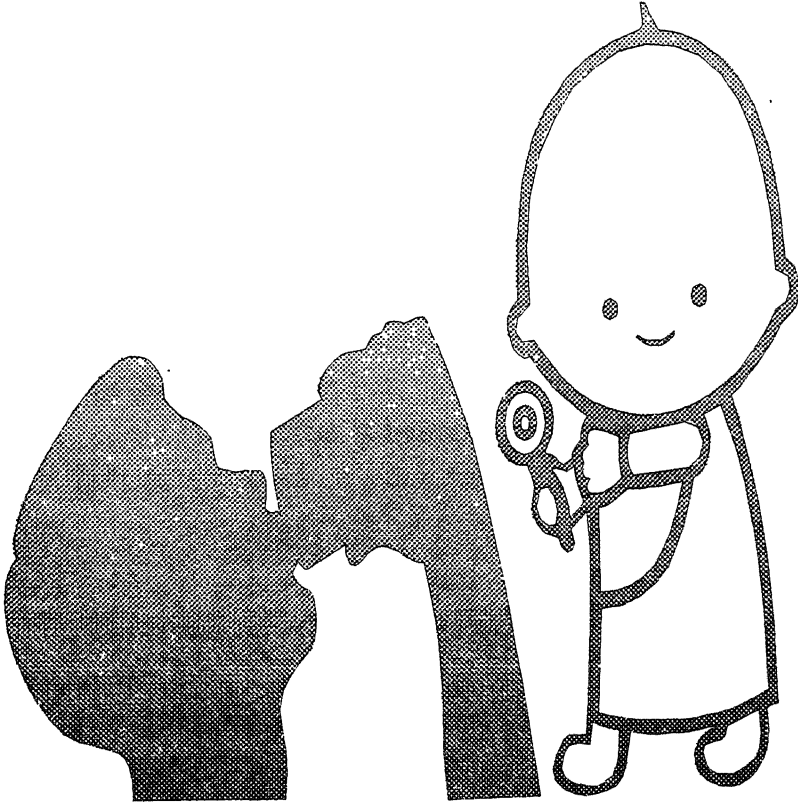
बांह भर राखी के धागे

डॉ० कृष्णा नागर

विद्यालय का वार्षिक समारोह था। बोर्ड की परीक्षा में जिन छात्रों ने विद्यालय का गौरव बढ़ाया था, उनके अभिभावकों को फूलों से तौलकर सम्मानित करने का कार्यक्रम भी विद्यालय की ओर से रखा गया था।

विभूति के माता–पिता को भी यह सम्मान मिला था। उनके बेटे ने हाई स्कूल की परीक्षा में प्रथम स्थान जो पाया था। मां विनीता और पिता अजीत की खुशी का ठिकाना न था।

तभी प्रधानाचार्यजी हॉल में आए। सभी अतिथि उनके सम्मान में खड़े हो गए। उन्होंने समारोह का उद्घाटन किया।

उल्लासपूर्ण वातावरण में कार्यक्रम चल रहा था। लेकिन विभूति की मां विनीता न जाने किन खयालों में खोई हुई थीं। एक बार उनके होंठ कुछ बुदबुदाए भी, लेकिन समीप ही बैठे विभूति के पिता भी न समझ सके। समारोह की समाप्ति के बाद विभूति अपने माता–पिता के साथ घर लौट आया।

दिन बीतते जा रहे थे। एक दिन एक बड़ा सा लिफाफा प्रधानाचार्य ब्रदर मोंटफोर्ड को मिला। कहीं पर भेजने वाले का कोई नाम नहीं था। उन्होंने उत्सुकता से वह लिफाफा खोला, तो वे आश्चर्यचकित रह गए।

उनके सामने एक साधारण से डिब्बे में रंग–बिरंगे राखी के धागे

रखे थे और हर धागे के साथ एक चिट लगी थी जिस पर उनके जन्मदिन की बधाई और मंगलकामनाएं लिखी थीं।

वे सोच में डूब गए। अचानक उन्हें जैसे कुछ याद आया। उन्होंने आल्मारी से एक अलबम निकाला और तसवीरें देखने लगे। अपने बचपन की एक तसवीर देखकर उन्हें जैसे बहुत कुछ याद आने लगा। राखी के धागे और बचपन की तसवीर उन्हें उनके बचपन में लौटा ले गए। तब उनकी आयु आठ दस बरस की होगी।

रक्षा बंधन का दिन था। उसका जन्मदिन भी था। सुबह से ही वह सजा धजा अपनी नई फुटबाल से खेल रहा था। तभी फुटबाल उछली और पड़ोस के घर में जा गिरी। वह फौरन उस घर में पहुंच गया। देखा, उसकी ही हम उम्र एक लड़की फुटबाल लेकर आई।

फुटबाल लेकर उसने कहा, "मेरा नाम मोन्टू है, और तुम्हारा नाम क्या है?"

"वि...इ...इ नीता...।" उस लड़की ने अटकते हुए अपना नाम बताया।

तभी वहां बैठी उस लड़की की मां ने कहा, "बेटा, मेरी बच्ची विनीता जन्म से ही ऐसी है। तुम्हारी तरह बात तो नहीं कर सकती लेकिन अपने टूटे-फूटे शब्दों में अटक-अटक कर अपनी बात कह लेती है। तुम जरा सी कोशिश करोगे, तो सरलता से समझ लोगे कि यह क्या कह रही है।"

फिर मोन्टू की सूनी कलाई देखकर उन्होंने हाथ, आंख और होंठो की भाषा में विनीता से कुछ कहा तो वह हाथ में पूजा की थाली लेकर आई। उसने बड़े ममत्व से मोन्टू के माथे पंर तिलक लगा कर कलाई पर राखी बांध दी। फिर खिलखिलाते हुए उसे मिठाई भी खिलाई।

अपनी बहन को मैं क्या दूं? मोन्टू सोचने लगा। अचानक उसके चेहरे पर चमक आ गई। उसने कहा, "लो, यह फुटबॉल तुम रख लो।" और उसने फुटबॉल विनीता को थमा दिया।

धीरे–धीरे उन दोनों परिवारों में भी आत्मीयता बढ़ती गई।

कुछ समय बाद मोन्टू के पिता का तबादला दूसरे शहर में हो गया। वह अपने परिवार के साथ विनीता के घर मिलने गया था। विनीता फूट–फूट कर रोने लगी थी। उसकी भी आंखें भर आई थीं। बड़े लोग अपने ढंग से विदा ले रहे थे और ये दोनों अपने नितांत मूक और मुखर ढंग से एक दूसरे को सांत्वना दे रहे थे। जीवन भर इसी तरह भाई–बहन बने रहने का संकल्प ले रहे थे।

ब्रदर मोंटफोर्ड सोच रहे थे, समय की गति भी कितनी विचित्र होती है। पढ़ाई–लिखाई, फिर नौकरी में व्यस्तता, कर्तव्य, उत्तरदायित्व की रेलमपेल में वह अपने जन्मदिन तक को भूल बैठे। लेकिन आज सहसा अतीत में से झांकता एक भोली बालिका का निरीह चेहरा बार–बार पूछ रहा था, क्या यही था तुम्हारा बहन के प्रति स्नेह!

तभी उनकी दृष्टि एक कागज पर पड़ी। उस पर लिखा था, मोन्टू, देख लो। मैं तुम्हें आज तक नहीं भूली हूं। तुम्हारे प्रत्येक जन्मदिन की शुभकामनाओं से संजोई राखियां तुम्हें भेज रही हूं। मेरी हार्दिक इच्छा है, यह रक्षाबंधन के पहले ही तुम्हें मिले। मोन्टू, तुमने मुझे न तो कभी पत्र ही लिखा और न ही अपना पता भेजा। तुम्हें मैं हमेशा याद करती हूं। कुछ समय पूर्व तुम्हें देखा तो बेहद खुशी हुई कि मेरा बरसों से बिछुड़ा भाई मिल गया।

उस दिन इतने लोगों के बीच तुम घिरे हुए थे। मैं चाहकर भी तुमसे नहीं मिल सकी। मोन्टू, विभूति मेरा बेटा है। लेकिन वह नहीं जानता कि उसकी मां, उसके प्रधानाचार्यजी की बहन है।

ब्रदर मोंटफोर्ड के मुंह से निकला, "ओह विनी, तुमने अपना पता तो लिखा ही नहीं। लिख देती तो तुम्हारा भाई, तुम्हारे पास जरूर पहुंचता।" तभी उन्हें विभूति का ध्यान आया। उन्होंने विभूति को बुलवाया।

विभूति उनके कक्ष में आकर बोला, "सर, आपने मुझे बुलाया?"

"आओ बेटे, बैठो।" विभूति बैठ गया। वे उसे स्नेह से निहारने लगे। सोचने लगे, काश, यह बालक उन्हें मामा कहता। लेकिन इसे क्या पता। विनी ने भी तो इसे नहीं बताया।

वे बोले, "विभूति, विद्यालय की छुट्टी के बाद तुम यहीं आना। तुमसे बहुत जरूरी काम है।"

"जी सर।" विभूति बोला और वापिस अपनी कक्षा में चला गया।

विद्यालय की छुट्टी के बाद विभूति प्रधानाचार्य के पास पहुंच गया।

"विभूति बेटे, मैं तुम्हारे घर चलना चाहता हूं।"

"आप! आप मेरे घर चलेंगे सर।" विभूति को आश्चर्य भी हुआ और खुशी भी। "चलिए सर!" वह बोला और प्रधानाचार्य के साथ वह घर की ओर चल पड़ा।

घर पहुंचते ही विभूति बोला, "मां, देखिए, मेरे प्रधानाचार्यजी आए हैं।"

मां बाहर आई। सामने ब्रदर मोंटफोर्ड को देखकर वे हतप्रभ रह गईं। वह बुदबुदाईं, "मोंटू तुम!"

"सर, मेरी मां ठीक से बोल नहीं पातीं।" विभूति बोला।

"मुझे मालूम है।" ब्रदर मोंटफोर्ड ने कहा।

"आपको मालूम है? वो कैसे सर?"

ब्रदर मोंटफोर्ड मुस्कराए और फिर उन्होंने अपने साथ लाया हुआ लिफाफा उसे थमा दिया।

विभूति ने देखा, उसमें ढ़ेर सारी राखियां थीं।

"मैं समझ गया सर! अब मेरी समझ में आया कि मां हर साल रक्षाबंधन के दिन क्यों उदास हो जाती थीं। उनके मुंह से 'मोन्टू' नाम तो अनेक बार सुना है। पूछने पर वे बताती थीं, मोन्टू उनके भाई का नाम है। बस, इससे अधिक कभी कुछ बताया भी नहीं। उन्हें उदास देखकर कभी मेरी भी हिम्मत नहीं हुई कि और कुछ पूछूं। अब मैं समझ

गया हूं। मोन्टू यानी ब्रदर मोंटफोर्ड। मेरे प्रधानाचार्यजी! आप मेरे मामाजी हैं!" कहते हुए विभूति उनके चरणों में झुक गया।

ब्रदर मोंटफोर्ड ने उसे गले लगा लिया। और फिर विभूति ने देखा, मां व मामाजी दोनों की ही आंखों में आंसू थे। दोनों के पास कहने–सुनने को बहुत कुछ था।

कुछ देर बाद विभूति के पिता भी दफ्तर से आ गए। उन्हें जब सारी बात पता चली तो वे भी बेहद खुश हुए।

दो दिन बाद ही रक्षाबंधन का त्योहार था। ब्रदर मोंटफोर्ड रक्षा बंधन के दिन आने का वायदा कर चले गए।

रक्षाबंधन के दिन प्रातः ही वे विभूति के घर आ गए। मां ने उन्हें बहुत स्नेह से राखी बांधी। तभी ब्रदर मोंटफोर्ड बोले, "विभूति बेटे, राखियों वाला, वो लिफाफा लेकर आना।" विभूति ने लिफाफा लाकर दे दिया।

"विनी, इन राखियों की प्रतीक्षा भी आज समाप्त हुई। देखो न, ये कितने बरसों से मेरी कलाई पर बंधने के लिए बेताब हैं। इन्हें भी बांध दो।"

विभूति ने देखा, मां अपने भाई की कलाई पर राखियां बांध रही थीं। कोहनी तक कलाई राखियों से भर गई, तो उनके भाई ने दूसरा हाथ आगे कर दिया।

दोनों हाथों की बाहें राखियों से भर गईं।

अचानक विभूति बोला, "मामाजी को लड्डू भी इतने ही खिलाओ!"

सभी हंस पड़े।
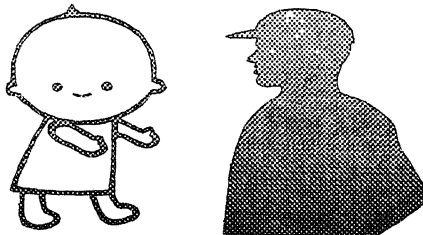
छूटी जिद

कल्पनाथ सिंह

गोपाल बचपन से ही बहुत शरारती था। जिद्दी तो इतना था कि एक बार जिस भी बात को ठान लेता, जब तक पूरा नहीं कर लेता अपनी जिद पर अड़ा रहता। लाख समझाने—बुझाने पर भी उसके ऊपर कोई असर नहीं होता। मनमौजी इतना था कि जिस बात को करने के लिए उसे कोई मना करता उस बात को वह बार—बार करता। इसलिए कोई उसको किसी बात को करने से मना नहीं करता। सभी लोगों को उसकी इस आदत का पता था कि गोपाल को किसी काम को न करने के लिए मना किया जाएगा, तो वह उसे और जोर—शोर से करने लगेगा।

गांव में उसका एक दोस्त किशोर था। लेकिन अपनी जिद में वह कभी—कभी किशोर की भी बात नहीं मानता था। किशोर को इसका दुःख तो बहुत होता लेकिन दोस्त के नाते वह मन मसोस कर रह जाता था। स्कूल से छूटते ही गोपाल रास्ते भर जानवर, पेड़—पौधों से टकराता चलता। किशोर बार—बार मना करता लेकिन गोपाल उसे गुस्से से कुढ़कर घूर देता और बेचारा सीधा—सादा किशोर चुप हो जाता। गोपाल जितनी देर तक स्कूल में रहता उतनी ही देर तक वह शान्त रहता वरना एक मिनट के लिए भी उसके हाथ—पांव शान्त नहीं रहते। गांव के लड़के तो उससे डरते, साथ ही बड़े—बूढ़े भी गोपाल को

छेड़ना नहीं चाहते थे।

उसके इस शरारती आदत तथा जिद्दीपन के कारण उसके मां बाप भी बहुत दुःखी रहते। बार–बार उसको दुलार कर फुसला कर समझाते भी लेकिन गोपाल पर पानी पर खिंची लकीर की तरह इन सब बातो का कोई असर नहीं होता था। मां–बाप भी सोचते कि चलो अभी बच्चा है। बड़ा होने पर कुछ समझदार हो जाएगा, तो हो सकता कि खुद ब खुद इसकी शरारत और जिद्दीपना कम हो जाए।

उधर गोपाल था कि जितनी ही उसकी उम्र बढ़ती जाती उतनी ही उसकी शरारतें भी बढ़ती जातीं। हट्टा–कट्टा इतना कि उससे दो चार बरस बड़ी उम्र के लड़के भी उसके हाथ मिलाने से डरते। सिर्फ किशोर ही उससे टक्कर ले सकता था। दोनों हालांकि दो घर के लड़के थे लेकिन देखने में लगता कि किशोर और गोपाल दोनों सगे भाई हैं। अभी दोनों की उम्र सिर्फ दस–दस बरस की ही थी, लेकिन दोनों लगते तेरह चौदह बरस के थे।

इधर कुछ दिन से गोपाल न जाने कहां से एक गुलेल खरीद लाया था। कुर्ते की एक जेब में गुलेल, दूसरी में गोली लिये घूमता रहता और जब चाहता चुपके से गुलेल निकालता और किसी भी जानवर को मार देता। कभी कुत्ता, कभी गाय–भैंस, कभी बकरी, सूअर कभी सीधा–सादा गधा किसी को भी गुलेल का निशाना बनाने में उसे जरा भी हिचक नहीं होती थी। किशोर यह सब देख और निर्दोष जानवरों पर गुलेल चलाने से मन ही मन कुढ़ता रहता। कभी–कभी गोपाल से झगड़ा भी कर बैठता, लेकिन दो चार घंटे तो गोपाल शान्त रहता। फिर अपनी बात पर उतर आता।

कभी–कभी किशोर उससे गुस्सा होकर उसका साथ छोड़ देता, लेकिन गोपाल उसे फिर मना लेता। किशोर जब उससे पूछता कि गोपाल क्यों बेगुनाह जानवरों पर गुलेल चलाते रहते हो, गोपाल कहता कि मैं अपना निशाना पक्का करता हूं। किशोर कहता कि जानवर

घायल हो जाते हैं तो तुमको दया नहीं आती तो वह कहता दया क्या मुझे तो अपना निशाना पक्का देख कर और खुशी ही होती है।

एक दिन दोनों स्कूल से साथ–साथ निकले, रास्ते के बाग में एक पेड़ पर तोते के जोड़े बैठ कर खेल कर रहे थे। इतने में गोपाल ने चुपके से गुलेल निकाल कर ऐसी मारी कि एक तोता 'टें टें' करता जमीन पर गिर गया। किशोर दौड़ कर तोते के पास गया तो देखा कि उस तोते का एक पंख टूट गया है और टूटे हुए पंख से खून बह रहा है। किशोर ने जब गोपाल की ओर देखा तो गोपाल खिल–खिलाकर हंस पड़ा और बोला "देखा किशोर, मेरा निशाना कितना पक्का हो गया है।"

गोपाल के मुंह से इतना सुनते ही किशोर क्रोध से आग बबूला हो गया और उसका कालर पकड़कर बोल पड़ा "मूर्ख, आज तू मेरा दोस्त नहीं होता तो तेरी टांग तोड़ देता। बता इस बेचारे तोते ने तेरा क्या बिगाड़ा था? तूने क्यों इस पर गुलेल चला कर घायल कर दिया?"

गोपाल किशोर के क्रोध से हक्का–बक्का रह गया। किशोर उसको धक्का देकर बोला "जा आज से हमारी तुम्हारी कुट्टी। जब तू यह हत्या करना नहीं छोड़ेगा, मैं तुमसे बात तक नहीं करूंगा।"

तैश में आकर गोपाल बोल पड़ा, "जा–जा तू नहीं बोलेगा, तो मेरा कुछ बिगड़ नहीं जाएगा।"

तू–तू मैं–मैं होने के बाद किशोर ने तोते को गोद में उठाया और उसे पुचकारता हुआ लेकर सिर झुकाये अपने घर चला गया। लेकिन गोपाल पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उल्टे वह अपनी गुलेल लेकर बाग में घूमता रहा। इतने में एक कबूतर का जोड़ा उसे दिखाई दे दिया। गोपाल गुलेल लेकर बाग में घूमता रहा। गोपाल ने गुलेल का निशाना कबूतर पर साधा। संयोग की बात गुलेल की गोली एक डाल से टकरा कर एक शहद के छत्ते में जा लगी। कबूतर तो उड़ गये लेकिन शहद के छत्ते में गोली लगते ही हजारों मधुमक्खी आकर गोपाल से चिपक कर काटने लगीं। अचानक मधुमक्खियों के हमले से

गोपाल चीख कर भागा और आगे जाकर गिर पड़ा। मधुमक्खियों ने उसे गिरने पर भी नहीं छोड़ा। उधर गिरने से गोपाल की एक बांह टूट गयी। वह जोर–जोर से चीखने लगा। तब तक कुछ राहगीर आ गये और उन्होंने अपने कम्बल से ढ़क कर गोपाल को मधुमक्खियो से बचाया और उसे उसके घर पहुंचाया।

उधर किशोर अपने घर पहुंच कर घायल तोते की मरहम पट्टी कर ही रहा था कि तब तक उसे गोपाल के घायल होने की सूचना मिली। किशोर घायल तोते को पिजड़े में बैठा कर दौड़ा–दौड़ा गोपाल के घर गया। उसे पता चला कि गोपाल को लेकर लोग अस्पताल चले गये हैं। किशोर अस्पताल पहुंचा तो गोपाल की हालत देखकर वह हक्का–बक्का रह गया। मधुमक्खियों के काटने से उसका मुंह सूज गया था और आंखें बंद हो गयी थीं। टूटे हुए हाथ पर प्लास्टर चढ़ाया जा रहा था। किशोर की आवाज़ सुनकर गोपाल फफक कर रो पड़ा। देर तक किशोर उसकी चारपाई पर बैठकर उसे सांत्वना देता रहा।

हफ्ते भर बाद गोपाल अस्पताल से जब घर आया तो किशोर के गले से लिपट गया और कान पकड़ कर बोला "भइया किशोर अब जीवन में कभी किसी को नहीं सताऊंगा। उस दिन अगर तुम्हारी बात मान ली होती तो मेरी ऐसी दुर्गति नहीं हुई होती।" और सचमुच गोपाल उस दिन से एक दम सुधर गया। उसकी सारी शरारत और जिद्दीपन हमेशा के लिए समाप्त हो गया था।
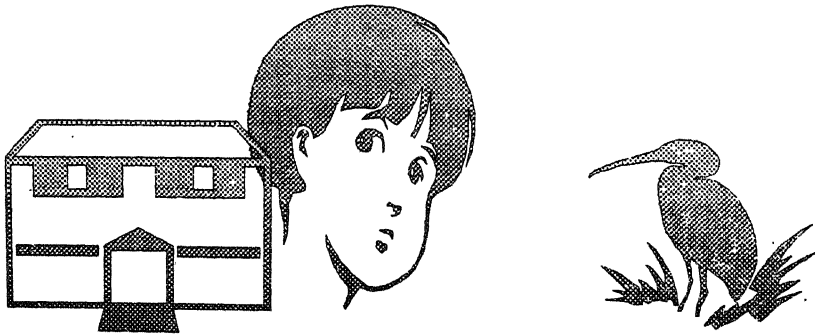
एक प्रहलाद और

डॉ० राष्ट्रबंधु

जिस मिल की चिमनी के धुंए से प्रदूषण फैलता था, उस के आसपास मजदूरों की बस्ती थी। उनके बच्चे अपनी अच्छी से अच्छी पोशाक में भी, अमीरों के बच्चों के मुकाबले दीन लगते थे। फिर भी कबड्डी का खेल कुछ इतना लुभावना था कि इसमें अमीरों के बच्चे भी आकर खेलने लगे। उनको न तो मजदूर बच्चे गंदे लग रहे थे और न उनकी पोशाक खराब थी। कबड्डी के खेल ने सारे भेदभाव मिटा दिए थे।

अनादि मिल मैनेजर का पुत्र था। उसके पिता धीरेंद्र ने कार से बंगले में जाते समय अनादि को देखा, तो वह अपने को सहज नहीं रख सके। कार से उतर कर उन्होंने अनादि के कान खीचे, "तुम इन गंदे बच्चों के साथ खेल रहे हो। कबड्डी में चोट लगने का डर रहता है। क्रिकेट खेलते। चलो।"

अनादि का विरोध पिताजी के आगे दब गया और वह चुपचाप चला गया। सारे बच्चे तमाशा देख कर भी शांत थे। उनके चले जाने पर कुछ बातें होती रहीं। अनादि के प्रति उन सब की सहानुभूति तो थी, लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं थी।

पिताजी की बातों में अनादि को कोई तर्क नहीं मिला। वह नहीं मानता था कि वह मजदूरों के बच्चों से अलग है। कबड्डी की जगह वह

अपना बैट और बॉल लेकर आ गया। खेल फिर जम गया। काफी देर तक खेल चला और जब खत्म हुआ तो आपस में बातें होती रहीं।

अनादि ने अपने साथियों को बताया, "मेरे पिताजी ने मिल के हड़ताली कर्मचारियों को नौकरी से निकाल दिया है। माताजी से यह बात उन्होंने बताई और यह भी कहा कि आजकल उनका तनाव बढ़ गया है।"

मजदूरों के बच्चों के लिए यह अग्रिम सूचना थी। इसके लिए वे अनादि के प्रति आभारी अनुभव कर रहे थे। बहुत उत्सुकता से वे अनादि की बात सुन रहे थे।

अनादि ने आगे बताया, "मजदूर सरकारी मिल को सरकारी ही बनाए रखना चाहते थे। मेरे पिताजी ने सरकार से मिलकर किसी सेठ को मिल बेच दी है। सरकार मिल चलाना नहीं चाहती, क्योंकि मिल में घाटा हो रहा है।"

मजदूरों के बच्चों में से राकेश ने कहा, "अब हम बच्चों का क्या होगा? बेरोजगार बापों के बच्चे अब स्कूल की फीस जमा नहीं करेंगे तो वहां जाएंगे क्यों? जब ग़लत रास्तों से रुपया कमाने की ज़रूरत बना दी गई है, तब उधर ही जाएंगे।"

अनादि ने बात को आगे बढ़ा कर कहा, "बच्चों की चिंता किसे है? हम अपने साथियों के बारे में सोचते हैं, लेकिन बड़े बड़ों का बच्चों से क्या सरोकार?"

इस के बाद अनादि घर चला आया। उस के दिमाग में राकेश, डेविड, कासिम आदि घूम रहे थे। ये अब कैसे पढ़ाई जारी रखेंगे? पिताजी ने इनके बारे में नहीं सोचा। बच्चे असामाजिक भी तो बन सकते हैं, समाज को सोचना चाहिए। उस ने इस विषय पर सोचा और निर्णय लिया कि वह अपने पिताजी से बिना सलाह लिए इनके लिए कुछ करेगा।

मोहल्ले के छात्रों ने, 'छात्र सहायता कोष' स्थापित किया। आपस

में चंदा किया और बच्चों की फीस जमा करने का निश्चय किया। अनादि को सभी बच्चों ने छात्र सहायता कोष का अध्यक्ष बना दिया। अध्यक्ष अनादि ने बच्चों से पढ़ाई जारी रखने की अपील की। उसने आश्वासन दिया कि वह आर्थिक सहायता जुटाता रहेगा।

इन बच्चों में सौरभ एक ऐसा छात्र था जो स्वाभिमानी था। सौरभ ने कहा, "आप हमारी सहायता कीजिए। मैं सुबह अखबार खरीदने के लिए जो रुपए लगाऊंगा, उतना धन, यही २०–२५ रुपए आप दे दीजिए। मैं अखबार बेच कर कमाई से पढ़ाई करुंगा।"

अनादि ने मजदूरों के बच्चों का एक सर्वेक्षण किया कि किस बच्चे को कितने धन की आवश्यकता है। इसके बाद वह अपनी पढ़ाई घर पर करने की बजाय बाहर अपना समय मज़दूरों के बच्चों में बिताने लगा।

अनादि को किताबें व कापियां खरीदने के नाम पर जितने रुपये मिलते, उनको अपने इन साथियों की ज़रूरतों पर खर्च करने लगा। परिणाम यह हुआ कि उसकी मासिक परीक्षा में प्राप्तांक कम आए। विद्यालय से इसकी शिकायत भेजी गई। धीरेंद्र को चिंता हुई तो उन्होंने खुफियातौर से जांच पड़ताल शुरू की। अनादि के कमरे में उनको आपत्तिजनक कुछ कागज रहस्य उद्घाटित करते मिल गए। इनसे उन्हें ज्ञात हुआ कि अनादि की गतिविधियां किस दिशा में हैं।

उन्होंने अनादि को बुला कर प्यार से समझाया, "बेटे, इन गंदे बच्चों का साथ तुम्हें नहीं करना चाहिए। मजदूरों की कामचोरी के कारण मिल में घाटा होता है। इसीलिए हमें इसे बेचना पड़ रहा है। जब तक मिल को आमदनी नहीं होगी, सरकार कैसे घाटा पूरा करती रहेगी?"

अनादि ने कहा, "पिताजी! अंग्रेजी शिक्षा से भेदभाव मत चलाइये, मजदूर, मालिक एक दूसरे पर निर्भर हैं, साथी हैं और सहयोगी हैं। मजदूरों के बच्चों के साथ अमीरों के बच्चे न पढ़ सकें, इसलिए ज्यादा फीसवाले स्कूल चलाये जा रहे हैं। पुरानी शिक्षा में राजाओं के बेटों को

भी साधारण बच्चों के साथ रहना पड़ता था और उनके साथ काम करना पड़ता था। राजपुत्रों को कर्मठता सिखाई जाती थी। अब धनी बच्चे केवल पढ़ते हैं, व्यवहार नहीं जानते।"

धीरेंद्र ने कोई तर्क न देकर, बड़े होने के नाते अपनी ही बात रखी, "तुम उद्दंड बन रहे हो, अपने को दूसरा प्रहलाद समझते हो। तुम्हें प्रशासन सिखाने के लिए अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय में भर्ती कराया गया है। तुम तो नेतागिरी करने लगे हो। तुम्हारी नेतागिरी नहीं चलने दूंगा। घर से बाहर निकलने नहीं दूंगा, अपने अस्तित्व और तुम्हारे व्यक्तित्व के लिए।"

अनादि उस दिन से अपने साथियों से मिल नहीं सका। वह बैचेन रहने लगा।

कासिम ने चोरी छिपे अनादि से भेंट की और बताया कि मिल कर्मचारियों का आंदोलन तेज हो गया है। शहर की कई यूनियन मिल गई हैं। शांति से काम चलता न देख कर मजदूरों ने क्रांति का रास्ता अपना लिया है। सहानुभूति न रखने वालों की निगाहों में मजदूर उग्रवादी हो गए हैं।

अनादि ने कहा, "मरता क्या न करता? अपने बीबी, बाल बच्चों की दुर्दशा मजदूर कैसे सहेंगे? कब तक इंतजार करेंगे। जो लोग यह कहते हैं कि लड़ाई मजदूरों और मालिकों के बीच है, लेना देना उन्हें है हमें नहीं, वे ग़लत हैं। जब हवा जहरीली हो जाती है तो सबके लिए होती है। जब वातावरण अशांति का बनता है तो कहीं भी आग लग सकती है, फैल सकती है। यही कारण है कि जनता से बहुत दूर रहने वाला ऋषि कहता था, सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ रहें। तभी हमारी कुशलता रहेगी।"

कासिम ने कहा, "फिर हम तो एकसाथ रहते हैं। हमारे घरों के शीशे कांच के हैं और हम बेखबर पत्थर फेंक रहे हैं।"

"कासिम चलो, मैं चलता हूं, अपने साथियों से मिलता हूं, साथियों

के मां बाप से मिलता हूं। मुझे यह घर छोड़ना पड़ेगा।'' अनादि ने कहा।

और अनादि ने घर छोड़ दिया। कासिम के साथ वह सौरभ के घर आया और दोनों कमाई करने लगे। सौरभ ने कहा, ''बिना मेहनत के काम नहीं चलेगा। मजदूरों को मेहनत करनी ही पड़ेगी।''

कासिम ने कहा, ''कुछ लोग बातों से कमाते हैं। कुछ लोग दिमाग चला कर कमाते हैं। ऐसे लोग अक्सर जल्दी बुढ़ापा बुला लेते हैं। रक्तचाप और जोड़ों के दर्द से परेशान रहते हैं, लेकिन हाथ पैर चला कर दिमाग से कार करने वाले कभी लाचार नहीं होते।''

डेविड इन दोनों की बात सुन रहा था। उसने कहा, ''हम मजदूरों के बेटे हैं, हम परिश्रम छोड़ेंगे तो कहीं के न रहेंगे। 'छात्र सहायता कोष' के द्वारा हम छात्रों को संगठित करेंगे और पढ़ने की इच्छा रखने वाले की सहायता करेंगे। पढ़ाई की रुकावट से मोर्चा लेना, हर सदस्य का कर्तव्य होगा।''

कासिम ने बालश्रमिकों को इकट्ठा किया। इन बालकों को पढ़ाने के लिए उसने सांध्य कक्षाएं लगाईं। होटल वाले भड़क गए कि कहीं हमारे होटलों से काम करने वाले लड़के, इन कक्षाओं में न चले जाएं। इसलिए बहुत से लोग खिलाफत पर उतर आए।

कुछ थोड़े से लड़के चारों तरफ से घिरे थे, अपने अभिभावकों से, बालश्रमिक नियोजकों से, सरकारी अमले से, अंग्रेजी पद्धति और अपने को श्रेष्ठ मानने वालों से, और धीरेंद्र से। ये बच्चे न तो निराश थे और न अपने रास्ते को साफ और आसान पा रहे थे। अभिभावक चाहते थे कि समझाने बुझाने और डांटने से इन बच्चों को अपने तरीके से चलाएं। बालश्रमिक नियोजक भी हिंसा का तरीका अपनाना नहीं चाहते थे, लेकिन अपनी आजीविका चलाने के लिए वे गलत कदम भी उठाने को तैयार थे। अच्छे विद्यालय इनको शैतान और लाइलाज मान बैठे थे।

'छात्र सहायता कोष' का प्रत्येक सदस्य इन लोगों की आंखों में खटक रहा था। धीरेंद्र ने अपने बेटे को दुश्मन मान लिया था और मोर्चा

संभाला था।

आगे जो हुआ, अचानक हुआ, पता नहीं चला कैसे क्या हो गया। अनादि के साथी अगर उसे घेर न लेते तो उसकी जान चली जाती। पीटने वाले भागे और यह कहते गए नेतागिरी बंद कर देना।

अन्य मजदूरों के बच्चों ने सेवा से इन आहत व्यक्तियों की सेवा की। अनादि की मां ने धीरेंद्र से छिपा कर आर्थिक सहायता दी। अपनी–अपनी हैसियत के अनुसार अभिभावकों ने धन खर्च किया। प्रशासन चुप था। पता नहीं, आक्रमणकारी कौन थे? धीरेंद्र ने अनादि की उपेक्षा की। नहीं आए।

जब अनादि होश में आया, तो उसने अपने साथियों का कुशलमंगल पूछा।

उसने कहा, "चट्टानों से झरना टकराता है, लौटता नहीं।" डेविड ने बताया, आक्रमणकारी धीरेंद्र के भेजे हुए थे। वे अनादि को रास्ते पर लगाने के लिए आए थे। उनका प्रयोजन मजदूर आंदोलन को दबाना था।
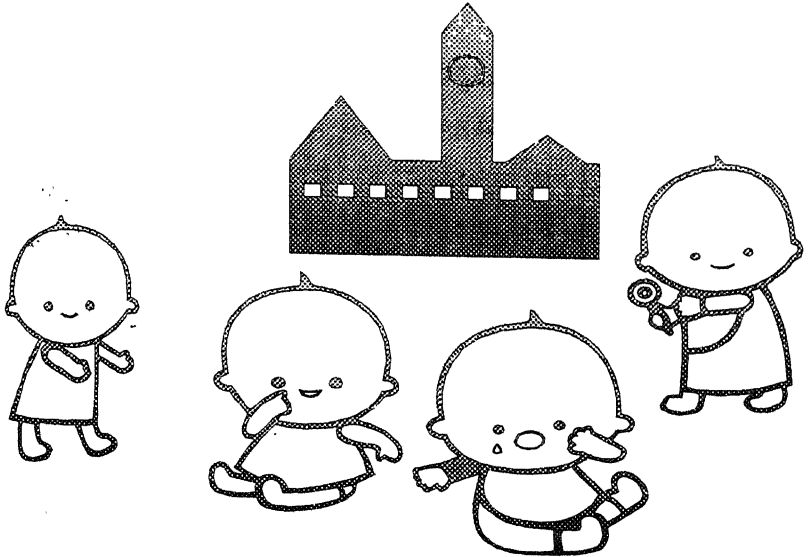
बड़ा आदमी

विष्णुकान्त पाण्डेय

तपन ने माँ की गर्दन में अपनी दोनों बाहें डालकर प्यार जताते हुए कहा "मैं तो अब बड़ा हो गया हूँ माँ! देखों तो सही, कितना बड़ा हो गया हूँ मैं!" अपने को बड़ा बताने के लिए वह अलग तनकर खड़ा हो गया जैसे बड़े खड़े होते हैं।

"रोज यही बात– बड़ा हो गया, बड़ा हो गया। अरे बाबा, अभी बड़ा क्या हुआ, सिर्फ सोलहवाँ साल तो जा रहा है तेरा।" माँ ने तपन को गोद में समेट लिया और चूमने लग गईं।

"तब तो मैं कभी बड़ा नहीं हो पाऊँगा माँ, तपन ने रूठने का बहाना किया और माँ की गोद से अलग जा बैठा।

"क्यों बड़ा नहीं होगा बेटे, तू बड़ा होगा और इस छप्पर के इतना बड़ा हो जायेगा, समझे?" माँ ने समझाने की चेष्टा की और हँसने भी लगी।

"मैं तो बड़ा हो भी जाऊँगा माँ, तो भी तेरे सामने नन्हाँ मुन्ना गुड्डा ही बना रह जाऊँगा। जान गया माँ, तू मुझसे प्यार नहीं करती, तू मेरी एक नहीं सुनती, मेरा जरा भी ख्याल नहीं है तुझे।" तपन ने रुआँसा मुँह बना लिया।

"कैसी बातें करता है पगले! अरे, तेरा ख्याल नहीं करूंगी तो करूंगी किसका? अच्छा, बोल बेटे, तू कहना क्या चाहता है आखिर?"

माँ जरा गम्भीर हुई।

"माँ मैं बड़ा आदमी बनना चाहता हूँ। बड़ा माने ऊँचाई में बड़ा नहीं, काम–धाम–नाम में बड़ा।"

"बड़ा आदमी बनना चाहता है?" माँ एक सूखी हँसी हँस कर रह गई, ऊपर–ऊपर की हँसी। भीतर–भीतर उसका हृदय तूफानों से भर आया जो आँखों की राह बरस पड़ा। उसने अपने उमड़ते आँसुओं को रोकने की हर चेष्टा की, पर व्यर्थ। वे न रुके, बरस पड़े और बरसते ही गये।

"तू तो रो रही है माँ! क्या मेरा बड़ा आदमी बनना तुझे पसन्द नहीं?" तपन ने माँ की छाती में अपना मुँह छिपा लिया। उसकी भी आँखें भर आई थीं जिन्हें वह अपनी माँ को नहीं दिखाना चाहता था।

रुँधे गले से माँ बोली, "रो नहीं रही हूँ बेटे, यों ही आँसू छलक आये। ये आँसू दुख के नहीं, खुशी के हैं मेरे लाल! कौन ऐसी अभागी माँ होगी जो यह न चाहेगी कि उसका बेटा बड़ा आदमी बने, अपना नाम रौशन करे। तू नहीं समझ सकता बेटे, तेरी बातों से मैं आज कितनी खुश हूँ! लेकिन..." माँ का गला फिर भर आया और वह आगे कुछ भी बोल नहीं पाई।

"लेकिन क्या माँ?" तपन अपनी माँ से बहुत कुछ सुन लेना चाहता था।

माँ चुप ही रही तो तपन ने फिर पूछा, "बता दे न मेरी अच्छी माँ, यह "लेकिन क्या है?"

माँ ने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा, "लेकिन यही कि तुझे सहारा देने वाला है कौन कि तू बड़ा आदमी बनेगा? भगवान ने तुझसे बचपन में ही पिता की छाया छीन ली। अब कौन तेरी मदद करेगा, आगे बढ़ायेगा? बड़ा बनने के लिए किसी का सहारा तो चाहिए ही।"

"कैसी बातें करती हैं माँ? पिताजी न रहे तो क्या हुआ? तू तो है, और तू खुद कहती है कि जिसका सहारा कोई नहीं होता, उसका

सहारा भगवान होता है। पिताजी के मरने के बाद तूने ही तो मुझे पाला–पोसा और इतना बड़ा बनाया। तू मेरे लिए क्या–क्या नहीं करती! दिन भर घर–घर मारी–मारी फिरती है और तब कहीं दो जुन भोजन जुटा पाती है। तेरी देह पर ये फटे कपड़े, पर मेरे कपड़े तो कभी फटने भी नहीं देती। देख माँ, मुझे दुधमुहाँ बच्चा न समझ, अब मैं बड़ा हो गया हूँ। सब कुछ समझता हूँ। तेरा दुखड़ा मुझसे देखा नहीं जाता। अब मुझे भी कुछ काम करने दे माँ! तू दिन भर खटती है और मैं निठल्ला बैठा रहता हूँ, न कोई काम, न धन्धा। यह ठीक है क्या?''

''आज कैसी–कैसी बातें कर रहा है रे! बैठा कहाँ रहता है? दिन भर तो कुछ न कुछ करता ही रहता है और पढ़ना–लिखना क्या काम नहीं है? सच पूछो तो पढ़ना एक तपस्या है, कठिन तपस्या। पढ़ने में जो जितना तपता है वह उतना ही खरा सोना निकलता है, और तू? तू तो तपन है न, तपता रहेगा, समझे?''

''खूब समझता हूँ माँ लेकिन मेरे पास तो पढ़ाई–लिखाई के बाद भी काफी समय बच जाता है। इस बचे समय में मैं कुछ और काम कर सकता हूँ। पढ़ाई के समय पढ़ाई और काम के समय काम।''

''आखिर तू कहना क्या चाहता है? साफ–साफ कह भी तो? पहेलियाँ बुझाने से क्या लाभ?''

''बात यह है माँ, कि गाँव की मेरी पढ़ाई खत्म हो रही है। मैं शहर जाकर आगे पढ़ना चाहता हूँ।'' तपन ने माँ को समझाया।

माँ एक मिनट चुप रही, फिर बोली, ''बेटे, शहर में पढ़ाना मेरे बूते की बात नहीं। गाँव में तो साग–सत्तू जो मिला, खिला देती हूँ। सरकारी स्कूल है, पैसे भी नहीं देने पड़ते। शहरों में तो दीवारें भी पैसे माँगती हैं। ढंग का खाना, अच्छे कपड़े, रहने का घर, सब पैसों से ही तो होगा? इतना कहाँ जुटा पाऊँगी? तेरे पिता होते...'' कहते–कहते रुक गई, आगे कुछ भी कह न सकी, फफक पड़ी और आँखों से कई बूँदे एक साथ टपक पड़ीं।

"तू इसकी बिल्कुल चिन्ता न कर माँ, शहर में बहुत सारे काम रहते हैं। थोड़ी मेहनत कर दी कि ढ़ेरों पैसे आ गये। वहाँ तो सुना है माँ, पैसे बहते चलते हैं। जिसमें भी थोड़ी अक्ल हो, ढ़ेरों पैसे बटोर लेता है। मैं भी वहाँ कोई छोटा–मोटा काम कर लूँगा, काम के समय काम और पढ़ाई के समय पढ़ाई। और हाँ, मैं तो तुमसे कहना भूल ही गया था कि मैं जो अपनी परीक्षा में अव्वल आया था न? उसके लिए मुझे सरकार से ग्रामीण छात्रवृत्ति मिली है। कुल मिलाकर मेरा काम तो चल ही जायेगा, मैं तुझे भी कुछ रुपये भेजता रहूँगा और हो सका तो तुझे भी वहीं बुला ले जाऊँगा।"

"मैं तो खूब समझती हूँ बेटे, तू आगे बढ़ना चाहता है, पढ़ना चाहता है। मैं तेरी राह में रोड़े नहीं अटकाऊँगी। लेकिन बेटे, शहर में बहुत बुरे लोग भी रहते हैं और पैसा कमाने के लिए बहुत सारे गलत काम भी करते हैं। ऊपर से, आये दिन हंगामे, तोड़–फोड़, लूट–खसोट, मारपीट, नारेबाजी, लाठी–गोली और जाने क्या–क्या। शहर की बात सुनकर मेरा तो दिल बैठा जा रहा है। कहीं तू बुरी संगति में फंस गया तो फिर मैं कहीं की नहीं रह जाऊँगी। अभागिन विधवा का एक ही सहारा है तू।" माँ की आँखें फिर गीली हो आई थीं। तपन ने उनमें झाँक कर देखा, कितनी गहराई थी उनमें, कितनी वेदना भरी थी उन आँखों में और कितना प्यार–दुलार भी!

"तू बिल्कुल निश्चिन्त रह माँ, तेरा बेटा कभी गलत काम नहीं कर सकता। मैं तेरे चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ माँ, कि ईमानदारी से मेहनत करके थोड़े पैसे अपनी जरूरतों के लिए कमाऊँगा और खूब मेहनत से पढ़ूँगा, बड़ा आदमी बनूँगा और तुझे कभी यह कहने का मौका न दूँगा कि तू अभागिन है, तेरा कोई सहारा नहीं।" इतना कहते–कहते तपन ने माँ के चरणों में माथा टेक दिया। माँ मोम–सी पिघल उठी और बेटे को छाती से लगा लिया। फिर दोनों चुप, कोई भी कुछ न बोला। हाँ, दोनों की आँखों से गंगा–यमुना की धारा बह निकली, बहती रही

लगातार किसी सरस्वती से मिलकर त्रिवेणी बनाने के लिए जहाँ दुनिया के लोग स्नान कर अपने को कृतार्थ समझें।

दूसरे दिन अगली सुबह तपन जागा। माँ भी जागी। माँ चौके की ओर भागी और तपन मैदान की ओर। तपन ने जल्दी–जल्दी नहा–धोकर कपड़े बदले और शहर जाने को तैयार हो गया। उसने एक झोले में अपने कुछ कपड़े समेट लिये और उसमें कुछ किताबें भी डाल लीं। माँ आई तो उसने तपन के हाथों एक पोटली थमा दी। तपन ने उसे भी झोले के हवाले किया। उसने झुककर माँ के चरण छुए। माँ बोली, "खुश रहो बेटे, मैं सदा जागती रही हूँ और सचेत–सावधान भी। इसलिए मुझे विश्वास है कि मेरा बेटा किसी चक्रव्यूह में फँस भी गया तो निदाग बाहर निकल आयेगा, कोई उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। जा बेटे, भगवान तेरी रक्षा करे।"

तपन शहर की ओर चल पड़ा। माँ दरवाजे पर खड़ी–खड़ी उसे तब तक एकटक निहारती रही जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया। इधर माँ ने आँसू पोंछे और भारी मन अपने काम–काज में लग गई। उधर तपन ने अपने आँसू पोंछे और जल्दी–जल्दी डग बढ़ाता आगे बढ़ चला शहर की ओर।

तपन के गाँव से शहर कोई दस किलोमीटर दूर था। चलते–चलते सूरज ढ़लने लगा और पहुँचते–पहुँचते शाम होने को आई। तपन पहले–पहल शहर आया था। उसे शहर बड़ा अजीब–अजीब सा लगा। कहाँ गाँव का शान्त वातावरण और कहाँ शहर का धूम–धड़ाका, चहल–पहल। चारो ओर जैसे भाग–दौड़ मची हुई हो। सवारियों की रेल–पेल, सड़कों को पार करना कठिन। जरा भी चूके कि आ गये किसी वाहन की चपेट में। इस भाग–दौड़ में कोई सीधे मुँह बात करने को तैयार नहीं, राहें बताने वाला तक नहीं। जिससे पूछता वही मुँह मोड़कर चल देता। ऐसे में अनजानी जगह वह जाय तो कहाँ, करें तो क्या, कुछ समझ में नहीं आया।

चलते–चलते तपन बुरी तरह थक गया था। वह कहीं दो पल बैठ कर आराम कर लेना चाहता था। उसने चारो ओर नजर दौड़ाई। बायीं तरफ एक पेड़ दिखाई पड़ा और पेड़ के नीचे चबूतरा। चबूतरे पर उसकी उम्र के कई लड़के खेल रहे थे। वह उसी ओर लपक पड़ा। एक तरफ उसने झोला डाला और पेड़ से टेक लगाकर कर सुस्ताने लगा। जान में कुछ जान आई। लेकिन वह जान भी न सका, कब उसकी आँखें झपक गईं।

मुश्किल से दस–पन्द्रह मिनट ही सो पाया होगा कि एकाएक उसकी नींद खुल गई। अचकचाकर उसने अपना झोला ढूँढ़ा लेकिन वह वहाँ नहीं था। उसे यह समझते देर न लगी कि उसका झोला कोई ले भागा। सिर मुड़ाते ओले पड़े। शहर आते–आते आँखें झपकाई नहीं कि झोला गायब और झोले के साथ–साथ उसके कपड़े, पुस्तकें, खाने का सामान और सारे प्रमाणपत्र जैसे आवश्यक कागजात भी। तपन को अपने आप पर गुस्सा आ गया कि वह सो क्यों गया, न सोता, न झोला गायब होता।

तपन की नजरें अनायास एक बार आस–पास चारो ओर दौड़ गईं। वहीं चबूतरे पर पाँच–सात बच्चे उसकी ओर देखकर हँस रहे थे। बिल्कुल लोफर लगते थे वे, चोर–उच्चकों जैसे। चाल–ढ़ाल, वेश–भूषा, रंग–ढ़ंग, हँसी–अदाएँ सब कुछ लफंगों जैसी। तपन को विश्वास हो आया कि सारी करामातें इन्हीं शरारतियों की हैं। वह धीरे–धीरे उनके पास गया और बोला, "क्यों भाई, तुम लोगों ने मेरा झोला देखा?"

"झोले तो बहुत देखें हैं हजूर, अलबत्ता आप जैसा बमभोला नहीं देखा।" उनमें से एक लड़का बोला और बाकी सब हो–हो कर हँस पड़े। वे हँसते रहे और तपन टुकुर–टुकुर उन्हें निहारता रहा। तभी उनमें से दूसरा बोला, "मालूम होता है, अभी–अभी गाँव से भागा आ रहा है बेचारा, बिल्कुल रंगरूट है, रंगरूट।"

"कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायेगा। किसी दिन हम भी तो

रंगरूट ही थे। और सच पूछो तो हमारे लिए ही कहा गया है– शहर सिखावे कोतवाली।'' एक तीसरे लड़के ने अपना शगूफा छोड़ा।

''घर से भागकर आ रहे हो न? स्वागत है तुम्हारा। हम सब भी किसी दिन घर से भाग खड़े हुए थे। ये माँ–बाप भी क्या होते हैं, बिल्कुल जल्लाद। ये पढ़ो, ओ पढ़ो, यहाँ उठो, वहाँ बैठो, हर बात में रोब, हर रोब में जहर और हर जहर में कहर। अब देखो, हम खुली हवा में साँस ले रहे हैं, जो जी में आया, करते हैं और कुछ नहीं तो खेलते हैं, कूदते हैं। न किसी की धौंस, न किसी का रोब। परमस्वतंत्र न सिर पर काहू। हममें से कुछ मूर्ख भटक कर होटलों में बर्तन माँजते फिरते हैं, पाँच रुपयों की नौकरी पर पेट पालते हैं, रिक्शे खींचने लग जाते हैं या ऐसे ही और कोई काम। हम ऐसा कुछ भी नहीं करते, जीवन का आनन्द लेते है, खाओ, पीओ, मौज मनाओ।''

''मुबारक हो भाई ऐसी स्वतन्त्रता तुम लोगों को। मैं तो घर से भाग कर नहीं आया, पढ़ने आया हूँ।'' तपन ने अपनी बात पूरी कही भी नहीं कि एक लड़का बीच में टपक पड़ा ''तो हम क्या घास छीलते हैं? हम भी पढ़ते ही हैं। गार्जियन ने तो हमें भी पढ़ने के लिए ही भेजा है। नाम स्कूल में और हम स्कूल के बाहर। पढ़ने वाले तो जहाँ चाहें पढ़ सकते हैं।'' उस लड़के ने भी अभी अपनी बात पूरी नहीं की कि दूसरा कहने लगा ''पढ़ने आये हो, चलो अच्छा हुआ। हमारे बीच एक से एक बड़े उस्ताद हैं, मास्टर–प्रोफेसर सब। जिससे चाहो पढ़ लो। ये तुम्हें ऐसी–ऐसी कलाएँ सिखा देंगे कि जिन्दगी भर काम आयेंगी। किताबी कीड़ा बनने का झमेला क्या पालना? सीखना ही है तो हाथ का इल्म सीखो। इससे तुम चाहो जहाँ भी रहो नुक्कड़–चौराहे पर, स्टेशन–बस स्टैण्ड पर, टिकट की खिड़की पर या गाड़ी के दरवाजे पर, मूर्खों के पैसे सीधे तुम्हारी जेब के हवाले होंगे। हाँ, जिस तरह चूहे बिल्ली की गन्ध से दूर भागते हैं, तुम्हें भी पुलिस की गन्ध पहचाननी पड़ेगी। अभी अनाड़ी हो पुलिस से दोस्ती गाँठ लोगे तो वह भय भी जाता रहेगा। क्या

समझे?"

क्या समझता बेचारा तपन! चुपचाप सुनता रहा और वे थे कि उसे ऐसे ही बड़े–बड़े भाषण पिला रहे थे। उसे बोलने भी न देते। किसी तरह वह इतना ही कह पाया "भाई मेरे, मुझे मेरा झोला दे दो, मैं अपनी राह जाऊँ। व्यर्थ अपना समय क्यों खराब करते हो?"

"बड़ा भोला बनने चला है।" एक लड़का तैस में बोला "हम क्या कोई चोर–लफंगे हैं जो तुम्हारा झोला उठा लाये हैं?"

"अभी नया है, क्यों डाँट रहे हो बेचारे को?" दूसरा बोला "देखो भाई, अगर हमारे साथ रहोगे तो एक क्या हजार झोले मिलेंगे और नहीं तो रास्ता नापो। जब शहर के आटे–दाल का भाव मालूम होगा तो अपने आप आ जाओगे सही रास्ते पर।" तीसरे लड़के ने सड़क की ओर इशारा कर अपनी बात खत्म की।

तपन ने दूर–दूर तक देखा। वहीं हंगामा, वही हुजूम, वही सवारियों की रेलपेल, चलने वालों का ताँता, भागदौड़। वह एक ओर दौड़ पड़ा। कोई सज्जन एक अखबार बेचने वाले लड़के से अखबार खरीद रहे थे। तपन वहाँ पहुँचा और अपना सारा दुखड़ा जल्दी–जल्दी उगल गया। सज्जन बोले, "तो मैं क्या करूँ? तुम्हारे लिए इन गुण्ड़ों से कौन राड़ मोल ले। सीधे थाने चले जाओ, यह काम थानेवालों का है।" इतना कहकर इस सज्जन ने अखबार वाले लड़के को पैसे थमाये और अपनी राह चलते बने। तपन निराश लौटने लगा कि पीछे से आवाज आई, "ठहरो, मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

आवाज क्या आई, डूबते को तिनके का सहारा मिला। तपन ने मुड़कर पीछे देखा तो वही अखबार वाला लड़का उसकी ओर बढ़ा आ रहा था जिसने तपन की सारी बातें सुन ली थीं। उसने बड़ी आत्मीयता से तपन की पीठ पर हाथ रखा और बोला "निराश न हो मेरे भाई, आओ मेरे साथ, मैं अभी तुम्हारा झोला तुझे दिलवाता हूँ।" यह कहता हुआ अखबार वाला लड़का शरारती लड़कों की ओर बढ़ा। उसे देखते

ही सारे लड़के सहम गये। अखबार वाले लड़के ने रोबीले स्वर में कहा "कहाँ है इस बेचारे का झोला? अभी लाकर इसके हवाले करो वर्ना एक–एक की हड्डी–पसली एक कर दूँगा।"

"रंज क्यों होते हो भाई, अभी आ जाता है झोला।" एक लड़का भींगी बिल्ली की आवाज में बोला जो थोड़ी देर पहले तैश में बातें कर रहा था। तपन ने देखा कि अखबार वाले लड़के का बड़ा रोब है। उसने यह भी अनुभव किया कि चोर थोड़ी देर के लिए सीनाजोर भले हो जाय, उसके हृदय का चोर उसका पर्दा खोल कर ही दम लेता है। चोर आखिर चोर ही तो ठहरा।

शरारती लड़कों ने आपस में कुछ काना–फूसी की और थोड़ी ही देर में एक लड़का तपन के हाथों उसका झोला पकड़ा गया। तपन ने झोले में झाँक कर देखा– उसके कपड़े, पुस्तकें और कागजात सब कुछ उसमें ठीक–ठाक थे। हाँ, उन्हें उलट–पलट कर अच्छी तरह देखा जा चुका था। जो कुछ भी हो, उसे अपना सामान मिल गया, इसी की उसे बेहद खुशी थी। उसने अखबार वाले लड़के को बहुत–बहुत धन्यवाद दिया। उसे अपनी माँ की बातें याद हो आईं "अगर तू किसी चक्रव्यूह में फँस भी गया तो निदाग निकल जायेगा।"

अखबार वाले लड़के का नाम सुरेश है। सुरेश के पिता एक बस–दुर्घटना में बुरी तरह घायल हो गये थे। जान तो बच गई लेकिन अपंग हो गये। कोई काम–काज उनसे हो नहीं पाता। बड़ा–सा परिवार, थोड़ी–सी आमदनी। उससे काम नहीं चलता। सुरेश अखबार बेच कर इतने पैसे कमा लेता है कि परिवार का भरण–पोषण मजे में चल सके। वह सुबह अखबार बेचता है, दिन में पढ़ने जाता है। वह समय से काम करता है और समय से पढ़ता है। वह शरीर से भी हट्टा–कट्टा है। शरारती लड़के उससे खूब डरते हैं।

जब तपन का झोला मिल गया तो सुरेश ने उसे चबूतरे पर बने बेंच पर ला बैठाया। दोनों ने बड़ी देर तक बातें कीं। अपनी–अपनी

बातें। बातों ही बातों में वे बड़े दोस्त बन गये। सुरेश को यह जानकर और भी खुशी हुई कि तपन उसी क्लास में भर्ती होने वाला है जिस क्लास में वह खुद पढ़ता है।

सुरेश तपन को अपने घर ले गया और बड़े प्यार से रखा। तपन सुरेश के माता–पिता और भाई–बहनों से मिलकर बड़ा खुश हुआ। सारा परिवार नये मेहमान की आवभगत में लगा था। सुरेश की माँ के व्यवहार से तपन को ऐसा लगा जैसे वह अपने घर में हो, बिल्कुल अपनी माँ के साथ।

दूसरे दिन जब सुरेश अखबार बेचने निकला तो तपन भी उसके साथ लग गया। उस दिन दोनों ने मिलकर दूने से भी अधिक अखबार बेच डाले। तपन ने भी तय कर लिया कि वह भी अखबार बेचेगा। दिन में सुरेश ने तपन की भर्ती अपने ही स्कूल में करा दी। फिर तो दोनों साथ–साथ स्कूल जाते, साथ–साथ पढ़ते, साथ–साथ घर लौटते और साथ–साथ अखबार बेचते। सभी कामों में वे एक दूसरे से आगे बढ़ने की चेष्टा करते परन्तु रहते साथ–साथ बड़े प्रेम से, बिल्कुल सगे भाइयों जैसे।

तपन सुरेश का उपकार मानता है। वह उसकी हर मदद को तैयार रहता है। सुरेश को भी तपन पर पूरा भरोसा है। उसे विश्वास है कि अपनी मेहनत और लगन के बल पर तपन एक दिन निश्चय ही बड़ा आदमी बनेगा। तपन सुरेश को भी बड़ा आदमी बनने की प्रेरणा देता है। तभी तो दोनों बुरी संगतियों से दूर रह कर अच्छे काम करते हैं।

तपन और सुरेश की जोड़ी की सभी प्रशंसा करते हैं। कितने माँ–बाप यह कहते सुने जाते हैं कि बेटे हों तो तपन और सुरेश जैसे। तपन और सुरेश की माएँ कहती हैं कि उनके तो दो बेटे हैं– तपन और सुरेश, सुरेश और तपन। हाँ, तपन और सुरेश, सुरेश और तपन एक ही सिक्के के दो पहलू– "को बड़ छोट कहत अपराधू वाली बात।"

एक ही महीने के अन्दर तपन को यह विश्वास हो आया कि अपनी

बातें। बातों ही बातों में वे बड़े दोस्त बन गये। सुरेश को यह जानकर और भी खुशी हुई कि तपन उसी क्लास में भर्ती होने वाला है जिस क्लास में वह खुद पढ़ता है।

सुरेश तपन को अपने घर ले गया और बड़े प्यार से रखा। तपन सुरेश के माता–पिता और भाई–बहनों से मिलकर बड़ा खुश हुआ। सारा परिवार नये मेहमान की आवभगत में लगा था। सुरेश की माँ के व्यवहार से तपन को ऐसा लगा जैसे वह अपने घर में हो, बिल्कुल अपनी माँ के साथ।

दूसरे दिन जब सुरेश अखबार बेचने निकला तो तपन भी उसके साथ लग गया। उस दिन दोनों ने मिलकर दूने से भी अधिक अखबार बेच डाले। तपन ने भी तय कर लिया कि वह भी अखबार बेचेगा। दिन में सुरेश ने तपन की भर्ती अपने ही स्कूल में करा दी। फिर तो दोनों साथ–साथ स्कूल जाते, साथ–साथ पढ़ते, साथ–साथ घर लौटते और साथ–साथ अखबार बेचते। सभी कामों में वे एक दूसरे से आगे बढ़ने की चेष्टा करते परन्तु रहते साथ–साथ बड़े प्रेम से, बिल्कुल सगे भाइयों जैसे।

तपन सुरेश का उपकार मानता है। वह उसकी हर मदद को तैयार रहता है। सुरेश को भी तपन पर पूरा भरोसा है। उसे विश्वास है कि अपनी मेहनत और लगन के बल पर तपन एक दिन निश्चय ही बड़ा आदमी बनेगा। तपन सुरेश को भी बड़ा आदमी बनने की प्रेरणा देता है। तभी तो दोनों बुरी संगतियों से दूर रह कर अच्छे काम करते हैं।

तपन और सुरेश की जोड़ी की सभी प्रशंसा करते हैं। कितने माँ–बाप यह कहते सुने जाते हैं कि बेटे हों तो तपन और सुरेश जैसे। तपन और सुरेश की माएँ कहती हैं कि उनके तो दो बेटे हैं– तपन और सुरेश, सुरेश और तपन। हाँ, तपन और सुरेश, सुरेश और तपन एक ही सिक्के के दो पहलू– "को बड़ छोट कहत अपराधू वाली बात।"

एक ही महीने के अन्दर तपन को यह विश्वास हो आया कि अपनी

मेहनत से वह इतना तो कमा ही सकता है कि अपना ही नहीं, माँ का भी खर्च चला सके। ऊपर से उसकी छात्रवृत्ति तो थी ही। सुरेश की राय से उसके घर के पास तपन ने एक छोटा–सा घर किराये पर ले लिया जिसमें माँ–बेटे बड़े मजे में रह सकते थे। फिर क्या था, तपन अपनी माँ को भी शहर बुला लाया।

अब माँ–बेटे दोनों शहर में रहते हैं। माँ घर के काम–काज देखती है, खाना पकाती है, कुछ सिलाई के भी काम कर लेती है। तपन सुरेश के साथ सुबह अखबार बेचता है, दिन में पढ़ता है और शाम को खेल–कूद के मैदान में या पुस्तकालय में जाता है। कोर्स की पुस्तकों के अलावा वह अच्छे–अच्छे लेखकों की ढ़ेरों किताबें पढ़ता है। सुरेश और तपन दोनों बाजी लगाकर काम करते हैं, पढ़ते–लिखते हैं और खेलकूद भी करते हैं। तपन की माँ को विश्वास हो गया है कि उसका बेटा एक दिन बड़ा आदमी बनकर रहेगा।

बगीचे के फल

संदीप कपूर

गरमी की छुट्टियाँ होते ही दीपांशु का मन कल्लू माली के बगीचे में लगे फलों को खाने के लिए ललचाने लगा। अपनी इस इच्छा में उसने अपने दोस्त मुकेश तथा जयंत को भी शामिल कर लिया। अब तीनों इसी ताक में रहने लगे कि कब बगीचे में घुसा जाए। सारा दिन कल्लू बगीचे में ही रहता था, इसलिए उन्होंने तय किया कि वे रात को बगीचे में घुसकर फलों का मज़ा लूटेंगे।

"पर हम बगीचे में पहुँचेंगे कैसे? उसकी दीवारें तो काफी ऊँची हैं।" मुकेश ने कहा।

"और दरवाजे पर कल्लू मोटा ताला लगा जाता है।" जयंत ने भी अपनी शंका प्रकट की।

"तुम दोनों ने ध्यान नहीं दिया। उस बगीचे के पीछे की दीवार में एक बड़ा छेद है, जिसे कल्लू ने काँटेदार झाड़ियों से ढँक रखा है। हम उस छेद के जरिए बगीचे में घुसेंगे।" दीपांशु ने चुटकी बजाते हुए कहा।

"हम रात के समय निकलेंगे, तब लोग क्या कहेंगे? वैसे भी नगर में आजकल चोरों का गिरोह सक्रिय है। अगर किसी ने हमें ही चोर समझ लिया तो?" मुकेश हिचकते हुए बोला। "भाई, फल खाने हैं तो हमें यह जोखिम उठाना ही पड़ेगा।" रुककर दीपांशु ने आगे कहा, "आज रात तुम दोनों, मेरे यहाँ सोने का बहाना करके मेरे घर आ

जाना। तुम तो जानते ही हो कि मेरा अलग कमरा है, जिसकी खिड़की बाहर सड़क पर खुलती है। हम तीनों रात को उस खिड़की से बगीचे की तरफ निकल चलेंगे। फिर वहां हम होंगे और फल होंगे।" तीनों मित्र अपनी–अपनी कल्पना में खो गए।

रात को जयंत और मुकेश योजनानुसार दीपांशु के घर पहुँच गए। रात के बारह बजे के लगभग दीपांशु ने अपने कमरे की बत्ती बुझा दी। फिर तीनों दोस्त बिना आहट किए खिड़की से बाहर कूद गए।

दीपांशु ने खिड़की के पटों को आपस में सरका दिया। फिर वे बगीचे की ओर चल पड़े। लगभग बीस मिनट चलने के बाद वे तीनों बगीचे के पास पहुँचे। पर सामने एक चौकीदार को खड़ा देख, तीनों की बोलती बंद हो गई। ज्यों ही चौकीदार उनकी तरफ बढ़ा, तीनों को पसीना आ गया। वे फुर्ती से वापस भागे।

चौकीदार ने जब तीन लड़कों को भागते देखा, तो वह भी सीटी बजाते हुए उनके पीछे–पीछे भागने लगा। बीस मिनट का फासला दस मिनट में तय करके तीनों भागते हुए दीपांशु के घर के पास आ पहुंचे। उनका पीछा कर रहे चौकीदार की सीटी की आवाज़ भी पास आती जा रही थी। हड़बड़ाहट में तीनों दोस्तों ने एक साथ खिड़की के जरिए कमरे में जाना चाहा, पर कोई भी जा न पाया। अचानक भीतर से खटपट की आवाजें सुनकर वे चौंक उठे।

"लगता है भीतर चोर हैं।" मुकेश बोला।

"हाँ, मुझे भी यही लगता है। क्योंकि बगीचे की तरफ जाते समय मैंने खिड़की के पटों को आपस में भिड़ा दिया था और अब यह खिड़की खुली है।"

"तो चलो, भीतर पहुँच कर उन चोरों से निपट लिया जाए?" जयंत बोला।

"मूर्ख मत बनो, जयंत। हमें पता नहीं कि घर में कितने चोर घुसे हैं। अगर उनकी संख्या हमसे अधिक हुई, तब वे हमें ही पीट देंगे।

उनके पास हथियार भी हो सकते हैं। एक संभावना यह भी है कि हम तीनों के अंदर जाने पर वे चोर हमें भी मम्मी–पापा के साथ किसी कमरे में बंद कर दें और सारा सामान लेकर चंपत हो जाएं।'' दीपांशु बोला।

''तो अब क्या किया जाए?, जयंत ने कहा। दीपांशु कुछ सोचकर बोला, ''मेरे दिमाग में एक विचार आया है। मैं घर के मुख्य दरवाजे पर जाकर घंटी बजाता हूँ। घंटी की आवाज़ सुनकर चोर हड़बड़ा उठेंगे तथा जल्दबाजी में इसी खिड़की से बाहर कूदेंगे। तब तक मैं भी तुम्हारे पास आ जाऊँगा और हम सब मिलकर चोरों पर टूट पड़ेंगे।''

''अगर इस बीच चौकीदार यहाँ आ पहुँचा तो?'' मुकेश ने संभावना व्यक्त की।

''उसे भी चोरों के बारे में बतलाकर, अपने साथ खड़ा कर लेना।'' अब मुकेश और जयंत ने सहमत होकर हाँ कर दी।

दीपांशु के घंटी बजाने पर, घर में चोरी कर रहे तीन चोर घबरा गए। दीपांशु के मम्मी–पापा को एक कमरे में बंद करके, वे सामान की गठरियाँ उठाकर खिड़की की तरफ भागे।

खिड़की के बाहर जयंत और मुकेश तैयार खड़े थे। तभी दीपांशु भी उनके पास पहुँचकर बोला, ''चौकीदार इधर नहीं आया?''

''नहीं। न जाने वह किस तरफ मुड़ गया।'' जयंत ने उत्तर दिया।

''उफ! अब हम तीनों को ही उन चोरों से उलझना पड़ेगा। वे चोर आते ही होंगे। ढ़िशुम–ढ़िशुम के लिए तैयार हो जाओ।'' दीपांशु अपनी बात पूरी करके हटा ही था कि एक के बाद एक, तीन चोर अपने कंधों पर गठरियाँ लादे नीचे कूदे।

मुकेश, जयंत तथा दीपांशु ने झपटकर एक–एक चोर पकड़ा और गुत्थमगुत्था हो गए। इस अप्रत्याशित आक्रमण से चोर हड़बड़ा गए और चीखने लगे। तभी वहाँ चौकीदार भी आ पहुँचा। वहाँ का माजरा देख, उसने भी अपनी लाठी चोरों पर बरसानी शुरू कर दी। थोड़ी देर में ही तीनों चोर बेदम होकर कराहने लगे। तब तक आस–पड़ोस के लोग

शोरगुल सुनकर वहाँ इकट्ठे हो चुके थे। दीपांशु खिड़की में से अंदर गया तथा दरवाजा खोलकर अपने मम्मी–पापा के साथ बाहर आ पहुँचा।

"मुझे लगता है कि तुम तीनों ही कुछ देर पहले भाग रहे थे।" चौकीदार उन तीनों दोस्तों की तरफ देखकर बोला।

"जी हाँ, हम भी इन्हीं चोरों की तलाश में थोड़ी जासूसी कर रहे थे।" दीपांशु तपाक से बोला।

"तो ये चोर तुम्हारी लापरवाही से ही घर में घुसे थे?" दीपांशु के पापा ने उसका कान उमेठते हुए कहा।

"पर यह भी तो सोचिए अंकल, कि अगर हम ऐसा न करते, तब ये चोर पकड़ में कैसे आते?" जयंत की इस दलील से संतुष्ट होकर पापा ने दीपांशु का कान छोड़ दिया तथा मुस्कराने लगे।

लोगों ने तीनों दोस्तों के साहस व बुद्धिमानी की तारीफ की। तीनों चोरों को बाँधकर पुलिस के हवाले कर दिया गया।

कुछ देर बाद तीनों दोस्त फिर कमरे में इकट्ठे बैठे थे।

"दीपांशु, तुमने चौकीदार से झूठ क्यों बोला?" सुकेश ने जम्हाई लेते हुए पूछा।

"बच्चू, अगर मैं झूठ न बोलता तब हमारी खूब खिंचाई होती। तौबा मेरी, अब मैं कभी किसी किस्म की चोरी का विचार दिमाग में नहीं लाऊँगा।" दीपांशु बोला।

"और, बगीचे के फल?"

"उन्हें मैं कल्लू से खरीदकर खा लूँगा। अच्छा अब शुभ रात्रि...।" कहते ही दीपांशु अपने बिस्तर में दुबक गया।
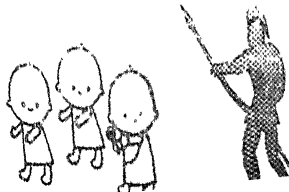
अपने लिए

रत्नलाल शर्मा

रामरतन अपने भाइयों में सबसे छोटा था। फिर भी, उसे माता–पिता का लाड़–प्यार कभी नहीं मिला। वह गांव में पैदा हुआ। गांव के वातावरण में ही पला। पिता जी बहुत दूर एक बड़े शहर में कुछ काम करते थे। वह कभी–कभी गांव आते थे। उनकी उम्र काफी हो गई थी। जब वह आते तो रामरतन उनकी खूब सेवा करता था। पिता जी उससे खुश थे। वह उसके लिए शहर से कपड़े लाते थे। कपड़े उसके नाप के नहीं होते थे। काफी बड़े होते थे। फिर भी, वह उन्हें पाकर बहुत खुश होता था। पिता जी कुछ दिन रहने के बाद शहर चले जाते।

बाद में वह उन कपड़ों को पहनता था। उसके साथी बच्चे मज़ाक उड़ाते। वे कहते, "ये कपड़े तो किसी की उतरन हैं, नए थोड़े ही बने हैं।" वे फिर अपने कपड़े दिखाते, "देखो, नए कपड़े तो ऐसे होते हैं। हैं न कितने अच्छे।"

यह सुन कर वह थोड़ी देर के लिए मुरझा जाता था। फिर भूल जाया करता था। दूसरे बच्चों के साथ खेलकूद में लग जाता था। घर के काम भी करता था। उसकी मां उसे कोई भी काम बता देती, जिसे वह कर देता था। उसके दोनों भाई मां की एक न सुनते थे। इसीलिए घर का बहुत सा काम उसे ही करना पड़ता था। उसके दोनों भाई अपने काम बता देते थे। वे भी उसे करने पड़ते थे। वे उसे पीट देते थे।

वे दोनों गांव में इधर–उधर निकल जाते। खेतों, बागों में निकल जाते। सारे–सारे दिन घर से गायब रहते। अपने साथियों में बैठ कर गपशप करते। उनके साथ ताश खेलते। उसे बाद में पता चला, वे जुआ खेलते थे। उन दोनों ने पढ़ाई बहुत पहले छोड़ दी थी। घर के काम में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। सब से बड़े भाई पहले एक अध्यापक की सेवा में रहते थे। पढ़ने से उनका वास्ता टूटता गया। एक दिन उन्होंने स्कूल जाना बन्द कर दिया। मंझले भाई अपने साथियों के साथ मारपीट करते। एक दिन तो हद हो गई। अध्यापक ने उनको किसी बात पर पीट दिया। मंझले भाई ने कुछ दूर जाकर एक पत्थर उठाया। अध्यापक को दे मारा। वह उनकी टांग में लगा। फिर वहां से भाग खड़े हुए। उसके बाद उन्होंने कभी स्कूल की तरफ मुंह नहीं किया।

रामरतन को यह सब अच्छा नहीं लगता था। वह मन लगाकर पढ़ता था। घर में मां का कहना मानता और स्कूल में अध्यापक का आदर करता था। वह अपने साथियों से भी पिट लेता था। फिर भी, उन की शिकायत अध्यापक से न करता और न अपनी मां को बताता। वह खूब मन लगा कर पढ़ता था। इसलिए क्लास में होशियार बच्चा था। फिर भी, कभी–कभी अध्यापक उसे पीट देते थे। या तो उससे कोई भूल हो जाती या कोई उसका साथी अध्यापक से झूठी शिकायत कर देता। वह थोड़ी देर रो लेता। फिर चुप हो जाता। यह अच्छी बात थी कि वह अपने किसी भी अध्यापक से पढ़ाई की बात पर कभी नहीं पिटा।

पहले दिन उसके बड़े भाई उसे स्कूल में दाखिल कराने गए थे। तब उन्होंने अध्यापक से कहा था, "आप भले ही इसकी हड्डी–पसली तोड़ दें, हम कभी शिकायत को नहीं आएंगे।"

तब उस ने अध्यापक की कमची यानी बेंत की ओर देखा था और डर गया था। भाई के जाने के बाद उसने देखा कि अध्यापक की वह कमची एक बच्चे पर बरस रही थी और टूट गई।

अध्यापक ने दूसरे बच्चे को आदेश दिया, "नीम के पेड़ से दूसरी कमची तोड़ कर लाओ।" वह डर से कांप गया था।

स्कूल में उसका पहला दिन था। सभी बच्चे एक गोल सा दायरा बनाए खुले मैदान में जमीन पर बैठे थे। अध्यापक कमची लिए खड़े थे। किसी की मजाल नहीं जो उन की तरफ देख ले। वह बच्चों को कोई गिनती बोलते, तो बच्चे उंगली से जमीन पर झट से लिख देते थे। वे बच्चे पहले से पढ़ रहे थे। फिर भी, गलती कर बैठते थे। किसी की गलती पर एक कमची उसके हाथ पर जोर से पड़ती। वह तिलमिला जाता। रामरतन को तो कुछ आता ही नहीं था। वह दूसरे बच्चों के हाथ को चलते हुए देखता। खुद भी जमीन पर वैसे ही उंगली चला देता। एक बार अध्यापक ने उसे पकड़ लिया। एक कमची उस के हाथ पर आ पड़ी।

अब उसने दूसरों के हाथों को चलते हुए गौर से देखा। फिर वैसा ही लिखने लगा। उस की क्लास खत्म हो गई। उसने एक बच्चे से गिनती सीखने को कहा। वह मान गया। वह बताता गया और रामरतन सीखता गया।

उसके बाद वह दूसरे बच्चों की मदद से किताब के पाठ सीखने लगा। लिखना भी सीखता गया। उस ने तख्ती और स्लेट पर बार–बार अभ्यास किया। जल्दी ही उसने वह सब सीख लिया जितना पढ़ाया गया था। तब उसने अगले पाठ तैयार करने शुरू कर दिए। अब वह सब से आगे रहता था। अध्यापक कुछ भी पूछते, तो सब से पहले उसका हाथ उठता था। अध्यापक उस से खुश हो गए। उसे कुछ साथी बच्चों की सहानुभूति भी मिल गई थी। वह पढ़ाई लिखाई में उनकी मदद कर देता था।

इसलिए उसका ध्यान अपने कपड़ों पर नहीं जाता था। वह हमेशा कुछ न कुछ सीखने में लगा रहता। घर पर सब का काम करता। खेल भी खेलता। फिर भी, पढ़ने के लिए समय निकाल लेता। उस का मन

पढ़ाई में लगने लगा।

एक दिन एक घटना घट गई। वह बैठा हुआ पढ़ रहा था। मंझले भाई ने उसे कुछ काम बता दिया। उसने कहा, "मैं जरा पढ़ लूं। उसके बाद कर दूंगा।" मंझले भाई अड़ गए। "बड़ा आया पढ़ाकू कहीं का। चल उठ, पहले मेरा काम कर।"

काम कुछ नहीं था। उन्हें बीड़ी पीने की आदत थी। उस वक्त उन के पास बीड़ी खत्म हो गई थी। सो दुकान से जाकर बीड़ी लानी थी। उसका मन उस समय पढ़ाई में लगा हुआ था। सो वह नहीं उठा, पढ़ता रहा। भाई को ताव आ गया। उन्होंने उसके गालों पर दो तमाचे जड़ दिए। वह रोने लगा। फिर भी, नहीं उठा। भाई ने उसे दो तीन लात जमाई और वहां से भाग खड़े हुए।

अब रामरतन ज़ोर–ज़ोर से रोने लगा। इसी बीच बाहर से उसकी मां आ गई। उन्होंने कहा, "अरे! यहां जमीन पर लेटकर क्यों पीं पीं कर रहा है। चल उठ, गोबर उठा दे। भैंस को मक्खियां लग रही हैं और वह गोबर को पैरों से रौंद रही है।"

यह काम तो वह रोज़ ही करता था। उस दिन वह नहीं उठा। रोता रहा। मां को गुस्सा आ गया। उन्होंने उसकी पिटाई शुरू कर दी। वह और रोने लगा। बाहर आकर चबूतरे पर रोने लगा। वह मां को कोसने लगा। मां ने यह भी नहीं पूछा कि क्या बात हो गई। उसने बताया था कि मंझले भैया ने उसे पीटा है तो भी अनसुना कर दिया।

कुछ देर रो लेने के बाद वह चुप हो गया। उसके बाद उसने कह दिया, "ले, मैं स्कूल भी नहीं जाऊंगा।"

मां ने कहा, "तेरे दोनों बड़े भाइयों ने स्कूल छोड़ दिया। अब अवारागर्दी करते हैं। तू भी मत जा। मुझे क्या है? पढ़ेगा अपने लिए, नहीं पढ़ेगा तो अपने लिए।"

पहले तो उसने उन शब्दों पर गौर नहीं किया। फिर ये शब्द उसके कानों में बार–बार गूंजने लगे। उसे लगा, वह भी दोनों भाइयों

की तरह यों ही रह जाएगा। हां, पढ़ाई से उसका ही तो फायदा है। उसे लगा, मां ने उसे मंत्र दे दिया। वह अब तक धार्मिक पुस्तकें पढ़ने और धर्म की बातें सुनने लगा था। उस ने बड़े आदमियों के जीवन की कहानियां भी सुनी थीं।

बात उस की समझ में आ गई। उस ने अपनी गलती महसूस की। वह उठा। उसने गोबर उठाया। भैंस के खड़े होने की जगह को साफ किया। फिर मुंह हाथ धोए। अपना तख्ती बस्ता उठाया और स्कूल चला गया।

तिरंगे का मान

नयन कुमार राठी

पन्द्रह अगस्त के दिन सुबह तैयार होकर दीपक स्कूल की ओर बढ़ने लगा। रास्ते में जगह–जगह तिरंगे झण्डे लगे देखकर वह खुश हो गया। उसने देखा जगह–जगह लोग कागज के तिरंगे झण्डे को डण्डी में पिरोकर बेच रहे हैं। बच्चे, बड़े चाव से खरीदकर ले जा रहे हैं। दीपक ने भी एक रुपया देकर एक छोटा तिरंगा झण्डा खरीदा। झण्डे पर 'मेरा भारत महान!' लिखा देखकर वह मुस्कराया।

झण्डे को लहराते हुए वह स्कूल की ओर बढ़ने लगा। अचानक संदीप की आवाज सुनकर वह रुक गया। दौड़ते हुए संदीप उसके करीब पहुंचा। उसके हाथ में तिरंगा झण्डा देखकर हंसते हुए बोला, "दीपक! तुम बड़े हो गए हो। पर तुम्हारा बचपना अभी नहीं गया जो बच्चों की तरह झण्डा खरीद लिया।" दीपक कुछ बोलता, उससे पहले ही उसने दीपक से झण्डा छीना और फेंक दिया। दीपक ने झण्डे का इस तरह अपमान होते देखा तो एक तमाचा संदीप के गाल पर जड़ दिया और बोला, "संदीप! तुमने तिरंगे झण्डे का नहीं बल्कि भारत का, भारतमाता का, और स्वतंत्रता दिलवाने वाले शहीदों का अपमान किया है। आज के बाद तुम मुझसे कभी बात नहीं करना।"

संदीप ने मुंह बिचकाया और आगे बढ़ गया। दीपक ने देखा, तेज हवा के कारण तिरंगे झण्डे इधर–उधर उड़ गए हैं। उसकी आंख भर

आई। उदास सा वह स्कूल की ओर बढ़ने लगा।

एक झण्डे बेचने वाले व्यक्ति से उसने इस बार बड़ा तिरंगा झण्डा खरीदा। वह स्कूल पहुंचा। उसने देखा, संदीप आठ–दस लड़कों के साथ खड़ा है। उसे देखते ही सभी लड़के व्यंग्यात्मक ढंग से बोलने लगे, "देखो! देखो!! भारतमाता के सच्चे पूत आ गए हैं।"

दीपक समझ गया। ये सब उसके पास तिरंगे झण्डे को देखकर ताना मार रहे हैं। वह चुपचाप आगे बढ़ गया। सभी लड़के हंसने लगे। थोड़े समय बाद स्कूल के मैदान में झण्डा फहराया गया। राष्ट्रभक्ति के भाषण हुए। देशभक्ति के गीत गाए जाने लगे। दीपक ने भी एक गीत गाया। सभी को बहुत पसन्द आया।

प्रधानाचार्य ने तो उसकी पीठ थपथपाकर उसे एक सौ एक रुपए दिए। यह देख सभी तालियां बजाने लगे। प्रधानाचार्यजी खुश होकर बोले, "इस लड़के में देशप्रेम की भावना देखकर मैं आश्चर्यचकित हूं। वरना आजकल के लड़कों में देशप्रेम की भावना नहीं रहती है। उन्हें तो शरारतों से ही फुरसत नहीं मिलती है। कितने ही लड़के हमारे राष्ट्रीय ध्वज को सम्मान नहीं देते हैं। आज जो कागज के तिरंगे झण्डे डण्डी में पिरोकर बेचे जाते हैं, उन्हें लड़के शौक से खरीदते हैं, लेकिन थोड़े समय बाद तोडमरोड़कर फेंक देते हैं। इससे हमारे देश का कितना अपमान होता है। हमारा राष्ट्रीय ध्वज सभी के पैरों में आता है। मैं एक बात कहूंगा, अगर तुम राष्ट्रीय ध्वज को मान नहीं दे सकते हो, तो उसका अपमान भी नहीं करो।"

फिर दीपक की पीठ थपथपाकर हंसते हुए वे बोले, "जरूर तुम बड़े होकर अच्छे आदमी बनोगे।" दीपक ने उनके चरणस्पर्श किए। फिर सभी विद्यार्थियों को लड्डू बांटे गए।

लड्डू लेकर दीपक घर की ओर बढ़ने लगा। थोड़ा आगे चलने पर उसने देखा, संदीप उन्हीं लड़कों के साथ खड़ा है, जिन्होंने उसे चिढ़ाया था। वह वापस मुड़कर जाने लगे।

तभी संदीप दौड़ते हुए आया और बोला, "दीपक! मुझे माफ कर दो। मैंने तुम्हें गलत समझा। आज मुझे समझ में आ गया कि प्रत्येक देशवासी को देश के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए। मैं बहुत शर्मिंदा हूं। मैंने अपने राष्ट्रीय ध्वज का अपमान किया है।" कहते हुए उसका गला भर आया।

दीपक बोला, "संदीप, जो व्यक्ति गलती करके अपने को दोषी समझकर माफी मांग ले, वह सम्माननीय हो जाता है। मेरी बात मानकर आज से वायदा करो कि अपने राष्ट्रीय ध्वज का अपमान नहीं करोगे। यही नहीं, यदि कहीं इसका अपमान होते देखोगे, तो उसे रोकोगे।"

संदीप ने वायदा किया। बोला, "मेरा भारत महान है। राष्ट्रीय ध्वज इसकी शान है।" सभी ने यह पंक्ति दोहराई। फिर सभी अपने-अपने घर की ओर बढ़ गए।
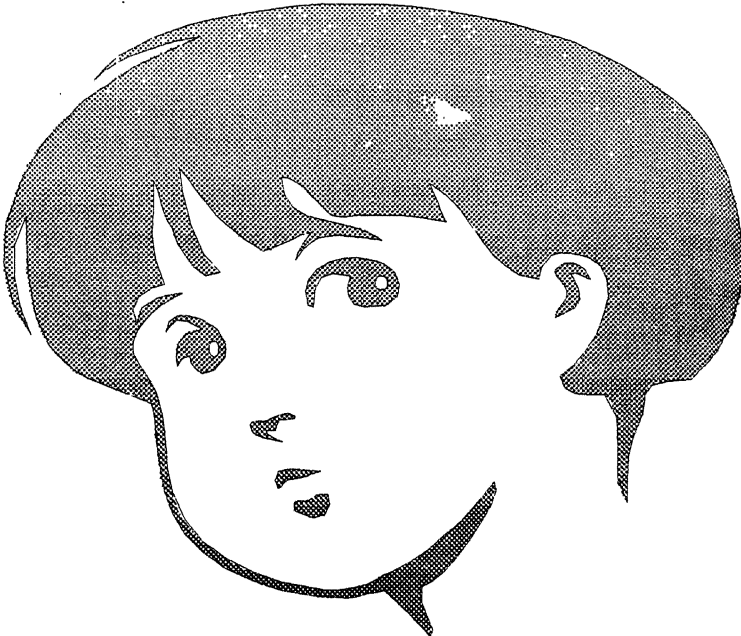
महकता फूल

शकुन्तला सिरोठिया

मुझे इलाहाबाद आना था। मैं बांदा प्लेटफार्म पर बैठी ऊब रही थी। गाड़ी आने में आधे घंटे की देर थी। उसी बीच १० से १२ वर्ष की उम्र के कुछ लड़के भीख मांगते हुए मेरे पास आकर खड़े हो गए। शायद किसी संस्था की तरफ से आए होंगे। मैंने सोचा और उनसे पिटा पिटाया प्रश्न पूछ लिया, "तुम लोग भीख मांगते हो? शरम की बात है। कुछ काम क्यों नहीं करते?"

एक स्वस्थ, हंसमुख और समझदार सा बालक आगे आया। बोला "मां जी, हम लोगों को कौन काम देगा?"

"मैं दूंगी तुम्हें काम। चलोगे मेरे साथ इलाहाबाद! गाड़ी आने ही वाली है।" लड़का और आगे बढ़कर मेरे पास खड़ा हो गया। मुझे लगा मेरी बात और मेरे बात कहने के ढंग से उसे मुझ पर कुछ विश्वास सा जगा है।

"मैं चलूंगा आप के साथ लेकिन बाद में मुझे भगा तो नहीं देगीं।"

बड़ा समझदार लड़का लगा मुझे। उसके कंधे पर हाथ रख कर मैंने मुस्करा कर कहा, "नहीं, तुम्हें ले जाकर भगा क्यों दूंगी भला। बस तुम मत भाग आना। अकेली रहती हूं। कुछ समान आदि लेकर कहीं चले गए तो?"

"अरे नहीं मांजी, मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा। यह भीख मांगने

वाली जिन्दगी मुझे अच्छी नहीं लगती।"

तभी ट्रेन आने की घंटी बजी। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने घूम कर अपने साथियों की तरफ देखा। सबने उसकी ओर आंखों आंखों में जैसे कहा "जाओ भाई, हम से तो तुम्ही अच्छे रहे।"

इतने में गाड़ी धड़धड़ाती प्लेटफार्म पर आकर रुक गई। लड़के ने मेरी अटैची उठा ली और मेरे साथ डिब्बे में चढ़ गया। मैं सीट पर बैठ गई और वह मेरे पास ही नीचे बैठ गया। एकाएक मैं गंभीर हो गई। मैंने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है। तुम्हारा टिकट तो मैंने लिया ही नहीं। कहीं टिकट चेकर ने मांग लिया तो मैं क्या कहूंगी?"

"मेरा नाम रमेश है। टिकट की चिन्ता मत करिए। यहां नीचे बैठा हूं। मुझ से कोई टिकट नहीं पूछेगा।"

यह कह कर रमेश मुस्करा दिया। मुझे लगा बिना टिकट आने जाने का वह आदी है। मेरे पास कुछ पूरियां रखी थीं। चार पूरियां और उस पर थोड़ी सी सब्जी रख कर मैंने उसे दी। वह शायद भूखा भी था। वह जल्दी–जल्दी खाने लगा। तभी टिकिट चेकर भी आ गया। नीचे बैठे पूरी खाते उस लड़के पर नज़र डाल कर आगे बढ़ गया। मेरी चिन्ता दूर हो गई।

इलाहाबाद आ गया। हम दोनों उतर पड़े। रमेश ने फिर मेरी अटैची उठा ली और सिर पर रख ली और मेरे साथ वह भी फाटक से बाहर हो लिया। कुली समझ कर किसी ने उसे नहीं टोका।

रात के दस बजे हम लोग घर पहुंचे। खाना खिला कर मैंने उसे दरी चादर दी और वह खूब गहरी नींद में सो गया।

रमेश ने बड़ी जल्दी घर का काम संभाल लिया। किसी काम के लिए न मुझे कहना पड़ा और न कभी टोकना ही पड़ा। कब क्या काम करना है वह खुद समझ जाता। थोड़े ही दिन में घर की सफाई से लेकर रसोई का काम भी वह करने लगा। मुझे बड़ा आराम मिल गया। रमेश को लाकर मैंने कोई गलती नहीं की यह मेरी समझ में आ गया।

यद्यपि जिसने रमेश को देखा सब ने कहा, "कि आपने एक अजनबी लड़के को घर लाकर समझदारी का काम नहीं किया है। सावधान रहिएगा। किसी दिन धोखा न खा जाएं।" मैं सबकी बातें एक कान से सुनती और दूसरे कान से निकाल देती।

धीरे–धीरे रमेश ने अपने घर की कहानी मुझे सुनाई। उसने बताया "मैं जब ४ या ५ वर्ष का था तभी मेरी मां मर गई थी। एक दो वर्ष बाद ही मेरे पिताजी ने दूसरी शादी कर ली। हम लोग जबलपुर में रहते थे। मेरी एक बुआ जो पिताजी से काफी बड़ी थीं और कटनी में रहती थीं, मुझे पिताजी से मांग कर अपने घर ले आईं। उनके कोई अपनी संतान नहीं थी। दूसरी शादी करने के बाद पिताजी को भी मुझ से कोई विशेष लगाव नहीं रहा। कटनी में फूफा की एक किराने की दुकान थी।

मैंने पूछा, "बुआ फूफा तो तुम्हें प्यार करते होंगे, फिर तुम उनके पास से क्यों चले आए?"

"हां, कुछ वर्ष तक तो बुआ ने मुझे खूब प्यार से रखा। स्कूल में भी भरती करा दिया किन्तु धीरे–धीरे मैं उन्हें भारी लगने लगा। दोनों काफी कंजूस भी थे। मेरे बड़े होते ही उन्होंने घर का नौकर भी छुड़ा दिया। चौथी कक्षा के बाद स्कूल भी छुड़ा दिया। घर की सफाई तथा अन्य काम तो करता ही दूकान की सफाई भी करता था। फूफा के लिए दोपहर का खाना लेकर भी दूकान जाता था। उन्हें खिलाने के बाद उनके बर्तन साफ करता। एक दो काम जो फूफा बताते उन्हें करके तब घर लोटता। डेढ़ या दो बज जाते थे लौटने में। फूफा के खाना खाने के बाद ही बुआ खाती थीं। तब भला मैं ही कैसे खा सकता था। बुआ सुबह मुझे दो बासी रोटी खाने को देती थीं।

दिन भर दौड़ धूप और काम करने के बाद भी जब बिना बात झिड़की और अक्सर फूफा द्वारा मार खाने से मैं बहुत चिड़चिड़ा हो गया था। पिताजी भी कभी मेरी कोई खबर नहीं लेते थे।

इस तरह एक दिन मैं ऊब कर भाग आया घर से। छः माह हो गए

मुझे इन लड़कों का साथ मिल गया। जिनके साथ आपने मुझे बांदा में देखा था।"

रमेश जैसे छोटे बालक के मुख से जिन्दगी की इतनी उलझी कहानी सुन कर मुझे दुख हुआ। घर में मैं अकेली थी। १० से ४ बजे शाम तक मैं कालेज में रहती थी। रमेश घर में अकेला रहता था। काम भी कुछ विशेष नहीं था। मैंने उसे घर पर पढ़ना शुरू कर दिया था।

अप्रैल का महीना था। कहीं स्कूल में भरती करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। बुद्धि में तेज था रमेश। स्वभाव का भी वह अच्छा था। चेहरे पर हमेशा मुस्कराहट बनी रहती थी। मेहनती था काम चोर बिलकुल नहीं था। खाने पीने में रमेश को मैं वही खिलाती जो मैं खाती थी। थोड़े दिन में ही उसके चेहरे पर रौनक आ गई थी।

गर्मी की छुट्टियों में मेरी बहन सुल्तानपुर से मेरे पास आई थीं। संयोग से यहां आकर वह बुखार में पड़ गई। रमेश ने उसकी बड़ी सेवा की। उसे वह मौसी कहने लगा था। और मौसी उसे अपने पास बिठा कर खूब बातें करती थीं। जब अच्छी होने पर वह घर वापस जाने लगीं तो उदास हो गई। रमेश का मुंह भी उतर गया। बहन कहने लगीं, मुझसे, "दीदी, रमेश को मुझे दे दो। मेरे पास एक लड़की ही है। यह भी मेरे पास रहेगा तो अच्छा लगेगा। इसे भी स्कूल में डाल दूंगी। घर में कुछ काम तो है नहीं। एक चपरासी भी है और एक नौकर भी है घर का काम करने के लिए। तुम्हारे बहनोई स्कूल इंसपेक्टर हैं। रमेश को पढ़ा लिखा कर नेक इन्सान बना दूंगी।"

मैंने रमेश की ओर देखा। वह भी जाने को उत्सुक दिखा। प्यार के भूखे रमेश को मौसी अच्छी लगीं। उसके बेहतर भविष्य को देखकर मैंने उसे भेजने की स्वीकृति दे दी। छः माह से वह मेरे साथ था। मुझे भी उसे भेजने में बुरा लग रहा था। जाने लगा तो उसने मेरे पैर छूकर कहा, "मैं फिर आऊंगा मांजी। मुझे आप की बहुत याद आएगी।" उसकी आंखें डबडबा आईं।

कुछ समय बाद बहन का पत्र आया। रमेश वहां प्रसन्न है। स्कूल जाने लगा है। पढ़ाई ठीक कर रहा है।

तीन चार महीने बाद मैं भी एक बार सुल्तानपुर जाकर उसे देख आई थी। बहन की लड़की उसे घर पर भी पढ़ा देती थी। मौसी तो मिली ही रमेश को एक दीदी भी मिल गई। प्यार के भूखे रमेश को भरपूर प्यार मिल रहा था।

कुछ दिन बाद बहनोई का तबादला गाजियाबाद हो गया। रमेश कई साल तक मुझे देखने को नहीं मिला। हां, अब वह सुंदर अक्षरों में पत्र लिखने लगा था। मैं उसकी तरफ से बिलकुल निश्चिन्त थी।

इधर मेरा भी तबादला हो गया। मुझे कुछ दिन बाद ही गोरखपुर जाना था। रमेश से और दूर जा रही थी। जाने की पूरी तैयारी हो गई थी।

एक दिन सुबह किसी ने दरवाजा खटखटाया। मैंने खोला तो देखा अटैची लिए एक लंबा सा युवक खड़ा था। मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा तो उसने मुस्करा कर मेरे पैर छुए। मेरे मुंह से निकल पड़ा, "अरे रमेश तुम! इतने बड़े हो गए हो!" मैंने उसकी पीठ पर हाथ फेरा। प्रसन्नता से मेरा मन भर आया उसे देखकर।

"मैंने हाई स्कूल पास कर लिया मांजी। मौसाजी ने मुझे अपने आफिस में ही क्लर्क की नौकरी लगा दी है।"

रमेश ने मेरे हाथ में मिठाई का डिब्बा पकड़ा दिया। मुझे लगा मेरे लगाए पौधें में खुशबूदार फूल आ गए हैं और किसी ने एक महकता फूल मेरे हाथ में पकड़ा दिया है।
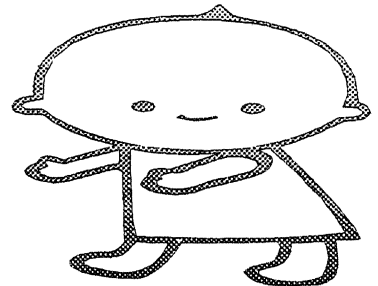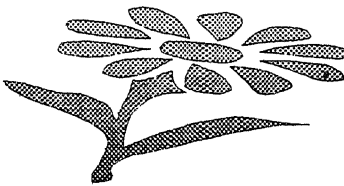
गंगाराम पकड़ा गया

रमाशंकर

"अरे! कितनी दूर से तू प्लेटें धो रहा है, अभी तक धो नहीं पाया। ला जल्दी से धोकर दे, नहीं तो दूंगा एक हाथ।" होटल का मालिक गंगाराम प्लेटें धो रहे लड़के के ऊपर गुस्से से बरसता हुआ बोला। लड़का गंगाराम की फटकार सुनकर जल्दी–जल्दी प्लेटें धोकर उन्हें एक के ऊपर एक रखकर गंगाराम को देने के लिए उसकी ओर अभी चार–पांच कदम ही बढ़ा था कि अचानक सामने से आ रहे एक आदमी से टकरा गया।

हाथों में पकड़ी प्लेटें छूट कर फर्श पर आवाज़ करती हुई इधर–उधर जा गिरीं। लड़का सन्न रह गया। उसी समय एक जोरदार तमाचा "चटाक" की आवाज़ करता हुआ उसके गाल पर पड़ा। उसका पूरा बदन थर–थर कांपने लगा। बड़ी–बड़ी आंखों से उसकी ओर गुस्से से घूरता हुआ गंगाराम बोला, "नालायक, देखकर नहीं चलता। सारी की सारी प्लेटें तोड़ दीं। अंधा कहीं का, तू मेरा रोज़ कोई न कोई नुकसान कर देता है। समझ ले, सारा नुकसान तेरी तनख्वाह से काट लूंगा, हां।"

मालिक की मार व डांट खाकर लड़का टूटी प्लेटों को जल्दी–जल्दी बटोरने लगा। उसी दुकान पर मिठाइयां लेने आया कमल यह दृश्य देखकर स्तब्ध खड़ा था। उसका घर होटल के पास ही था। घर के

मेहमानों के लिए वह मिठाइयां लेने होटल पर आया था। लड़के के ऊपर होटल मालिक का यह अत्याचार देखकर वह बहुत दुःखी हुआ।

मिठाई लेकर वह घर आया। मां को मिठाई देने के बाद वह दोस्तों के साथ खेलने मुहल्ले के पार्क में चला गया।

उसके सभी दोस्त पार्क में क्रिकेट खेल रहे थे। वह भी उनके साथ खेलने लगा। किन्तु आज उसका मन खेलने में ठीक से न लगा। वह पार्क के एक ओर बैठ कर चुपचाप उस होटल वाले लड़के के विषय में सोचने लगा। उसका जी चाह रहा था कि वह भी जाकर उस होटल वाले की पिटाई कर दे। अचानक उसकी नज़र कलाई पर बंधी घड़ी पर पड़ी। घड़ी में छः बज चुके थे। उसे ट्यूशन पढ़ने जाना था। वह पार्क से घर की ओर तेजी से चल पड़ा।

रात के आठ बज चुके थे। ठंड जोर की पड़ रही थी। कमल ट्यूशन पढ़कर पैदल घर की ओर आ रहा था। अचानक उसकी नज़र गंगा होटल की ओर गई। उसने देखा, बंद होटल के बाहर फर्श पर वही लड़का केवल एक पतली मैली चादर ओढ़े थर–थर कांपता हुआ सो रहा है। यह देख कर वह तुरंत उसके पास गया। उसने जो गर्मशाल ओढ़ रखी थी, उतार कर उस लड़के को ओढ़ा दी। अचानक कमल के चादर ओढ़ाते ही लड़का झट से डर कर उठ कर बैठ गया। उसे घबराया हुआ देखकर कमल बोला, ''डरो मत, मुझे अपना दोस्त ही समझो। मेरा नाम कमल है। मैं यहां पास में ही रहता हूं। तुम्हारा क्या नाम है?''

लड़का बोला, ''गौरव, लेकिन यहां मुझे कोई छोटू कहता है तो कोई छोकरा।'' उसकी बात सुनकर कमल बोला, ''कोई बात नहीं, मैं तुम्हें गौरव कहकर ही बुलाऊंगा। कितना अच्छा नाम है तुम्हारा.... गौरव। तुम कहां से आए हो?''

गौरव मंद स्वर में आंखें झुकाए बोला ''लखनऊ से।''

''अरे! वहां तो मेरे मामा जी रहते हैं। तुम यहां दिल्ली कैसे

पहुंचे?" कमल ने पूछा।

लड़के की चुप्पी देख कर कमल ने कहा "देखो गौरव, इस शहर में तुम्हें अभी बहुत कठिनाई उठानी पड़ेगी। यहां तुम्हें सुख–दुख बांटने वाला कोई नहीं मिलेगा। इसलिए मुझे अपना मित्र समझकर सब कुछ बता दो, हो सकता है मैं तुम्हारी कोई मदद कर सकूं।"

गौरव बोला, "मित्र, मैं अपने घर से भाग कर आया हूं।"

"लेकिन क्यों?" कमल ने उससे प्रश्न किया।

गौरव ने बताया कि मोहल्ले व स्कूल के कुछ गंदे लड़कों की संगत में पड़कर मैंने लॉटरी खेलनी शुरू कर दी थी। एक दिन पहली तारीख को मिली पापा की तनख्वाह के पैसे चुराकर मैंने लॉटरी खरीद ली थी। पापा को इसका पता चल गया। उन्होंने मुझे खूब डांटा। मैं उनकी डांट खाकर घर से बिना बताए यहां भाग आया। जेब में कुछ पैसे थे। जब वे खर्च हो गए तो मैं बहुत परेशान हुआ। भूख भी सताने लगी थी। मैं इधर–उधर भूख मिटाने के लिए भटक रहा था। अचानक इस होटल के मालिक से मेरी मुलाकात हो गई और इसने मुझे अपने पास रख लिया। मुझे यहां १५ दिन होने को आए हैं। इसकी डांट व फटकार से तंग आ गया हूं।

शीघ्र ही उसको इस समस्या के घेरे से बाहर निकालने का आश्वासन देकर कमल घर की ओर चल पड़ा।

एक सप्ताह बीत गया था। कमल उस दिन के बाद गौरव से मिलने नहीं आया था। गौरव को बड़ी चिन्ता हो रही थी। वह हर रोज़ उसकी राह देखता था। खासकर शाम को।

आज रात उसे अपने घर की, मम्मी–पापा की बहुत ही याद आ रही थी। वह उनके पास जाने के लिए बैचेन हो रहा था और घर से भाग कर आने पर बहुत पछता रहा था। उसकी इच्छा घर जाकर मम्मी–पापा से माफी मांगने की बार–बार हो रही थी। पूरी रात उसने रो–रोकर काट दी।

दूसरे दिन सुबह जब वह सोकर उठा तो उसका पूरा बदन बहुत जल रहा था। काम करने की उसकी इच्छा नहीं थी किन्तु होटल मालिक के डर के कारण किसी तरह वह काम कर रहा था।

होटल मालिक के आदेश पर गौरव जल्दी–जल्दी प्लेटें धोने लगा। होटल मालिक ने देर होते देखा तो वह गुस्से से उसे पीटने लगा। गौरव रोने, चीखने लगा था। होटल के अंदर बैठे सभी ग्राहक तमाशा देख रहे थे। होटल का मालिक गौरव को बड़ी बेरहमी से पीट रहा था। तभी अचानक एक आवाज़ होटल में गूंजी "पकड़ लो इस आदमी को और लगा दो इसके हाथों में हथकड़ी।" यह आवाज़ इन्सपेक्टर धरम की थी। वह अपने सिपाहियों के साथ होटल के बाहर कमल के साथ खड़े थे।

इन्सपेक्टर का आदेश पाते ही सिपाहियों ने होटल मालिक के हाथों में तुरंत हथकड़ी पहना दी। होटल के मालिक की समझ में कुछ नहीं आया। वह बोला "इन्सपेक्टर साहब, मैंने गुनाह क्या किया है? आप क्यों मुझे हथकड़ी पहना रहे हैं?"

इन्सपेक्टर धरम उसका गिरेबान पकड़ कर बोले, "तूने बाल शोषण किया है।" "बाल शोषण?" होटल मालिक गंगाराम सोच में पड़ कर बोला। इन्सपेक्टर ने कहा, "हां, बाल शोषण, जो तूने इस मासूम बच्चे से होटल का काम करवाकर किया है। तुम्हें पता नहीं, बाल शोषण अपराध है।" इन्सपेक्टर धरम ने गंगाराम को पकड़वाने के लिए कमल को शाबासी दी। वह होटल मालिक को लेकर वहां से पुलिस स्टेशन चल पड़े। उनके जाते ही कमल गौरव को अपने साथ लेकर घर आया। उसने उसे अपनी मां से मिलवाया और स्वादिष्ट व्यंजन खिलवाए। रात में उसने गौरव को बतया कि उसके पापा श्रम मंत्रालय में काम करते हैं। उन्होंने ही पुलिस को भिजवाकर उसे होटल मालिक के चंगुल से निकलवाया है।

दूसरे दिन सुबह ही कमल अपने मम्मी पापा के साथ गौरव को

लिए लखनऊ जाने वाली ट्रेन पकड़ने को निकल पड़ा। उसे अपने मामा के लड़के के जन्मदिन पर पहुंचना था और गौरव को उसके मम्मी–पापा के पास पहुंचाना था।
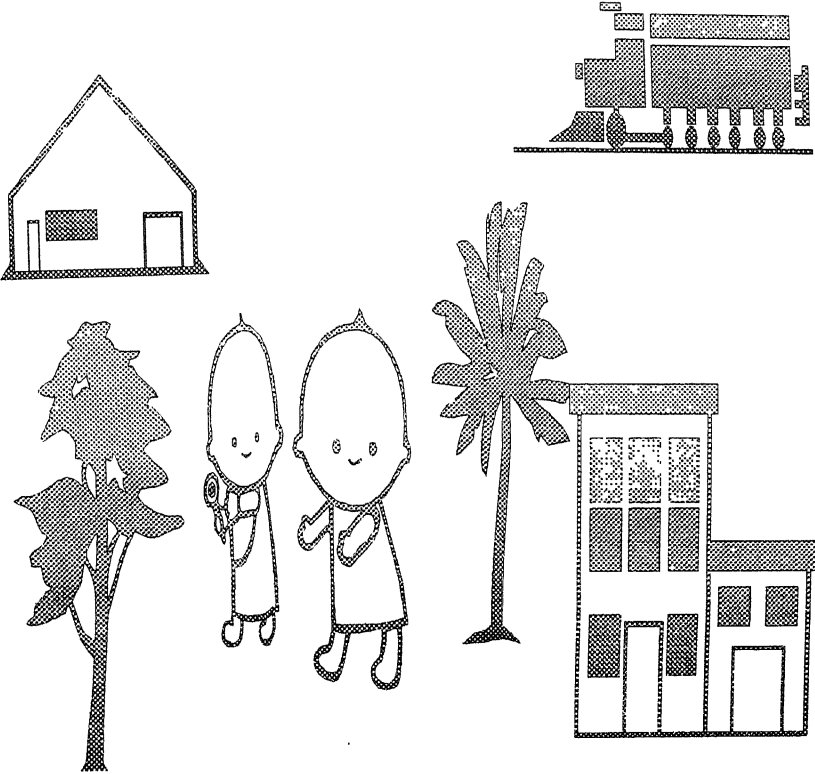
और जीवनदान बाँटा

डॉ० जगदीश व्योम

स्कूल बस से उतर कर सौरभ घर की ओर चल दिया। बस स्टाफ से लगभग आधा किलोमीटर का रास्ता सौरभ को पैदल ही तय करना होता था। इस रास्ते में घनी झाड़ियां थीं। बहुत कम लोग इस रास्ते से निकलते थे। रास्ते के एक ओर रेलवे लाइन थी और दूसरी ओर बड़ा नाला। यहीं पर सेंमल का एक बहुत पुराना पेड़ था। सौरभ स्कूल आते–जाते समय सेंमल के पेड़ के पास अवश्य रुकता। वह सेंमल गट्टे बीनता, जिन्हें फिरकी की तरह नचाता था। अपने दोस्तों को भी कभी–कभी एक दो सेंमल गट्टे दे देता जिससे वे खुश हो जाते।

सौरभ ने अपना बस्ता पेड़ की जड़ के पास रखा और लग ग सेंमल गट्टे बीनने। अभी वह एक दो सेंमल गट्टे ही उठा पाया था कि रेलवे लाइन के नीचे बने पुल में से उसे कुछ फुसफुसाहट सुनाई दी। सौरभ सतर्क हो गया। वह पेड़ की जड़ के पास आकर छिप गया और कान लगाकर खड़ा हो गया। पुल के नीचे उसे दो आदमी दिखाई दिए।

सौरभ ने सोचा कि यह रेलवे के कर्मचारी हैं, जो रेलवे लाइन पर कार्य कर रहे हैं। तभी उसके दिमाग में एक प्रश्न उठा कि यदि ये रेलवे कर्मचारी हैं तो फिर पुल के नीचे क्या कर रहे हैं? सौरभ को लगा कि दाल में कुछ काला है।

सौरभ अपने विद्यालय का एक अच्छा स्काउट था। वह कई बार

जंगल में कैम्प कर चुका था। पेड़ की ओट से धीरे से निकल कर रेंगता हुआ सौरभ पास की झाड़ी के पास तक पहुंच गया। वह झाड़ी में इस तरह छिप कर बैठ गया कि उसे कोई देख न सके। अब सौरभ को पुल के नीचे दोनों आदमी साफ–साफ दिखाई दे रहे थे। दोनों ने आंखों पर काले रंग के चश्में पहन रखे थे। सौरभ चुपचाप उन दोनों की गतिविधियां देख रहा था। उसे जिज्ञासा हो रही थी कि आखिर दोनों आदमी यहां कर क्या रहे हैं?

एक आदमी ने नीचे रखे बैग से बैटरी की तरह की कोई चीज़ निकाली और पुल के ऊपर लगे लोहे के पाइप में उस बैटरी जैसी चीज़ को रस्सी से बांधने लगा। इसके बाद वहीं पर दूसरे आदमी ने अलार्म घड़ी जैसी किसी चीज़ से उसके तारों को जोड़ दिया।

"कितना समय सैट किया जाय, उस्ताद!" पहले आदमी ने दूसरे से पूछा।

"दो बजकर पच्चीस मिनट पर सैट कर दो।" दूसरे आदमी ने आदेशात्मक स्वर में कहा।

"लो अपना काम हो गया, उस्ताद! अब राजधानी एक्सप्रेस को कोई नहीं बचा सकता।" पहले वाले आदमी ने खुश होते हुए कहा।

"राजधानी... यहां से ठीक दो बजकर चौबीस मिनट पर पास होती है। दो पच्चीस पर धमाका होगा, और फिर...बिखरे होंगे...यहां....राजधानी एक्सप्रेस के पुर्जे–पुर्जे...आदमियों की लाशें...चीखें... हा... हा... हा...।" पागलों की तरह दूसरे आदमी ने ठहाका लगाया।

सौरभ अब अच्छी तरह से समझ गया कि ये खतरनाक आतंकवादी हैं। उसे डर भी लग रहा था और बेहद घबरा रहा था। पिछले दिनों हुई रेल दुर्घटना का दृश्य उसकी आंखों के सामने घूम गया। उसे लगा कि बस! थोड़ी ही देर में यहां भी वैसा ही भयानक दृश्य हो जाएगा। अब क्या करे? यहां से फौरन भाग जाना चाहिए...। सौरभ ने घड़ी देखी, दो बजकर दस मिनट हो रहे थे। अब तो वह और भी घबरा गया। जब तक

वह दौड़ कर इसकी सूचना देगा, तब तक तो सब कुछ खत्म हो जाएगा। सौरभ एक पल के लिए इसी चिन्ता में खो गया। उसने देखा कि दोनों आदमी वहां से नौ दो ग्यारह हो चुके थे। सौरभ झाड़ी से तुरन्त बाहर निकल आया। एक पल को उसके दिमाग में आया कि इस विस्फोटक सामग्री का तार अलग कर दिया जाय। तभी उसके मन में शंका उठी कि तार अलग करते समय विस्फोट हो गया तो... अगले ही पल सौरभ ने एक साहसिक योजना बना डाली।

सौरभ ने अपने गले से स्कार्फ खोला और एक बड़ी सी सूखी लकड़ी में उसे झंड़े की तरह बांध लिया। बिना एक पल गवांए सौरभ रेलवे लाइन पर उसी दिशा में दौड़ने लगा जिधर से राजधानी एक्सप्रेस आ रही थी। सौरभ बेतहासा दौड़ा जा रहा था। उसने निश्चय कर लिया कि आज अपनी जान देकर भी वह राजधानी एक्सप्रेस को बचाएगा। अगर ड्राइवर उसके संकेत पर गाड़ी नहीं रोकेगा तो वह गाड़ी के आगे आ जाएगा। उसके कट जाने पर गाड़ी अवश्य रुकेगी और इतनी देर में पुल पर विस्फोट हो चुकेगा। उसके अकेले के जीवन दान से इतना बड़ा हादसा यदि टल जाता है तो इसी में उसकी मृत्यु की अमरता है।

वह बेसुध सा दौड़ा चला जा रहा था। तभी गाड़ी की सीटी सुनाई दी। सौरभ ने हाथ की झंड़ी को और ऊंचा कर लिया तथा ऐसे दिखाने लगा कि ड्राइवर का ध्यान चला जाय। उधर ड्राइवर ने जब देखा कि एक लड़का रेलवे लाइन पर ही दौड़ा चला आ रहा है। हट ही नहीं रहा है तो उसके हाथ पांव फूल गए। ड्राइवर ने गाड़ी की गति तरुन्त कम की और लम्बी सीटी लगानी शुरू की।

सौरभ तो हटने का नाम ही नहीं ले रहा था। उसके और गाड़ी के बीच सौ मीटर का फासला रहा होगा... ड्राइवर ने समझ लिया कि अब इस लड़के को बचाया नहीं जा सकता। सौरभ के हाव–भाव और हाथ की झण्ड़ी से वह परेशान अवश्य हो उठा था कि आखिर बात क्या है?

ड्राइवर ने आकस्मिक ब्रेक लगा दिया। राजधानी तेज झटके के साथ चरमराकर रुक गई। सौरभ इतनी तेजी से दौड़ कर आया था कि उसकी सारी शक्ति समाप्त हो चुकी थी। वह बहोश होकर गिर पड़ा। सौरभ और गाड़ी के इंजन में मात्र दो मीटर का फासला रह गया था... साथ ही कुछ ही फासला राजधानी के दुर्घटना होने में शेष था।

ड्राइवर और सहायक जल्दी से इंजन से उतर कर आए। सौरभ के मुंह पर उन्होंने पानी के छींटे लगाए। सौरभ घबराकर उठ बैठा और उसने पुल की ओर संकेत किया। उसके मुंह से बोल नहीं फूट रहा था।

"लड़के! तू क्यों मरना चाह रहा था?.... इतनी देर से तुझे गाड़ी की सीटी...।" ड्राइवर अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि पुल पर भीषण विस्फोट हो गया... सौ मीटर की रेलवे लाइन उड़ गई। विस्फोट को सुनकर चारो ओर कुहराम मच गया। सब की आंखें फटी की फटी रह गई... सौरभ को अब तक होश आ गया था। उसके चेहरे पर संतोष की रेखाएं उभर आयी।... ड्राइवर और गाड़ी की सवारियों को अब कुछ भी बताने की आवश्यकता नहीं थी। सबके लिए सौरभ भगवान बन कर आ गया था... चारों ओर भीड़ एकत्र हो गई। सभी यात्री सौरभ को एक दृष्टि देख लेना चाह रहे थे। सेंमल गट्टे बीनकर बांटने वाले सौरभ ने आज राजधानी एक्सप्रेस को बचाकर यात्रियों को जीवनदान बांटा था। मौत के सौदागरों की सारी योजना सौरभ ने आज अपने दम पर अकेले ही विफल कर दी थी।

दूसरे दिन सभी अखबारों में सौरभ की सूझ–बूझ और उसकी बहादुरी का समाचार सुर्खियों में चित्र सहित छपा था। उसके विद्यालय के प्राचार्य एवं शिक्षकों ने उसके घर जाकर उसे बधाई और आर्शीवाद दिया। रेलवे के बड़े अधिकारियों ने सौरभ की शिक्षा का पूरा खर्च उठाने का जिम्मा लिया तथा उसे पुरस्कार दिया।
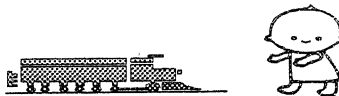
मंत्र का सहारा

मधु सक्सेना

वैभव अपने नाम के अनुसार बहुत धनी परिवार का बच्चा था। माता–पिता के अत्यधिक लाड़ के कारण बचपन से ही उसकी आदत बिगड़ गयी थी। वह पढ़ने लिखने से जी चुराता था। खेलना और पिक्चर देखना उसे बहुत अच्छा लगता था। कभी–कभी तो वह क्लास भी छोड़ देता था। स्कूल से भागकर पिक्चर देखता और दोस्तों के साथ अपना समय बिताता था। तथा परीक्षा में भी बहुत कम नम्बर पाता था। बस किसी तरह फेल होने से बच जाता था। जब उसका यह हाल कुछ वर्ष तक रहा तो उसके मां–बाप भी परेशान होने लगे।

मैट्रिक की परीक्षा थी और वह भी बोर्ड की, स्कूल की परीक्षाओं में तो वह किसी तरह खींचतान कर पास हो जाता था, परन्तु बोर्ड की परीक्षा के मारे उसे भी डर लग रहा था। वैभव सोच–सोच कर परेशान था कि बोर्ड की परीक्षा में पास होने के लिये क्या किया जाए? नकल से उसे डर लगता था। एक दिन शाम को वह अपने घर में बैठा था कि पड़ोस वाली आंटी उसकी मम्मी के पास आईं। वह बताने लगी कि अमुक देवी मन्दिर में एक बहुत बड़े साधु महात्मा आए हैं। वह सबकी समस्याएं सुनकर उनका निदान कर रहे हैं।

वैभव ने सुना, थोड़ी देर चुपचाप बैठा कुछ सोचता रहा। कुछ समय बात जब रात हो गई। वह किसी को बिना बताये उन महात्मा के

पास पहुंच गया। संयोग से उसे महात्मा मन्दिर में मिल गए। हालांकि वह महात्मा जी से मिलने का समय नहीं था, लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि एक बच्चा मिलने आया है, तो उन्होंने उसे बुलाया। वह प्रणाम करके उनके ठीक सामने बैठ गया। महात्मा ने बड़ी गहरी दृष्टि से उसे देखा। वैभव अन्दर तक कांप गया। महात्मा ने बड़े स्नेह से पूछा, "कहो बेटा, क्या बात है?" वैभव बोला, "महात्मा जी! मैं बड़ी मुश्किल में हूं।" और उन्हें अपनी पढ़ाई में कमजोर होने वाली बात बताई। उसने कहा "मैं आपके पास बड़ी आशा से आया हूं। आप मुझे कोई मन्त्र या भभूत दे दें, जिससे मैं इस वर्ष अच्छे नम्बरों से पास हो सकूं।"

वैभव की बात सुनकर महात्मा हंसने लगे। उन्होंने उससे पूछा, "तुम सोकर कब उठते हो और दिन में क्या करते हो?"

वैभव बोला, "मैं सुबह आठ बजे सोकर उठता हूं। सब काम जल्दी करके नहा धोकर स्कूल चला जाता हूं, लौट कर कुछ खा–पीकर खेलता हूं, शाम से रात तक टी०वी० देखता हूं और रात को ग्यारह बजे सोता हूं।" स्कूल से भागकर पिक्चर देखने की बात वह छिपा गया।

महात्मा बोले, "मैं तुम्हें मन्त्र युक्त एक भभूत दे सकता हूं पर उसके लिये कुछ नियम हैं जिनका तुम्हें सख्ती से पालन करना होगा। अन्यथा भभूत का कोई असर नहीं होगा।" वैभव बोला, "आप जो भी कहेंगे मैं करने को तैयार हूं, पर मैं हमेशा अच्छे नम्बरों से पास होना चाहता हूं।"

महात्मा बोले, "सुनो! तुम सुबह पांच बजे सोकर उठना, मुंह हाथ धोकर भगवान को याद करना। उसके बाद एक चुटकी भभूत फांक कर पानी पी लेना और पढ़ने बैठ जाना। लेकिन याद रखना ये काम तुम्हें सूर्योदय से पहले करना है। अगर कभी देर हो गई और सूर्योदय के बाद तुमने भभूत फांक ली तो तुम पहले पढ़ा हुआ भी सब भूल जाओगे। रात को आठ बजे तक खाना खा लेना, उसके बाद भभूत फांक कर पानी पीना और पढ़ने बैठ जाना। दस बजे सो जाना। मैंने इसी समय के

अनुसार भभूत और मन्त्र तैयार करने का निश्चय किया है। तुम्हारे लिये यही समय शुभ भी है। लेकिन यह हमेशा याद रखना कि नियम भंग करने पर शुभ अशुभ भी हो सकता है। एक बहुत जरूरी बात ये है कि तुम इसके बारे में किसी को बताना नहीं। तुम थोड़ा ठहरो, मैं तुम्हें एक वर्ष के लिये भभूत बनाकर दिये देता हूं। इसी से चुटकी भर दोनों समय लेना और बहुत संभाल कर रखना। सुनो, कभी भूलकर भी स्कूल से भागना मत अन्यथा मन्त्र का असर खत्म हो जाएगा।"

महात्मा अन्दर गये और एक पुड़िया भभूत वैभव को लाकर दी। वह बहुत खुश हुआ, पुड़िया लेकर महात्मा का चरण स्पर्श किया और घर चला आया। उसे विश्वास था कि वह अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होगा। दूसरे दिन से वैभव ने महात्मा के बताए नियमों का पालन करना शुरू कर दिया। वह सुबह पांच बजे ही जाग जाता क्योंकि उसे डर था कहीं सूर्योदय न हो जाए। रात को भी उसकी आंखें घड़ी पर ही रहतीं। वैभव के माता–पिता भी उसकी दिनचर्या में हुए परिवर्तन से खुश थे। उसके दोस्तों को भी वह बदला हुआ लगता था। वह पूछते भी थे लेकिन उन्हें वैभव ने कुछ नहीं बताया क्योंकि उसे मन्त्र का असर खत्म हो जाने का भय था। समय बीतता गया और नियत समय पर परीक्षा हुई। वैभव अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुआ। साथ ही अपने विद्यालय का सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी रहा। यह सूचना मिलते ही वैभव दौड़ता हुआ महात्मा जी के पास पहुंचा। देखा उनके जाने की तैयारी हो रही थी। उसने अपनी उत्तीर्ण होने की बात उन्हें बताई और रोने लगा, रोते–रोते बोला, "महात्मा जी! आप यहां से न जाएं। मैं आप ही के कारण उत्तीर्ण हुआ हूं। आपके प्यार और मन्त्र तथा भभूत का असर देखकर तो मैं पागल हो गया हूं। जल्दी में आपके लिये मिठाई भी नहीं लाया।"

महात्मा सुनकर मुस्कराए। उसके सिर पर हाथ फेरा और बोले, "बेटा! मिठाई तो मैं तुम्हें खिलाऊंगा। साथ ही तुम्हें कुछ बताऊंगा और तुमसे माफी भी मागूंगा क्योंकि मैंने तुमसे झूठ बोला था। मैं तुम्हारा

अपराधी हूं।" वैभव चौंका उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था।

महात्मा गम्भीर स्वर में बोले, "मैंने जो भभूत तुम्हें दी थी, न उसमें कोई शक्ति थी और न ही किसी मन्त्र का असर, वह साधारण धूप बत्ती की राख थी। चूंकि तुम इन सब बातों पर विश्वास करते थे अतः मैंने तुम्हारी समस्या के लिये इन्हीं का सहारा लिया। तुम खिलाड़ी थे, अपने समय का दुरूपयोग करते थे, पढ़ने से जी चुराते थे, अतः तुम्हें डराने के लिए मैंने मन्त्र का सहारा लिया। तुमने जो कुछ पाया है वह तुम्हारे परिश्रम का फल है। इसमें भभूत, मन्त्र और मेरा कोई योगदान नहीं है। मैंने तुमसे झूठ बोला था। कहो बेटा! क्या अपने इस अपराधी को क्षमा नहीं करोगे?"

वैभव किंकर्तव्य विमूढ़ सा खड़ा रह गया। महात्मा ने उसके कंधे पर हाथ रखा तो वह चौंका। उसने देखा महात्मा की आंखें प्रश्न कर रही हैं। वह बोला "मैं आपको क्षमा नहीं करूंगा क्योंकि अपने झूठ बोलकर ऐसा अपराध किया है जो मेरे जैसे भटके बच्चों के लिए आपको बार–बार करना होगा। अगर मैं आपको क्षमा कर दूंगा, तो मेरे जैसे बच्चों का क्या होगा?"

वैभव ने खुशी से महात्मा के हाथ चूम लिये। महात्मा उसे अन्दर ले गये और उत्तीर्ण होने की मिठाई खिलाई। थोड़ी देर बाद महात्मा के जाने का समय हो गया। वह उसे आशीर्वाद देकर धीरे–धीरे चलने लगे। वैभव अश्रुपूरित आंखों से दूर तक उन्हें जाते हुए देखता रहा।
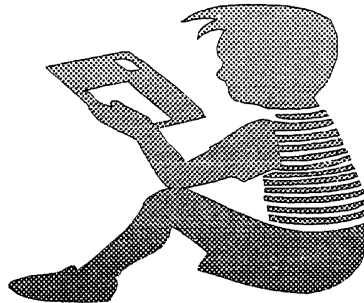
अब काहे के सौ

चन्द्रप्रभा त्रिपाठी

किसी गांव में भोला नाम का एक लड़का रहता था। घर में वह और उसकी मां केवल दो प्राणी थे। पिता, उसके बचपन में ही चल बसे थे। भोला गरीबी के कारण स्कूल नहीं जा सका। कमाने के लिए वह एक सेठ के यहां नौकरी करने लगा। नाम के अनुसार ही वह भोला—भाला था। सेठ उसे समय समय पर ठगता रहता था। कम रुपए देता व काम ज्यादा लेता। भोला दुःखी रहता था।

किसी तरह उसे पता चला कि उसके गांव में साक्षरता कक्षा चल रही है। वह वहां पढ़ने जाने लगा। जल्दी ही वह हिसाब लगाने लगा। रुपयों पैसों का हिसाब वह अंगुलियों पर गिनकर कर लेता। उसने सेठजी से बदला लेने की सोची।

एक दिन उसने सेठ से सौ रुपए उधार मांगे और काम छोड़कर चला गया।

काफी दिन तक वह सेठ के पास नहीं आया। सेठ तो था कंजूस। वह सौ रुपयों के बारे में सोच सोचकर परेशान रहता।

एक दिन रास्ते में भोला मिला। सेठ ने भोला से कहा, "भोला, कुछ दिन पहले तुमने मुझसे सौ रुपए उधार लिए थे वह लौटा दो।"

भोला ने आंखें मटकाते हुए कहा, "कौन से रुपए सेठ जी? वह तो कब के खर्च हो गए।" सेठजी ने कहा, "किसमें खर्च हुए।"

भोला ने कहा, "सुनो सेठजी। मैं सारा हिसाब बताता हूं।"

"दस के ले लिए आजरा–बाजरा, दस के ले लिए जौ, सेठजी अब काहै के सौ।"

इतना सुनते ही सेठजी अवाक् रह गए। वह झल्लाते हुए बोले "अरे अस्सी ही दे दो।" भोला फिर मुस्कराते हुए बोला, "दस की ले ली लोटा बाल्टी दस की ले ली रस्सी, सेठजी अब काहे के अस्सी।"

सेठजी भोला की बातें सुनकर मन ही मन तिलमिला रहे थे। गुस्से में उनका बुरा हाल था। वह बोले "साठ ही दे दो।"

भोला फिर आंखें मटकाते हुए बोला, "सुनो सेठ जी, दस के ले लिए इस्तर बिस्तर, दस की ले ली खाट, सेठजी अब काहे के साठ।"

सेठजी का बुरा हाल था। वह फिर बोले "भोला, कम से कम मेरे चालीस रुपए ही दे दो।"

भोला फिर बोला, "दस की ले ली जूता चप्पल, दस की ले ली पॉलिस, सेठजी अब काहे के चालीस।"

सेठ के पसीना छूट रहा था। वह बोले "कम से कम बीस ही दे दो।"

भोला ने फिर आंखें मटकाते हुए कहा, "दस की ले ली कापी किताबें, दस की दे दी फीस। सेठजी अब काहे के बीस?"

यह सुनकर सेठजी को तो चक्कर आने लगे। उन्होंने फिर कहा, "भोला, कम से कम मुझे ब्याज ही दे दो।"

भोला फिर मुस्कराते बोला, "दस की ले ली अब्जी सब्जी, दस की ले ली प्याज, सेठजी अब काहे का ब्याज।"

इतना सुनते ही सेठजी के पैरों तले जमीन खिसक गई। वह धड़ाम से नीचे गिर गए। भोला ने सेठ को बेईमानी का मज़ा चखा दिया था। सेठजी अपनी करनी पर पछता रहे थे।

नववर्ष का उपहार

डॉ० रामवृक्ष सिंह

राहुल के माता–पिता का स्वभाव बहुत ही अच्छा था। वे सभी संप्रदायों के लोगों का सम्मान करते, सबके त्योहारों और सुख–दुख में शामिल होते। इसका प्रभाव राहुल के व्यक्तित्व पर भी पड़ा। सम्पन्न होने के बावजूद उसमें किसी प्रकार की अकड़ नहीं थी।

राहुल के घर जो बाई काम करती थी, उसका बेटा रामू भी राहुल की उम्र का था। अक्सर रामू अपनी मां के साथ राहुल के घर चला आता। चूंकि राहुल के कोई भाई–बहन नहीं थे, इसलिए वह रामू के आने का इंतजार करता। फिर दोंनों मिल कर खेलते। रामू शीघ्र ही उसका एक अच्छा दोस्त बन गया। राहुल के कमरे में बहुत सी किताबें थीं। रामू उनके रंग–बिरंगे चित्र देखता तो उसके मन में भी किताबें पढ़ने की इच्छा होती।

लेकिन गरीब होने के कारण उसकी मां न उसे किताबें खरीद सकती थीं, न ही ड्रेस। फीस के पैसे भी कैसे जुटा पाती। राहुल इस बात को समझता था। इसलिए वह कुछ समय निकाल कर रामू को पढ़ाने का प्रयास करता। वह रामू से कहता "रामू, तुम मेरे पास आ जाया करो, मुझे जो कुछ पढ़ाया जाता है वह सब मैं तुम को पढ़ाऊंगा। फिर एक दिन तुम भी बड़े आदमी बन सकते हो।"

इस बीच क्रिसमस का त्योहार आ गया। राहुल के मम्मी–पापा ने

मिस्टर विक्टर और मिस्टर पीटर को अपने घर क्रिसमस की पार्टी दी। उनके परिवार के दूसरे लोग भी आये। आगंतुकों की सुविधा को देखते हुए राहुल के पापा ने अपनी कार मेन–गेट के बाहर सड़क पर खड़ी कर दी थी। रात को भोजन करते–करते काफी देर हो गयी। धीरे–धीरे जब सभी मेहमान जा चुके तो पापा कार को गेट के अंदर पोर्टिको में खड़ी करने के उदेद्श्य से बाहर निकले।

लेकिन यह क्या? वहां तो कार थी ही नहीं।

"बेटा, अपनी कार कहां गयी" उन्होंने घबराहट में राहुल से पूछा।

"पता नही पापा। न जाने कौन ले गया।" राहुल ने भी थोड़ा हैरान और परेशान होकर कहा।

उन्होंने पड़ोसियों से भी पूछा, किन्तु कोई भी संतोषजनक उत्तर न दे सका। कार पुरानी थी लेकिन काम आती थी।

अब दादी जी को जांच के लिये अस्पताल कैसे ले जाएंगे? कभी–कभी सभी लोग उसी में बैठकर गांव हो आते थे। अब तो उससे भी गये। यही सोचकर सब परेशान थे।

रामू की मां भी पार्टी में मदद कराने के लिए आयीं थीं। उनके जरिये यह खबर रामू को भी मिल गयी। रामू ने अपने मन में ठान लिया कि वह जरूर ही इस मामले में कुछ न कुछ करेगा। राहुल के पापा ने कार चोरी चले जाने की सूचना थाने में दर्ज करा दी। पुलिस ने भी बहुत कोशिश की, लेकिन एक सप्ताह बीत जाने पर भी कार का पता नहीं चल सका।

वे सोचते थे कि नये साल की शुरूआत कार के मातम में ही होगी। लेकिन पहली जनवरी, यानी नये साल के पहले दिन तो जैसे चमत्कार ही हो गया। जब राहुल अपने पापा के साथ सुबह की सैर के लिए निकला, तो गेट के बाहर उनकी कार खड़ी थी, बिल्कुल सही सलामत। खुशी के मारे उनके बोल ही न निकलते थे–

"देखा राहुल!... हमारी कार वापस आ गयी।" पापा ने राहुल के

गाल थपथपाते हुए कहा।

"हां पापा। मैं यह खबर दादी और मम्मी को देकर आता हूं।" कहता हुआ वह भीतर की ओर दौड़ा।

इधर पापा कार में घुस गये कि उसे भीतर खड़ी कर दें। ड्राइविंग सीट पर उनको कागज का एक टुकड़ा मिला, जिस पर लिखा था–

"महोदय, क्षमा करिएगा, आपको हमने बहुत कष्ट दिया। हमें कार की सख्त जरूरत थी, इसलिए बिना पूछे ले गये। हमारी ओर से आप सबको हिट फिल्म की टिकटों का तोहफा स्वीकार करें, ताकि हमारा प्रायश्चित हो सके।"

पर्ची के साथ सिनेमा की चार टिकटें थीं। पापा–मम्मी सीधे–सरल स्वभाव वाले थे। उन्होंने कहा कि "चलो, अपनी कार किसी की जरूरत में काम आयी और सही–सलामत हमें वापस मिल गयी।" दिन में रामू भी नये वर्ष की बधाई देने आया। कार के आ जाने पर उसे बहुत खुशी थी। लेकिन सिनेमा टिकट वाली बात उसे कुछ हजम नहीं हो रही थी। उसने मन ही मन सोचा कि हो न हो, इसमें कोई चाल है। उसने दिल ही दिल कुछ फैसला किया।

उधर राहुल और मम्मी–पापा टिकटें लेकर रात का शो देखने चल पड़े। चूंकि सिनेमा हॉल कुछ दूर था, इसलिए जल्दी ही चलना पड़ा। राहुल को दादी की बहुत चिन्ता थी। लेकिन दादीजी ने देखा कि कार के मिल जाने से सभी बहुत प्रसन्न हैं। इसलिए सबकी खुशी के लिए बोलीं "बेटा! तुम लोग जाओ। मैं खा–पीकर सो जाऊंगी।"

फिल्म खत्म होने पर वे चहकते हुए अपने घर लौटे। नये साल में इतना मज़ा आयेगा, यह तो उन्होंने सोचा भी न था। लेकिन घर के मोड़ पर मुड़ते ही, मकान के गेट के बाहर पुलिस की जीप खड़ी देख वे चौंक गये। कार खड़ी कर वे जल्दी–जल्दी भीतर पहुंचे। वहां पुलिस के इंस्पेक्टर और कई सिपाही खड़े थे। उन्होंने तीन चोर पकड़ रखे थे। पास ही रामू भी खड़ा था।

"इंस्पेक्टर साहब क्या बात है? इतनी रात गये आपको... यहां कैसे आना पड़ा?"

इंस्पेक्टर ने इन लोगों को देखा तो कड़कदार आवाज़ में कहा "आइए—आइए। इनसे मिलिए।" यह कहकर उन्होंने चोरों के सरदार का कालर पकड़कर उसे आगे खींच लिया। "पहले तो ये लोग आपकी कार चुरा ले गये। लेकिन जब इन्हें लगा कि कार पुरानी है और उसका अधिक दाम नहीं मिलेगा तो आपके घर का पूरा सामान और गहने, नकदी वगैरह चुराने के इरादे से इन्होंने आपको फिल्म के टिकट देकर अपना काम शुरू कर दिया था।"

"हे भगवान। कैसे—कैसे लोग हैं!" कहकर राहुल अपनी दादी से जा लिपटा, जो ड्राइंग रूम में रजाई ओढ़े बैठी थीं।

"हां मेरे बच्चे...तेरे दोस्त रामू की समझदारी से आज मेरी जान भी बच गयी और घर का सामान भी।" कहकर दादी ने उसे अपनी गोदी में समेट लिया।

"जी हां। यह बच्चा न जाने कब से इस घर पर निगरानी रख रहा था। इसी ने इन चोरों के घर में घुसने की सूचना हमें दी। माताजी को तो उन्होंने मुंह बांधकर लगभग मार ही डाला था। लेकिन इस बच्चे ने समय पर सूचना देकर बहुत बड़ा काम किया है। आज इन चोरों की खबर लेता हूं।" इंस्पेक्टर ने कहा और चोरों को पीटते हुए, जीप में बिठाकर थाने ले गये।

राहुल को अपने दोस्त रामू पर गर्व हुआ। उसने राहुल के परिवार को नये साल का कितना अच्छा उपहार दिया था! अगले ही दिन से राहुल के पापा ने रामू के लिए भी किताबें, कापियां, ड्रेस आदि खरीद दीं और पास ही के एक स्कूल में उसके पढ़ने की व्यवस्था कर दी। नववर्ष का यह उपहार पाकर रामू बहुत खुश था। बड़ा आदमी बनने की उसकी इच्छा और भी सुदृढ़ हो गयी। ❑

गहनों का पेड़

मोनी शंकर

जंगल के बीच पगडंडी के किनारे पीपल का एक विशाल पेड़ था जो सोने—चाँदी के गहनों से लदा हुआ था। उसे देखकर लगता था जैसे पेड़ पर पत्तों की बजाए सोने—चाँदी के गहनें उगते हों।

यह पेड़ ऐसी जगह पर था, जहां से लोग एक से दूसरे गांव जाया करते थे। जो भी वहां से गुज़रता, सोने—चाँदी के पेड़ को देखकर स्तब्ध रह जाता। गहने इतने डिज़ाइन के थे कि लोग किसी सुनार के पास जाने की बजाए वहां आकर अपनी पसंद की डिज़ाइन चुन लें, पर इस पेड़ पर गहने उगते थे, ऐसा नहीं था। यह काम तो कुछ लुटेरों का था।

लुटेरे भी बड़े अद्‌भुत ढंग से अपना काम करते थे। उस रास्ते से जो भी लोग गुजरते, वे लुटेरे उन्हें डरा देते कि आगे डाकू रहते हैं जो उनके गहने लूट लेंगे। वे चाहें तो अपने गहने इस पेड़ पर टांग सकते हैं और वापसी में उन्हें उतार सकते हैं। इस पेड़ पर सभी लोगों के गहने सुरक्षित रहते हैं, ऐसा पीपलजी का वरदान है।

भोले—भाले ग्रामीण उनकी बातों में आकर अपने गहने उन्हें सौंप देते। ऐसा भी नहीं था कि उन्हें अपने गहने वापिस न मिलते हों। सबको वापिसी में अपने—अपने गहने मिल जाते थे। अपने गहने वापिस पाकर लोग खुश होते किंतु उन लुटेरों की चाल अलग थी। जब भी स्त्रियां—पुरुष अपने गहने उतारकर उन्हें सौंपते तो वे तुरंत शहर जाकर उन गहनों की

ऊपरी परत छोड़कर अंदर का सारा सोना निकाल कर पीतल भरवा देते। गहनों का भार वही रहता। अतः किसी को कोई शक न होता।

एक बार एक औरत जो इसी रास्ते से वापिस आई थी, उसे अपने गहने बेचने पड़े। बात यह हुई कि उसकी बेटी की शादी तय हो गई। बेटी के गहने तो उसने पहले से ही बनवा रखे थे पर धन की कमी हो जाने के कारण औरत अपने गहने बेचने सुनार के पास गई। पर सुनार ने उसे उन गहनों के बहुत कम पैसे दिए। उसने कहा कि गहनों में पीतल भरा है। वह चुपचाप पैसे लेकर घर आ गई और अपने पति को बताया। उसके पति ने उल्टे उसी के मायके वालों को कोसना शुरू कर दिया कि उन्होंने खोटे गहने दिए हैं। किसी को असली बात समझ न आई। फिर वह अपने गहने बेचने गया तो सुनार ने उसके गहनों में भी पीतल भरा बताया। तब उन्हें कुछ शक हुआ। वे तुरंत उन लोगों के पास गए जो उस दिन उनके साथ दूसरे गांव की शादी में सम्मिलित होने के लिए गए थे और उन सबने अपने गहने पेड़ पर टांगे थे। उन सबके गहनों में भी इसी तरह का खोट निकला। तब असली बात उनकी समझ में आई।

उन सबने मिलकर निकट के शहर के थाने में इस घटना की सूचना दी। पुलिस ने छापा मारा और लुटेरों को गहनों समेत गिरफ्तार कर लिया। पुरुस्कार रूप में उस ग्रामीण दंपत्ति को इतना धन मिल गया कि उनकी बेटी की शादी बड़ी आसानी से हो गई और उन्हें अपने असली गहनें भी मिल गए। पीपल का वह पेड़ भी उन कृत्रिम गहनों से छुटकारा पाकर अपने असली प्राकृतिक रूप को पाकर बहुत खुश हुआ।